आदित्यनाथ

बलभद्र ठाकुर

नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली

पाठकों से……!

'आदित्यनाथ' के रूप मे एक विशिष्ट पात्र को आपके सामने पेश कर रहा हूँ, और उसके सहारे अन्य अनेक अद्भुत पात्रो को भी। सभव है कुछ पाठको के लिए वे न विशिष्ट हो न अद्भुत, क्योकि वे स्वय शायद प्रतीक हो इन पात्रो के, अथवा उनसे पूर्व-परिचित। किन्तु मुझे तनिक भी सदेह नही कि समाज के नये रक्तो के लिए वे बिल्कुल नये है। बिल्कुल अद्भुत भी। और उन्ही नये रक्तो को ध्यान मे रखकर इस उपन्यास की रचना की गई है—ताकि वे नव रक्त की भावुकता भरी लहरो मे स्वामी सोमानन्द की तरह बहकर बाद मे विनष्ट न हो जायँ; स्वामी सत्यकेतु और वीरेन्द्र वर्मा जैसे लोग स्वय आदित्यनाथ के जीवन से बहुत कुछ सीख सके, स्वस्थ स्वाभाविक जीवन के मूल्य को पहचान सके।

कथानक का क्षेत्र हिमालय की 'कुल्लू' उपत्यका हे, और उस उपत्यका की एक ऐसी अनोखी घाटी भी जहाँ के जीवन के सम्बन्ध मे तो क्या, शायद उसका नाम भी कभी सुना न हो आपने! लेकिन न वह घाटी कल्पित है, न उसका वह नाम, और न उसका वह चित्रित जीवन!

साधु-जीवन होता ही है घाट-घाट का पानी पीने वाला। अतः साधु-जीवन के आधार पर रचित इस उपन्यास के पन्ने आपको भी न केवल 'कुल्लू' घाटी के, बल्कि घाट-घाट के कडवे, गदे, मीठे पानी के स्वादो मे परिचित कराते हुए आगे ले चलेगे, आपकी जानकारी की सीमा को बढाते हुए।

सन् १९५४ ई० के आरम्भ के तीन महीनो मे मणिपुर-प्रवास मे मैने इस उपन्यास की रचना की। मणिपुर-निवासी, अनुजवत् प्रिय श्री लइमयुम् नारायण शर्मा को धन्यवाद दिये बिना नही रह सकता जिनके घर मे पारिवारिक सदस्य की तरह निवास करते मैं इस उपन्यास की रचना सुविधापूर्वक कर सका।

—लेखक
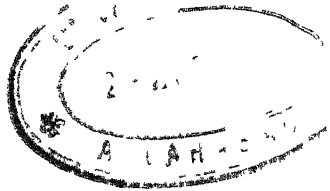
प्रथम खण्ड

वाल्मीकीय रामायण की कथा चालू थी। उस दिन कथा मे प्रसग राम के वन-गमन का था। सीता साथ हो चली और लक्ष्मण, समस्त स्वर्गीय सुख-भोगो को लात मारकर बडे भाई के साथ हो लिया। भ्रातृ-प्रेम का यह उज्ज्वल आदर्श और यह अनुपम त्याग भला कैसे श्रोताओ को प्रभावित न करे ? श्रोताओ के नेत्र रह-रहकर गीले हो रहे थे और कथावाचक का स्वर भी अक्सर गद्गद् हो उच्छ्वासो मे परिणत हो रहा था। यह थी महिमा उस आदि-कवि की सीधी-सादी रसभरी वाणी की।

कथा की समाप्ति के बाद जब श्रोताओ की भीड छट चली, तो स्वामी सत्यकेतु ने अपने भक्तो के साथ कथावाचक के आगे आकर, वय व विभूति मे बडे होकर भी बडी नम्रता से हाथ जोड नमस्ते किया। व्यावहारिक ज्ञान उनका मँजा था। आदान-प्रदान के मनोवैज्ञानिक पहलू से वे परिचित थे। अत. उन्हे पता था कि किसी दूसरे को स्वतः झुकाने की सबसे अमोघ दवा है पहले स्वय झुक जाना। किसी दूसरे से किसी वस्तु को वसूलने का आसान तरीका है पहले स्वयं अपनी वस्तु उसे दे देना। सो, स्वामी सत्यकेतु को इस प्रकार विनम्र होते देख कथावाचक मारे शर्म के सिकुड गया। यद्यपि परस्पर परिचय अभी हुआ न था, पर स्वामी जी के बडप्पन व प्रतिष्ठा के बारे मे वह सुन चुका था। कुल्लू के प्रमुख नागरिक प० हीराचन्द्र शास्त्री द्वारा रस्मी तौर पर पारस्परिक परिचय करा देने के बाद सब लोग, मन्दिर के दालान मे बिछी दरी पर बैठ, कथावाचक के सकोच-विजडित विनम्र चेहरे को देखने लगे।

"जैसा कि मैं सुन रहा था",—स्वामी सत्यकेतु जरा खखासकर, गगा-जमुनी दाढी पर हाथ सहलाते, स्वर मे मिठास घोलकर कथावाचक से बोले—"उससे भी बढकर पाया आज ! आपकी कथा और विद्वत्ता की ख्याति तो कई दिनो से कानो मे आ रही थी, पर मेरा दुर्भाग्य कि अब तक आपके दर्शन न हो सके।"

स्वामी जी की इस विनम्र उक्ति मे यह ध्वनि भी छिपी थी, कि ब्रह्मचारी आदित्यनाथ इतने दिनो से यहाँ होते हुए भी उनसे अब तक मिला क्यो नही ? पर आदित्यनाथ की दृष्टि उतनी दूर न दौड सकी। वरन् स्वामी जी की नम्रता से और भी गडकर हाथ जोडकर अधीनता भरे स्वर मे वह बोला—"मैं क्या हूँ भला आपके समक्ष स्वामी जी ? आप बुजुर्ग है हमारे, और समाज की एक महती विभूति भी। यह अक्षम्य अपराध है मेरा, कि अब तक स्वय जाकर दर्शन न कर सका !"

स्वामी जी बाग-बाग हो गये। ब्रह्मचारी की विनम्रता ने उन्हे भी जीत ही लिया। स्वरो मे पराजय की मिठास भरकर, मानो गद्गद् होकर बोले—"ऐसा न कहे आप, कि यह भूल हुई आपसे ! उम्र मे बुजुर्ग हूँ सही, पर आपके समक्ष ज्ञान मे नही, विद्वत्ता मे नही ! पर आशीर्वाद के अधिकार को नही त्यागूंगा ! मेरी शतश आशीष की आपकी विद्वत्ता भारतमाता के मस्तक को ससार मे ऊँचा करे ! भारत की महती सस्कृति की पताका को निखिल विश्व मे समुन्नत करे !"

फिर वे वहाँ बैठे श्रद्धालुओ को सबोधित करते हुए बोले—"आप लोगो ने आज स्वय देख ही लिया। ब्रह्मचारी जी के श्रीमुख से फूटती अमृत-धारा का स्वाद आपने ले ही लिया ! तो यह कुल्लू का परम सौभाग्य समझें आप लोग, कि यहाँ ऐसे महापुरुष का पदार्पण हुआ है। और यदि इस सुअवसर का लाभ आप न उठा सके तो दोष उस रत्न का नही जो जगल मे पडा रहकर भी अपने प्रभा-पुज से तम का विनाश करता रहता है, बल्कि दोष उस अज्ञान का है जो उसे पाकर भी पहचानता नही, उसका आदर करना जानता नही।"

लगा कि उपस्थित सज्जनो पर स्वामी जी के इस प्रवचन का प्रभाव कम न पडा। क्योकि सबकी सम्मानपूर्ण आँखे ब्रह्मचारी को निहारने लगी। और तहसीलदार श्री कपूरचन्द खन्ना ने तो झट अपने घर जीमने का निमन्त्रण भी दे दिया। और देखा-देखी दूसरे लोगो ने भी। और रिटायर्ड इजीनियर लाला सोमनाथ चोपडा ने तो करबद्ध आग्रह भी कर दिया कि ब्रह्मचारी जी जब तक कुल्लू मे विराजे, उन्ही की कुटिया को पवित्र करे। पर आदित्यनाथ ने बडे विनय से सबके आग्रह का सम्मान करते उनसे पीछा छुडाया। और, चूँकि रात के आठ बज चुके थे, एक श्रद्धालु भाई के घर से भोजन के लिए उसे बुलावा भी आ चुका था; अतः सत्सग की वह गोष्ठी शीघ्र समाप्त हो चली।

लेकिन आदित्यनाथ जब भोजन के बाद मन्दिर के सुनसान दालान मे अपने आसन पर बैठा विचारो की वीथियो से गुजर रहा था, कि स्वामी सत्यकेतु पुन उसके सामने आ खडे हुए। इस बार वे केवल दो थे—एक स्वय और दूसरे उनके निजी सचिव (प्राइवेट सेक्रेटरी) श्री वीरेन्द्र वर्मा जी, जिनकी उम्र अभी चालीस के पास चक्कर काट रही थी। और तपे-तपाये सोने-जैसे रंग मे उनके चेहरे का सौन्दर्य और आकर्षण, एव बोल-बतियान की मिठास और व्यवहार का सुकौशल—सब कुछ दर्शनीय था, स्पृहणीय था। एक सुयोग्य गुरु के सुयोग्य शिष्य के रूप मे वे भी वहाँ के लोगो मे कम आदरणीय न थे।

सो, जब लालटेन की धीमी रोशनी मे उस लम्बे कद की विशिष्ट आकृति को पहचान कर आदित्यनाथ ससभ्रम उठ खडा हुआ, तो स्वामी जी झट आगे बढकर उसका हाथ पकड आसन पर बैठाते हुए, स्वय भी उसके पास ही बगैर तकल्लुफ के बैठकर, अपने आज्ञाकारी सचिव को आदेश देते बोले—"जरा पार्वती देवी के घर जाकर आप 'विद्यापीठ' के कागज-पत्र तो लेते आवे वर्मा जी!"

और वर्मा जी विना किसी ननु-नच के पार्वती देवी के घर की ओर रवाना हो पडे।

"इस रात के समय यह दुबारा कष्ट क्यो स्वामी जी?" आदित्यनाथ ने अब हाथ जोडकर स्वामी सत्यकेतु से प्रश्न किया।

"दुबारा क्या तिबारा भी आना पडे यहाँ, तो अब कष्ट महसूस न होगा ब्रह्मचारी जी !" स्वामी जी ने आदर भरे स्वर मे जवाब दिया—"जब भी आऊँगा, कुछ लाभ की आशा लेकर ही। फिर कष्ट कैसा, तकलीफ कैसी ?"

"आदित्यनाथ की समझ मे कुछ न आया, कि वह कौन-सा अलभ्य लाभ है जिसकी आशा से यह वृद्ध तपस्वी इतनी रात बीते यहाँ आया है, और उसे इतना महिमान्वित करने मे तात्पर्य उसका क्या है। वह बगैर कुछ जवाब दिये कुछ आश्चर्य-विजडित आँखो से चुपचाप उनके चेहरे को ताकता वहाँ बैठा रहा।

स्वामी जी आदित्यनाथ की मनोदशा मानो भाँपकर स्वर मे एक याचक की दीनता भरकर बोले—"मै याचक बनकर इस समय आपकी सेवा मे उपस्थित हुआ हूँ ब्रह्मचारी जी ! आप जैसे विनयी विद्वान् से यह आशा करना असगत न होगा कि इस बूढे को निराश आप न करेंगे ?"

आदित्यनाथ और भी भौचक्का रह गया ! भला कौन-सी ऐसी वस्तु है उसके पास कि उसकी प्राप्ति के निमित्त ऐसी भूमिकाभरी दीनता की जरूरत ? दो-चार पुस्तको से भरी एक छोटी-सी झोली, एक लम्बी लाठी और एक पीतल के कमडल और एक कम्बल के सिवा उसके पास और है ही क्या जो किसी को वह दे सके ? और इन चीजो मे आकर्षण ही क्या है जो किसी को लोभान्वित कर सके ? पर स्वामी जी की बातों से उसे ऐसा प्रतीत हो चला कि अवश्य कोई ऐसी दातव्य वस्तु उसके पास है जो स्वामी सत्यकेतु जैसे व्यक्ति को भी लोभान्वित कर सकती

है, और यह भान होते ही उसके हृदय मे अचानक एक गौरव की गुदगुदी-सी उठ खडी हुई ।

पर अपने को अत्यत विनीत बनाकर वह हाथ जोडकर बोला—"मैं तो परम अकिंचन हूँ स्वामी जी ! देने के योग्य पास मे है ही क्या कि अहकार कर सकूँ या देने का वादा कर सकूँ ? परतु, फिर भी जो कुछ है मेरे पास—तन और मन—सब कुछ हाज़िर है आपकी सेवा मे । माँगिए मत, आज्ञा कीजिए स्वामी जी !"

स्वामी जी के चेहरे पर विजय का उल्लास चमक उठा ! बोले—"आज सचमुच विश्वास हो गया कि सच्ची विद्या विनय देती है, अहकार नही । इस अकिचन मे जो जगत् का ऐश्वर्य छिपा हुआ है, उसे ही मैं चाहता हूँ, और चाहता हूँ कि कुल्लू का यह पिछडा प्रदेश इस परम ऐश्वर्य की प्रभा से प्रदीप्त होवे ; सजीव और सुपुष्ट होवे !"

इसके बाद श्री स्वामी जी ने अपने जीवन की कई बाते सक्षेप मे बताकर इस पिछडे प्रदेश मे शिक्षा-प्रचार की अपनी व्यापक योजना की बात ब्रह्मचारी से कह सुनाई । और फिर चुपके से बताया कि—"यदि किसी समाज की मनोवृत्ति मे परिवर्तन अथवा क्राति के बीज बिखेरना हो ब्रह्मचारी जी तो सबसे पहले वहाँ की महिलाओ पर प्रयोग करना चाहिए । क्योकि महिलाओ मे जागृति का मतलब है उनमे जागृति, उनकी सतानो मे जागृति, घर-बाहर सर्वत्र जागृति । सो वृक्ष की शाखाओ को न सीचकर उसके मूल को ही सीचने के प्रयत्न पर विचार मै कर रहा हूँ ! यद्यपि लडको के लिए एक हाईस्कूल हे यहाँ ; कन्याओ के लिए एक सरकारी कन्या-पाठशाला भी ; पर वहाँ क्राति के नही, गुलामी के बीज बिखेरे जाते है ! यह सब सोच-समझकर ही मैंने सर्वप्रथम 'महिला-विद्यापीठ' से श्रीगणेश करने का सकल्प किया है, जिसमे मुझे पूर्ण आशा है कि आपका सहयोग पाकर सफलता हमे अवश्य मिलेगी ! अवश्य मिलेगी !!"

विद्यापीठ के कागज-पत्र लेकर श्री वीरेन्द्र वर्मा भी अब वहाँ आ

पहुँचे। स्वामी जी को आदित्यनाथ के सहयोग का आश्वासन मिल चुका था। वे दोनो वहाँ से विदा हो टार्च की रोशनी मे अपने बासे की ओर चल पडे।

◇ ◇ ◇

लेकिन उन दोनो के विदा होते ही ब्रह्मचारी के मन मे अन्तर्द्वन्द्वो का तूफान उठ खडा हुआ। बिछौने पर पडा-पडा वह सोचने लगा—"किसी भी धर्म, किसी भी मत, किसी भी आदर्श या सम्प्रदाय मे आस्था रखते हुए भी मनुष्य आखिर मनुष्य है। (मनुष्यता मनुष्य को मनष्य से पृथक् नही होने देगी।")स्वामी सत्यकेतु के पक्के आर्यसमाजी होने की बात उसे मालूम थी, घुमक्कडी के लम्बे अरसे मे गैर-समाजियो के प्रति आर्यसमाजियो की असहिष्णुता के अनेक अनुभव व उदाहरण उसके पास मौजूद थे, लेकिन आज स्वामी सत्यकेतु की उदारता व विनम्रता पर विचारते हृदय उसका बाग-बाग हो गया! उसे निश्चय हो गया कि यह गुण ही यहाँ स्वामी जी के इतना लोक-प्रिय होने मे कारण है। फिर उसे स्वामी जी के वे वाक्य याद आ गये जो अभी कुछ देर पहले उन्होने कहे थे—"क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, और क्या अन्य धर्मो के मानने वाले लोग, आखिर ये सब एक उसी परमपिता की ही तो सतान है? जिस प्रकार आज कथा मे आपने राम-लक्ष्मण के आदर्श प्रेम व त्याग का बडा ही हृदयग्राही वर्णन किया था, भाईचारे का यही आदर्श क्या विश्व के समस्त मानवो मे फैलाया नही जा सकता? हम सब परमेश्वर की सतान होने के कारण क्या परमेश्वर के पुत्रो मे परस्पर प्रेम के सदेशो को नही फैला सकते? नही गुँजा सकते?" फिर स्वामी जी ने स्वय बताया था कि प्रथम विश्व युद्ध की विभीषिका को वे अपनी आँखो देख चुके थे। सेना मे कप्तान के पद तक पहुँचकर अकस्मात् एक दिन सेना से पृथक् हो वानप्रस्थ के व्रत और वेष को उन्होने इसलिये ही अपनाया कि चूँकि मनुष्यों मे परस्पर फैले राग-द्वेष ही सारे झगडों व

युद्धो के कारण है, अत. वे जीवनभर मानवीय सद्भाव व प्रेम का प्रचार करते हुए ही इह-लीला का सवरण करेंगे। कितना ऊँचा आदर्श! कितनी विशाल भावना! सोचते ही ब्रह्मचारी का हृदय स्वामी सत्यकेतु के चरणो मे झुक गया। उसे यह परम सौभाग्य प्रतीत हुआ कि इस पिछड़े प्रदेश मे स्वामी सत्यकेतु के सम्पर्क मे रहकर उसे समाज-सेवा व शिक्षा के प्रचार का सुअवसर प्राप्त होगा!

स्वामी जी ने उसे बताया था—"ब्रह्मचारी जी, सस्थाएँ खडी कर लेना उतना कठिन नही जितना कि सफलता से उनका सचालन कर लेना कठिन होता है।" और यह कहकर सस्था-सचालन-सम्बन्धी अपने अनेक अनुभव भी बता गये जिनमे कुशल और ईमानदार सहयोगियो के अभाव मे अनेक सस्थाओ के जन्म लेते ही अथवा कुछ दिन बाद ही मर-मिटने की बात थी। उनके कथनानुसार देश के अनेक हिस्सो मे उनकी निज की खोली और खडी सस्थाओ मे कुछ खूब ढग से चल रही थी, कुछ बेढग से, और कुछ जन्म के बाद ही विनष्ट हो गई। सो, उनका विश्वास था, और इसीलिये उनकी यह याचना भी थी कि यदि ब्रह्मचारी आदित्यनाथ का सहयोग उन्हे प्राप्त हो जाय, तो महिला-विद्यापीठ के सफलतापूर्वक चल निकलते देर न लगेगी। कोई विशेष विघ्न-बाधा न होगी। क्योकि विद्यापीठ को जन्म वे दे चुके थे; स्थानीय आर्य-समाज-मन्दिर के विशाल हॉल मे रस्मी तौर पर उसका सचालन भी हो चुका था, एक विशाल साइन-बोर्ड भी बनकर टग चुका था, समाचार-पत्रो में विज्ञापन पढकर अध्यापक-अध्यापिका पद के उमीदवारो की अर्जियाँ भी आनी शुरू हो चुकी थी पर चुनाव अभी किसी का हुआ न था।

लेकिन जब ब्रह्मचारी ने इस योजना और प्रस्ताव के दूसरे पहलू पर विचारना आरम्भ किया तो मन मे कुछ अस्थिरता और अनिश्चय के अकुर भी पैदा होने लगे। क्योकि इतना तो निश्चित ही था कि 'महिला-विद्यापीठ' एक सस्था होगा, और सचालक होगे स्वामी सत्यकेतु जी महाराज। और जैसा कि स्वामी जी उससे बता चुके थे कि विद्यापीठ

की 'व्यवस्थापिका-समिति' का निर्माण भी हो चुका है; उसके अध्यक्ष मन्त्री और अन्य पदाधिकारियो का चुनाव भी हो चुका है; तो फिर स्वामी जी महाराज किस प्रकार का सहयोग उससे चाह रहे थे ? और स्वय स्वामी जी समिति के किसी पद पर न होते हुए भी उसके सब कुछ प्रतीत हो रहे थे। नही तो अन्य पदाधिकारियो के होते हुए भी वे ही क्यो इतने व्यग्र और समुत्सुक दीख रहे थे उसके सहयोग के निमित्त ? और चूंकि उसे अन्य अनेक सस्थाओ को निकट और दूर से देखने के अवसर प्राप्त होते रहे थे, अत उसे अब राई-रत्ती भी सन्देह न रहा कि इस सस्था के सर्वे-सर्वा, उसकी जान और जीवन स्वामी सत्यकेतु जी महाराज होगे; सस्था की सारी गति-विधि पर एकमात्र उन्ही का नियत्रण होगा, किसी दूसरे के नियत्रण को वे किसी भी सूरत मे न पसद करेगे, न बर्दास्त करेगे।

जब सस्था का यह रूप उसके सामने प्रकट हुआ, तो क्रमश भावी परिणाम भी प्रकट होने ही लगे। क्योकि कोई भी सस्था यदि एक व्यक्ति को केन्द्र बनाकर सचालित होती है तो स्वभावतः उस व्यक्ति के चारो ओर चापलूसो और अवसरवादियो की एक दीवार-सी खडी होकर अनेक अनैतिकताओ व भ्रष्टाचारो को जन्म देती है, प्रोत्साहित करती है। और वह मुख्य व्यक्ति क्रमश इस वातावरण का ऐसा आदी बन जाता है कि बगैर चापलूसो के रह सकना उसके लिए आसान रह ही नहीं जाता। फिर ऐसे वातावरण मे ईमानदारो व स्वतन्त्र-चेताओ के लिए रह पाना बडा कठिन हो जाता है; दम घुटने लगता है। तो फिर यह कैसे सभव है कि आदित्यनाथ जैसा स्वतन्त्रचेता व्यक्ति ऐसे दमघुटाऊ वातावरण के अनुकूल बना सकेगा अपने को ?

वह बडे पशोपेश मे पड गया। स्वामी जी को अपने तन-मन के सहयोग का वचन वह दे चुका था। अपने वचन से मुकर जाना क्या कम अनैतिकता होगी ? और फिर उसे याद आया अपना वह स्वच्छन्द प्रवहमान जीवन, जिसके लिये उसकी ममता मामूली न थी। सस्था का बधन,

उस प्रवाह के बीच मे टीले और चट्टान बनकर उसकी गति को अवरुद्ध और कलुषित नही कर देगा ? यह क्या जीवन का गतिरोध नही ? क्या जीवन की गति के आगे पूर्ण विराम नही ?

लेकिन फिर उसकी दृष्टि मे बन्धन के महत्व भी उभर आये। बधन मे ही तो सृजन की शक्ति भी सन्निहित है और बधन मे ही तो सृष्टि का सारा माधुर्य भी छिपा है ? इस विपुल ब्रह्माण्ड का आधार भी आकर्षण का बन्धन ही तो है ? नही तो सब कुछ छिन्न-भिन्न न हो जाय ? पृथ्वी यदि सूर्य के आकर्षण के बन्धन से छिन्न हो जाय, और सृष्टि के मूल परमाणुओ के सूक्ष्मतम खड प्रोटोन और एलेक्ट्रोन एक-दूसरे से पृथक् हो जायँ तो विश्व की सृजन-शक्ति ही नष्ट न हो जाय और बन्धन से ही तो गति और शक्ति पैदा होती है ? नदियो मे बाँध बाँधे बिना उसमे छिपी अपार विद्युत्-शक्ति को निकाला नही जा सकता। उसके जल को अनुर्वर भूमि मे फैलाकर उसमे जीवन नही डाला जा सकता। तात्पर्य यह कि जब सारा ससार ही बन्धन का परिणाम है तो बन्धन अपने आप मे बुरा नही है। इष्ट और अनिष्ट, भला और बुरा निर्भर करते है बन्धन के सदुपयोग और दुरुपयोग पर। तो बधन से कतराने या भागने की इच्छा सिवा नासमझी के और कुछ नही। उसका मन बोल पडा—(दूसरो के जीवन को गतिशील बना देना ही स्व-जीवन की सच्ची गति और प्रगति है)

तो रह गई सस्थाओ के भ्रष्ट वातावरण की बात सो, उसकी समझ मे इस वातावरण के निर्माण मे चापलूसो और अवसरवादियो का जितना हाथ होता है, उतना ही सचालको और नेताओ का भी। क्योकि उनके मन भी महत्वाकाक्षा के कीटाणुओ से रहित नही होते। अधिकार, और अधिकार से मान-सम्मान व नाम की छिपी आकाक्षा ही चाटुकारो की ओर उन्हे प्रवृत्त करती है। पर अपवाद भी हर जगह होता है। स्वामी सत्यकेतु को अपवाद मानकर ही यदि उनके इस महत् सकल्प को साकार करने मे उन्हे सहयोग दिया जाय तो नासमझी क्या ? क्या बुरा ? और इस प्रकार सोचते हुए एक समय स्वयं को सबोधित करते हुए वह भावना

भरे स्वर मे बोला—"आदित्यनाथ इसे देख, इस बधन को भी एक बार देख ! यदि इसे गले लगाकर इस पिछड़े प्रदेश को आगे बढाने के कार्य मे कुछ भी तू मदद कर सका, तो वह तेरे जीवन का सौभाग्य होगा आदित्य, दुर्भाग्य नही !"

जब एक बार इस बन्धन की ओर उसका हृदय आकृष्ट हो चला, तो इस बन्धन से होने वाले लाभो की ओर से भी वह सर्वथा उदासीन न रह सका। क्योकि यदि वह मनुष्य था, और मो भी सजीव तो यह असभव था कि दिल उसका आकाक्षा से रहित होता। पर वे आकाक्षाएँ अभी स्पष्ट रूप से मन मे उभर नही पा रही थी अत: सभाव्य लाभ भी अभी निश्चित रूप न दिखा सके थे।

फिर उसकी आँखो मे एकाएक कुल्लू का समाज आ प्रकट हुआ। कथा आरम्भ करने से पहले वह कुल्लू उपत्यका का एक हल्का चक्कर लगा चुका था। प्रकृति जिस उदारता से सौन्दर्य की वर्षा वहाँ किया करती है उसे देख वह विमुग्ध हो चुका था। बरफ की सफेद टोपियाँ पहने गगनचुँबी चोटियाँ मानो स्थान-स्थान पर पहरा देती है ! चोटियो के उदर से निकलती नदियाँ और झरने मानो जीवन के बीज बिखेरते है। शिखरो पर, पर्वत के कटिबन्धो पर फैली हुई चीड-देवदारु की हरी-भरी वन-वीथियो मे नाना प्रकार के तरु-गुल्मो मे नाचती हुई प्रकृति मानो जीवन की मुस्कान लुटाती है। और ढलवानो पर जीने की तरह बसे हुए गाँवो के दृश्य कितने सुन्दर दीखा करते है दूर-दूर से ! सेव, नाशपाती व खुमानी के बाग-बगीचे, क्यारियो मे बने हुए खेतो की उतराई और चढाई—बिल्कुल सीढियो जैसे—ये सब कम सुन्दर न थे कि वह मुग्ध न होता !

और वहाँ के वे लोग ! प्रकृति के कितने सन्निकट है वे ! किन्तु प्रकृति की यह सन्निकटता कुछ अशो मे वरदान होते हुए भी अधिकाश मे अभिशाप ही तो है ! "उनकी खूबियों को बचाते हुए अभिशापो को दूर करने मे यदि कुछ भी हाथ तू बटा सका ? तब धन्य होगा तेरा जीवन,

और धन्य होगा वह बधन जिससे तू अब तक कतराता रहा है, कभी काटता रहा है ! कितने सुन्दर है ये लोग, पर अनेकाशो मे पशुत्व की परिस्थिति से बधे हुए। प्रकृति के स्वर्गीय उपवन मे यह काँटो का कैसा कुटिल विलास ! अज्ञान के अधेरे मे किस तरह लुटा और लुट रहा है यह समाज !"

आदित्यनाथ का पेशा कथावाचक का कतई न था, पर जब सनातन-धर्म-सभा के मन्दिर मे वह जा टिका, तो सनातन-धर्म-सभा के मत्री पडित अमीरचन्द्र जी के अनुरोध को वह टाल न सका। और उसने यह सोचकर ही उस अनुरोध को स्वीकार किया कि इस कथा के बहाने वह बहुत कुछ नई बाते बता सकेगा जो यहाँ के अन्धे-सस्कारों को काटने मे सहायक हो सकेगी, कुछ मदद कर सकेगी। सो, अपने कथा के प्रभाव को परखकर उसे विश्वास हो चला कि ईमानदारी से किया गया समाज-सेवा का कार्य यहाँ असफल न होगा ! न होगा !

यह सब सोचते-सोचते ही एक समय वह निद्रा की गोद मे विलीन हो गया।

◇ ◇ ◇

लेकिन, जब प० हीराचन्द्र शास्त्री को यह निश्चित रूप से मालूम हो गया कि स्वामी सत्यकेतु ने महिला-विद्यापीठ के आचार्य-पद के लिये ब्रह्मचारी को राजी कर लिया है तो उनकी बेचैनी की सीमा न रही। वे कुल्लू के माने हुए नागरिक थे, कुल्लू के मापदड से खूब पढे-लिखे, समझदार भी, फिर भी यदि कोई बाहर का व्यक्ति इस प्रदेश मे सामाजिक कार्य आरम्भ करने के प्रसग मे उनकी बिल्कुल उपेक्षा कर दे तो स्वाभाविक ही था उनका बेचैन हो उठना ! उन्होंने ही तो ब्रह्मचारी और स्वामीजी मे परस्पर परिचय का सूत्र जोडा था। उस दिन कथा मे उन्हे ले आने का श्रेय भी उन्ही को था। पर उन्होने यह कब कहा था स्वामीजी से, कि ब्रह्मचारी को विद्यापीठ का आचार्य बना दिया जाय ? इस पद का

आश्वासन तो स्वामीजी ने स्वय उन्हे दे रखा था ? केवल पद का ही नही, बल्कि वेतन के रूप मे दो सौ रुपये मासिक का आश्वासन भी। और विद्यापीठ का 'आचार्य' पद ही कहाँ का कम स्पृहणीय था उनके लिये जब कि किसी भी शास्त्रीय अथवा स्कूल-कालेज की परीक्षा को उत्तीर्ण करने की आवश्यकता तक अनुभव न की थी उन्होने ? क्योकि उनके नाम के आगे-आगे चलती 'शास्त्री' यह उपाधि, परीक्षाओ की चक्की मे पिसकर प्राप्त की हुई न होकर कुल्लू के लोगो द्वारा ही दी हुई थी। लेकिन अब उन्हे दीख ऐसा रहा था कि स्वामी जी का वह आश्वासन और उनकी वह मीठी आशा आकाश के कुसुम या खरगोश के सींग बनने जा रहे थे, या बन चुके थे।

स्वामीजी का व्यक्तित्व सामान्य न था। हर व्यक्ति के हृदय मे उनके लिए श्रद्धा थी, विश्वास था। क्योकि अब तक जाने कुल्लू के कितने दीन-दुखियो का सहारा वे बन चुके थे। कई अनाथाओ और दीन-विधवाओ को आर्थिक सहायता वे दे चुके थे, दिया करते थे। रुपये की कीमत बहुत कुछ गिर जाने के बावजूद विद्यापीठ को पच्चीस हजार रुपये का तात्कालिक व एकमुस्त साहाय्य की घोषणा उस श्रद्धा को और भी बढा चुकी थी। श्रद्धा हो तो विश्वास की जननी हे, और जब विश्वास एक बार जम गया तो काम चल निकलते देर नही होती। स्वामी जी के कथनानुसार ही जब देश के प्रमुख धनी-मानी उनके परिचित थे, उपासक थे, तो उनके इस वचन मे भी कोई अविश्वास न कर सका कि एक-दो साल के भीतर वे विद्यापीठ के स्थायी कोश मे लाख-दो लाख की निधि आसानी से इकट्ठी कर देगे। और यह कितनी बडी घटना होगी कुल्लू जैसे एक दरिद्र व पिछडे प्रदेश के लिये! और इसीलिये तो शायद अब तक व्यवस्थापक-समिति के पास आए प्रार्थनापत्रो का चुनाव व निर्णय नही किया जा सका था!

क्योकि व्यवस्थापक-समिति के सदस्य अब यह सोचने लगे थे कि यदि स्वामी जी की कृपा व प्रयत्न से विद्यापीठ के कोश मे पैसे का

अभाव नहीं ही रह जायगा, तो फिर यह कम ना-समझी न होगी कि बाहर के अध्यापको को नियुक्त कर, बाहर से सचित इस विशाल निधि मे व्यर्थ का उन्हे ही साझेदार बनाया जाय ! सो, वे उन बाहर से आए प्रार्थना-पत्रो की उपेक्षा कर स्थानीय उमीदवारो की ओर अधिक आकृष्ट होने लगे थे। विद्यापीठ समिति के अध्यक्ष लाला रामनाथ वकील की सुपुत्री कुमारी इन्दिरा ने मैट्रिक पास कर लेने के बाद इस वर्ष ही पजाब विश्वविद्यालय की 'प्रभाकर' परीक्षा भी पास की थी। सारे कुल्लू-प्रदेश मे उस समय इससे अधिक योग्यता की महिला शायद न थी। अत यह प्रस्ताव पेश किया जा चुका था कि चूँकि प्रधानाध्यापिका पद के लिए बाहर से किसी महिला बी० ए०, बी० टी० का उपलब्ध होना आसान नही है, अत तब तक उस पद पर कुमारी इन्दिरा को ही नियुक्त कर दिया जाये। और विद्यापीठ के मन्त्री श्रीयुत रलियाराम सूद की भतीजी कुमारी कृष्णा सूद 'हिन्दी भूषण' उत्तीर्ण होने के कारण सहायक-अध्यापिका के पद पर नियुक्त की जा सकती थी। और उपमत्री प० श्री अमीरचन्द्र की भानजी श्री मनोरमा देवी सिलाई-कढाई के कार्य मे सुनिपुण होने के कारण अध्यापिका पद की हकदार मानी जा चुकी थी। और इसी प्रकार और इसी प्रकार बहुत सारी दूसरी भी।

प० हीराचन्द्र शास्त्री की आर्थिक अवस्था यद्यपि अच्छी न थी, पर कुल-गौरव के कारण वे कुल्लू के लोगो मे काफी आदरणीय थे। और स्वय सनातनधर्मी होते हुए भी आर्य-समाजी एव अब्राह्मण स्वामी सत्यकेतु के दरबार मे हाजिर होने व पैर छू-छूकर प्रणाम करने मे आचार्य-पद एव अर्थ का लोभ जितना कारण था शायद स्वामी जी के प्रति आदर भाव उतना नही। क्योकि उनकी इस समय की मनोदशा पर विचार करके ऐसा सोचना और समझना अपराध नही कहा जा सकता।

रात की नीद हराम हो चुकी थी। हर दस-पाँच मिनट बाद करवट के आघात से खाट की मचमची उस नीरव निशीथ को सरव बनाती हुई

भी उनके कानो को छू नही रही थी। व्यासा के घर्र-घर्र निनाद पर ध्यान उनका कतई न था। और व्यासा की ओर दौडती 'सरवरी' के प्रखर प्रवाह की ध्वनि भी नि शब्द-सी ही बनी थी। निराशा-निहित उनका हृदय अन्यत्र खो चुका था। यह कम निराशा की बात न थी कि विद्यापीठ रूपी स्वर्ग के सभावित फलो के बँटवारे मे उनका कोई भाग अब निश्चित न रहा! कुछ दिन पहले तक तो उसके मुख्य भागीदार के रूप मे अपने को ही वे माना करते, कल्पना किया करते!

'कार्यवाहक मन्त्री' और 'आचार्य' इन दोनो पदो के एक साथ उमीदवार थे वे। क्योकि स्वामी जी ने प्रथम-प्रथम ऐसा ही प्रस्ताव रखा था उनके सामने। लेकिन जब स्वामी जी को वर्मा जी जैसा सुयोग्य, सुचतुर, चुस्त व दुरस्त निजी सचिव प्राप्त हो गया, तो उनका पहला विचार पूरा-का-पूरा कायम न रह सका! कार्यवाहक मन्त्री का पद श्री वीरेन्द्र वर्मा को प्रदान किया जा चुका था। और जब ब्रह्मचारी आदित्यनाथ जैसा महाविद्वान् उनके हाथ मे आ गया, तो यह रहा-सहा विचार भी समाप्त हो गया कि प० हीराचन्द्र शास्त्री को आचार्य-पद प्रदान किया जाय। यह सोचकर तो शास्त्री जी को और भी परिताप हो रहा था कि उनकी चली हुई चाल कामयाब न हो सकी! कूटनीति की कुटिलता उनका साथ न दे सकी। क्योकि ब्रह्मचारी के स्वभाव को पढकर अपनी समझ के अनुसार शायद वे इस निश्चय पर पहुँच चुके थे कि अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए इस्तेमाल उसका किया जा सकता है। लेकिन जब उन्हे यह मालूम हुआ कि उसने विद्यापीठ से सिवा भोजन, वसन और आवास के और कुछ लेने से साफ इनकार कर दिया है तो ब्रह्मचारी के भोलेपन पर उन्हे अविश्वास होने लगा। क्योकि शास्त्रीय मनोविज्ञान के ज्ञान से अछूते रहकर भी व्यावहारिक मनोविज्ञान का वे अपने को महान् विद्वान् माना करते। जिस प्रकार अतिभक्ति या अतिविनम्रता चोर का लक्षण माना जाता है, उसी प्रकार उनके मत से अति-निस्पृहता या अति-त्याग भी चालाकी का ही लक्षण होना चाहिये।

तो इस प्रकार ब्रह्मचारी आदित्यनाथ भी निस्पृहता और त्याग के प्रदर्शन से विद्यापीठ को मुट्ठी मे कर सारे कुल्लू को अपने वश मे करने के सपने तो नही देख रहा ?

यह सोचते ही प० हीराचन्द्र शास्त्री के मन का पारा एकाएक गरम हो उठा ! यह कैसे सभव और सह्य हो सकेगा कि बाहर के लोग कुल्लू मे आ-आकर प्रभाव जमा ले, और उन लोगो की कोई पूछ न होने दे जो पहले से ही उस समाज के सिर पर आसन जमा बैठे हुए है ? और अब तो स्वामी सत्यकेतु भी उनकी दृष्टि मे समस्त महिमाओ से विहीन होकर ही प्रकट हुए। उनका सारा व्यक्तित्व, व्यक्तित्व का सारा माधुर्य और व्यवहार की समस्त सौम्यता मानो दगा और फरेब से गुँथी हुई प्रतीत हुई।

(यह नैसर्गिक है कि यदि मानव का मन किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रतिकूल भावनाओ से भर उठे, तो वह उस व्यक्ति या उस वस्तु की महानता या हीनता के अनुकूल प्रमाण भी ढूँढ लेता है, दलील भी ढूँढ लेता है) सो, इस समय प० हीराचन्द्र जी उन दोनो के व्यवहारो और वाणियो मे ऐसे समस्त तत्त्वों को ढूँढ-ढूँढकर, उन्हे सिलसिलेवार एक कडी मे गूँथकर जब सोचने लगे तो उनकी इस आशका के समर्थक उदाहरणो का अभाव न रहा। और जब उदाहरणों का अभाव न रहा तो अनुकूल तर्कों का अभाव ही कैसे रह पाता ? और जब तर्कों का अभाव न रहा तो असलियत ही कैसे आसीन रह जाती ? तात्पर्य यह कि इस समय उनकी नजरो मे वे दोनो छली और कपटी साबित हो चुके थे।

तो अब एकाएक उनके मन मे 'शठेशाठ्यम्'[१] की नीति का महत्व नाच उठा। चाणक्य के वंशज होने का अहकार भी था ही। उनका हृदय हु कार उठा, मस्तिष्क गरज उठा—"देख लूँगा तुम दोनो को और तुम्हारे चेले-चाटो को भी !"

---

१. दुष्ट के साथ दुष्टता (जैसे को तैसा)

इस सकल्प ने सहसा उनमे नई गरमी भर दी। जहर की दवा जहर होती है। कुछ देर पहले निराशा के आघात ने उनकी रग-रग मे बुखार की गरमी भर दी थी, पर अब प्रतिशोध के सकल्प की इस गरमी से वह नष्ट हो चली। एक नया उत्साह भी आया। प्रतिशोधक तरीको पर सोचने-विचारते एक समय उन्हे नीद भी आ गई। और दूसरे दिन छोटे बच्चे के अनेक बार ऊधम मचाने पर जब उनकी नीद खुली तो देखा कि दिन काफी चढ चुका है।

◇ ◇ ◇

स्वामी सत्यकेतु बडे आदर और आग्रह से ब्रह्मचारी को 'व्यासा' के पार एक सुन्दर स्थान मे ले जा चुके थे जहा उनका विचार था विद्यापीठ के आदर्श छात्रावास के निर्माण का। स्थान था भी बडा ही आदर्श। क्योंकि बिल्कुल उसके नीचे व्यासा की उछलती नीली धारा मानो अन्दर की शुभ्रता उगलती और अविरत अपने निनाद से आकाश को गुजाती थी। और सामने सेब के बगीचे की दोनो बगलो से कलकल करते बहते दो-दो नाले थे। और कुछ दूर ऊपर चोटियो व कटिबधो पर देवदारु के काननो का हरा-भरा सौंदर्य था। यद्यपि स्वामी सत्यकेतु स्वय एक उपासक के घर अब भी विराज रहे थे, पर वीरेन्द्र वर्मा को ब्रह्मचारी के साथ कर दिया था, ताकि आदर-सत्कार मे किसी प्रकार का अभाव न रह सके। वर्मा जी स्वय सपरिवार विराज रहे थे। कथा अभी कुछ शेष रह गई थी, अतः ब्रह्मचारी प्रति सध्या को उस मन्दिर मे जाकर कथा-वाचन कर आता।

लेकिन आज जब कथा की समाप्ति के बाद बडे आदर से उसे अपने घर ले जाकर प० हीराचद्र शास्त्री ने चुपके से बहुत कुछ कह सुनाया तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

किन्तु फिर भी बिना किसी बेचैनी के वह बोला—"मै फक्कड हूँ शास्त्री जी। कोई फक्कड का बिगाड ही क्या लेगा आखिर ?"

ब्रह्मचारी की यह उदासीनता शास्त्री जी को ज़रा भी पसद न आई। तथापि वे अपने स्वर मे अपनापन और हितचिन्ता भरकर बोले—"आपके फक्कड होने से ही सारी दुनिया तो फक्कड़ नही हो जाती ? हम तो माया-मोह वाले लोग है ब्रह्मचारी जी ! माया-मोह के महत्व को महसूस भी करते है। फिर हम कैसे इस अनिष्ट की आशका से उदासीन रह जायँ कि यदि आपने कही हम लोगो पर ही नाराज होकर इस कुल्लू को ही छोड देने का फैसला कर लिया तो ? यह क्या कुल्लू के लिये कम अनिष्ट की बात होगी कि यह पिछडा और गिरा प्रदेश आपके ज्ञान, गौरव और विद्वत्ता के सत्सग से वचित रह जाय ? लाभ उठाने से पिछड जाय ?"

ब्रह्मचारी चुप रहा। रात अधिक हो चुकी थी। दो मील दूर अपने बासे पर उसे वापस जाना था। भोजन शास्त्री जी के घर ही वह कर चुका था। उनसे विदा ले सरवरी के पुल को पार करते एक समय व्यासा के बडे पुल से होता हुआ अपने बासे पर वह आ गया।

लेकिन जब वह कमरे मे बन्द हो बिछौने पर लेट गया, तो जल्द नीद न आ सकी। शास्त्री जी की बाते एक-एक कर दिमाग मे चकराने लगी। उसे यह सोचकर बडा आश्चर्य हो रहा था कि एक तरफ तो वे स्वामी जी के दरबार मे अब भी दो-सभी हाजरी देना व उनके पाव पलोटना नही भूलते और दूसरी तरफ आज उससे यह बता रहे थे कि—"ब्रह्मचारी जी, मै ठहरा मुसीबत का मारा आदमी ! सिर पर इतने बडे परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी ! सच बताऊँ आपसे कि यह जिम्मेदारी ही मुझे सच बोलने नही देती ! मुझे पूरी उम्मीद है कि आप इस सत्य का उद्घाटन किसी अन्य के समक्ष नही करेंगे, अत. बता रहा हूँ आपसे कि यह सब धोखा है ! विद्यापीठ के इस विशाल आडम्बर का आधार मुझे लोगो को ठगने के सिवा और कुछ प्रतीत नही हो रहा ! मुझे भय है कि इस आडम्बर के चक्कर मे फसकर कही आप जैसे निस्पृह विद्वान् को भी फजीहत का सामना न करना पडे !"

इतना कहकर वे फुसफुसाते हुए स्वामी जी के निजी सचिव श्री वीरेन्द्र वर्मा के अतीत जीवन की ऐसी अनेक बाते बता गये, जिन पर सहसा विश्वास कर लेना किसी के लिए भी आसान न था। क्योकि वर्मा जी का वर्तमान जीवन और जीवन का उद्देश्य उन बातो के ठीक विपरीत प्रतीत हो रहे थे जिन्हे शास्त्री जी बता चुके थे। और स्वामी जी की उपमा तो उन्होने पीतल या ताँबे पर सोने की कलई की चमक से दे डाली थी। पर आदित्यनाथ को उनके वचन और व्यवहार के वैपरीत्य पर बार-बार आश्चर्य हो रहा था। क्योकि शास्त्री जी का सिर यदि स्वामी जी के चरणो मे बिल्कुल नीचे झुका करता, तो वर्मा जी के सामने भी उसे चरणो से गज-डेढ-गज ऊँचाई तक झुक जाना ही पडता। फिर ऐसे व्यक्ति की बात पर वह क्योकर विश्वास करे? क्योकर इस चक्कर मे पडकर नाहक मन मे बेचैनी के, आशका के, बीज बिखेरे?

रात काफी हो चुकी थी। कुल्लू की बारहमासी वर्षा की रिमझिम बूँदे भी बरसने लगी थी। अपने गाढे मोटे कम्बल मे लिपटकर नीद की मीठी-मीठी आँचल मे बहुत जल्द वह विलीन हो गया।

◇ ◇ ◇

"आओ शास्त्री! आओ!"—अपने बैठके मे मसनद पर पौढे हुक्का गुडगुडाते हुए प० अमीरचन्द्र, प० हीराचन्द्र शास्त्री को अपने घर आया देख स्वरो मे स्वागत का उल्लास भरकर बोले—"तुम्हारी उमर बडी लम्बी दीख रही है मित्र! अभी तुम्हे ही याद कर रहा था कि जाकर तुम से मिल आऊँ, पर खुशी की बात कि तुम स्वय यहाँ आ पधारे!"—कहकर वे सीधे होकर बैठ गये और आदर से गुडगुडी की नली प० हीराचन्द्र जी की ओर बढाकर मुस्कराते हुए प्रिय मित्र के मुँह को निहारने लगे।

"मै तो उतनी से ही परेशान हूँ, भाई"—पं० हीराचद्र जी अपने मित्र की शुभकामना अस्वीकारते मुस्कराते हुए बोले—"जितनी कि अभी और शेष है। मै अपनी उमर की लम्बाई को तुम्हे ही अर्पित कर रहा हूँ,

बडी शुभ कामना के साथ ! मै भला क्या करूँगा लम्बी उमर लेकर मित्र ?"
—इस बार मानो सचमुच कुछ गीलापन उनके स्वर मे आ गया। क्योकि साल के भीतर ही दो नौजवान पुत्र उनके चल बसे थे। लेकिन फिर भी उस वेदना को दबाकर मुस्कराते हुए ही वे बोले—"आज इसके बुखार, कल उसके जूडी और सिर-दर्द ! इन परेशानियो के मारे ही जीना दूभर हो चुका है। और तिस पर दिन-पर-दिन बढते परिवार के भरण-पोषण की समस्या ! फिर तुम्ही बताओ कि तुम्हारे इस वरदान को लेकर मै क्या करूँगा भला ?"

"यह समस्या तो बनी ही रहेगी मित्र, यदि तुम · नही हो जाते।"
—प० अमीरचद्र जी लेशमात्र भी सहानुभूति न दिखाकर परिहास-तरल स्वर मे बोले—"विधाता ने तुम्हे 'प्रजापति' बनाकर तो जरूर भेजा, पर आगे के लिये सोचते समय शायद अक्ल उसकी खो गई थी। नही तो यह परेशानी तुम्हे क्यो झेलनी पडती ? कसूर है वास्तव मे विधाता का; हमे उसे कोसते रहना चाहिये। और बाकी बातो को भूलकर यह जिदगी की गाडी जिस तरह भी ठीक लीक पर चल सके, उन उपायो पर विचारते रहना चाहिये, उन लीको का आविष्कार करते रहना चाहिये !"
—कहकर वे जोर से हँस भी पडे।

प० हीराचद्र शास्त्री उनके वक्तव्य के प्रथमाश से असतुष्ट होते हुए भी अपराश से उस व्यथा को भूलकर उनके साथ स्वय भी हँस पडे। शरीर से तगडे न थे, बल्कि सडे-गले-से, और उम्र भी पचास पार न कर सकी थी, पर सोलह सन्तानो के पिता होने का गौरव उन्हे प्राप्त हो चुका था। प० अमीरचन्द्र उन्हे अक्सर कलियुगी प्रजापति कहकर पुकारना अपना हक समझते, क्योकि दोनो एक-दूसरे के दोस्त जो ठहरे। यद्यपि उम्र मे चार-पाँच साल का अतर अवश्य था, शास्त्री जी छोटे थे और अमीरचन्द्र जी बडे, पर इस मामूली अतर को वे अतर नही माना करते। दोनो ही कुल्लू के माने हुए नागरिक थे, पर जनता मे आदर अधिक हीराचद्र जी का था। दोनो ही मित्र जब मिलते बेतकल्लुफी से पर पीठ

पीछे एक-दूसरे को उघाड़ने के अवसरो से बाज नही आते। लेकिन आश्चर्य कि इन हरकतो के बावजूद अब तक उनकी मैत्री मे व्याघात न आ सका था।

प० अमीरचन्द्र की छोटी कन्या उमा अब तक चिलम को नये सिरे से भरकर रख गई थी। पारी-पारी से दोनो मित्र नली के मुँह को अपनी मुट्ठी के सहारे मुँह से भिडा-भिडाकर धुएँ की सोधी गन्ध का स्वाद ले-लेकर बतियाने लगे।

प० अमीरचन्द्र जी जरा चेहरे को चमका-चमकाकर चुपके से बोले—"कल प्रबन्ध-समिति की बैठक मे तुम नही गये शास्त्री, नही तो मजा आ जाता! सच कहता हूँ यार, कि कल मैने स्वामी जी को वह रास्ता दिखाया कि भागते उसे देर न लगी! बडा नाराज हुआ, बडा नाराज हुआ, मगर हमने भी उसकी एक न सुनी! अन्त मे नाराज होकर जब बैठक से भाग ही चला, तब शिष्टाचार के नाते कुछ सदस्यो ने मान-मनौती जरूर शुरू कर दी, मगर स्वामी जी भी कल का दिन जनम भर याद रखेगा! रह-रहकर अफसोस हो रहा था कि आज शास्त्री नही रहा, नही तो मजा आ जाता!' 'कल तुम कहाँ रह गये यार?"

"छोटे बच्चे की बीमारी बडी नाजुक हो चली थी, इसी से रह गया। कल रात को किसी ने कुछ बताया तो था इस बारे मे, पर इतना ही कि सदस्यो और स्वामी जी मे बड़े जोर की झड़प हो गई। असल बात क्या थी वह मालूम न हो सकी। इसीलिए तुम्हारे पास आ गया कि आखिर बात क्या थी?"

"और मैं भी इसीलिए तुम्हारे यहाँ जाना चाह रहा था, कि तुम स्वय यहाँ आ धमके! अरे, वही, ब्रह्मचारी है न? उसी को विद्यापीठ के आचार्य-पद पर नियुक्त करने का प्रस्ताव उसने पेश किया था। पर हमने भी कल स्वामी की एक भी न चलने दी। कहाँ की उस ऐरी-गैरी अध्यापिका की नियुक्ति मे जो हम ने उसका आग्रह स्वीकार कर लिया

तो उसने भी समझ लिया कि उसकी हर बात हम स्वीकार ही कर लेगे ।"

प० हीराचन्द्र जी भीतर से अत्यन्त प्रसन्न होकर भी, ऊपर से उसे ज़रा भी जाहिर न करते, गभीर स्वर मे बोले—"लेकिन ब्रह्मचारी है तो बडा विशिष्ट विद्वान् ? और सज्जन भी है ? यह प्रस्ताव अनुचित तो न था ?"

लेकिन प० अमीरचन्द्र को अपने मित्र से इस उत्तर की उमीद न थी। कहाँ वे शाबाशी की आशा मे थे । पर मित्र के इस विपरीत रुख को देख उन्हे निराशा ही हुई । और निराशा क्रोध मे परिणत होकर बोल पडी—"तुम भी बड़े चतुर बनते हो शास्त्री ! पर इस चतुराई मे मुझे सिवा मूर्खता के और कुछ दिखाई नही देता !...न हमे उसकी विद्वत्ता से मतलब है, न सज्जनता से ! हमे मतलब है अपने कुल्लू से, कुल्लू के समाज से ! जहाँ कुल्लू के हित की उपेक्षा की जायगी, उसके हित का बलिदान होता होगा, वहाँ अमीरचन्द्र अकेला भी विरोध करने से बाज नही आयेगा ! और तुम भी क्या बोल गये, जैसे कुल्लू मे विद्वान् ही नही ? जैसे केवल मूर्ख ही भरे पडे हो यहाँ ? क्या हम-तुम इस काम को नही सम्भाल सकते ? क्या तुम आचार्य-पद के योग्य नही हो ? मै तो समझता हूँ कि तुम ब्रह्मचारी से कही योग्य हो, बहुत योग्य हो !"

अमीरचन्द्र जी के गोरे-पीले चेहरे पर आवेश की लाली उभर आई थी । उनकी गोली-गोली आँखो की भूरी पुतलियो की किनारियो मे गर्व की चिनगारिया जैसे नाच रही थी । और कानो मे सोने की बालियो का प्रकम्पन उस बुढापे मे भी चेहरे के आकर्षण को बढा रहा था । अपने मित्र की इस गर्व भरी उक्ति से प० हीराचन्द्र जी का हृदय अपने आप मे उछलने लगा । यही क्या कम था उनके लिये कि उनकी योग्यता और विद्वत्ता का लोहा मानकर प० अमीरचन्द्र ने उन्हे ब्रह्मचारी आदित्यनाथ से भी ऊँचा स्थान दे दिया ? क्योकि इस प्रकार की प्रशसा

की चाह मानव के मन मे तब और उग्र हो जाती है जब किसी प्रतिद्वंद्वी से पाला उसका पड जाता है। यद्यपि ब्रह्मचारी मे न उनकी कोई ममता थी, न कोई प्रतिद्वन्द्विता, और न स्वय ब्रह्मचारी ही प्रतिद्वन्द्वी के रूप मे आचार्य-पद का उम्मीदवार था, पर शास्त्री जी तो एक सामान्य प्रतिद्वन्द्वी के रूप मे नही, बल्कि एक कठिन प्रतिद्वंद्वी के रूप मे देख रहे थे। और प० अमीरचन्द्र जी स्वय भी अभी उसी भावना से अभिभूत होकर गर्व के ये सारे अगारे उगल रहे थे, क्योकि स्वामी सत्यकेतु ने पहले उन्हे ही इस पद का प्रलोभन देकर बाद मे हीराचन्द्र जी को प्रलुब्ध किया था। सो, यदि सच कहा जाय, तो इस समय प० अमीरचन्द्र जी अपने मित्र की नही, वरन् मित्र के बहाने अपनी निज की विद्वत्ता और बडप्पन का बखान कर रहे थे। दोनो की ही मनोदशा समान थी। दोनो का ही अभिमान स्वाभाविक था।

"बात तो खैर, ठीक हे तुम्हारी।"—शास्त्री जी आतरिक प्रसन्नता से मित्र की बात का समर्थन करते हुए भी, ऊपर से कुछ चिता जाहिर करते बोले—"लेकिन, मेरी समझ मे, स्वामी का इस प्रकार खुला विरोध करना तुम्हारा ठीक न रहा दोस्त!"

"हुँह!"—अपने मित्र के कायरपन पर कुछ खीझकर, हुक्के का धुआँ मुँह से फेकते हुए प० अमीरचन्द्र जी बोले—"और इसी से शायद कल घर मे छिपे रह गये तुम? तुम्हारी यह आदत मुझे कतई नापसन्द है, कि सामने न आकर टट्टी की ओट से ही तुम हमेशा शिकार खेलना चाहते हो। मुझे इस तरह की आदत से सख्त स सख्त नफरत है, शास्त्री!"

यह कहकर मानो क्रोध का बोझ हलका करने के लिये ही कस-कस कर गुडगुडी के कश खीचत हुए जरा दूसरी ओर मुँह किये मानो उत्तर की प्रतीक्षा मे बैठे रहे।

पर शास्त्री जी क्रुद्ध रचमात्र भी न हुए। अपने मित्र के हाथ से हुक्के की नली अपने हाथ मे ले, एक हल्का-सा कश लेकर मुस्कराते हुए

इतमीनान से बोले—"मै वास्तव मे कायर हूँ चौधरी। तुम्हारी बात का प्रतिवाद मे नही करता। लेकिन तुम्ही बताओ कि हम करे क्या? सिवा टट्टी की ओट से शिकार खेलने के दूसरा कोई चारा ही क्या है? सोचता तो मै भी बहुत कुछ हूँ! बुद्धि तो मेरी भी बहुत तेज चला करती है। पर करूँ क्या? मजबूरी मे मन मसोसकर रह जाता हूँ!"

"हुँह, मजबूरी कैसी? कायरपन को ढकने का बहाना!"

"कायरपन ही सही! माफी माँगता हूँ। और उमीद करता हूँ अपने वीर मित्र के पद-चिह्नो पर चलकर कभी इस कायरपन के कलक को धो भी डालूँगा। पर, अभी तो मै सुनने आया हूँ कल की उस घटना को जिसमे मेरे वीर मित्र ने उस महामहिमाशाली स्वामी को दे मारा चारो खाने चित्त!"—कहकर वे मुस्कराते हुए हुक्का गुडगुडाने लगे। मुस्कराती आँखो से मित्र के कुछ बोझिल मुँह को निहारने लगे।

लेकिन मित्र का क्षणिक क्रोध अब शात हो चुका था। किंतु आकाश से बादल के उड जाने के बाद भी उसकी झीनी-झीनी रेखा अब भी विद्यमान थी। पर स्वय अमीरचन्द्र जी मे अपनी कल की कारगुजारी सुनाने की उत्सुकता भी कम न थी, अत अपने क्रोध को भूलते उन्हे देर न लगी।

सीधे होकर बैठ गये। शास्त्री जी के हाथ से हुक्के की नली अपने हाथ मे थामते हुए चुपके से बोले—"जब स्वामी ने बहुत सारी भूमिका बाँधकर, ब्रह्मचारी को 'महामहो'[१] सिद्ध करते हुए यह प्रस्ताव पेश किया तो सब एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। यद्यपि ब्रह्मचारी के विरुद्ध वातावरण तैयार मै कर चुका था, पर खुले आम विरोध करने का साहस उस समय किसी मे भी न था। मैने देखा कि मोर्चा हाथ से निकलना चाह रहा है तो कमर कसकर मुझे ही आगे आना पडा!"

"तो मुझे ही केवल कायर तुम क्यो समझ रहे हो यार?"

---

१ **महापंडित, महामहोपाध्याय**

"नही, नही !"—प० अमीरचन्द्र जी इस बार मुस्कराकर प्रतिवाद करते बोले—"तुम्हारी बिरादरी के लोगो की कमी नही है, इसे मैं मान गया दोस्त ! खैर। प्रेजीडेंट लाला रामनाथ जी इसलिये स्वामी को नाखुश करना नही चाह रहे थे कि अपनी पुत्री को प्रधानाध्यापिका पद पर नियुक्त जो करवाना है उन्हे। और दूसरे, स्वामी पजाबी और लाला रामनाथ भी। और जनाब लाला जी मुझे इसलिये नाखुश रखना नही चाह रहे थे कि जब पजाब के किसी शहर मे उनकी वकालत न चल सकी तो यहाँ हम लोगो के सहारे ही तो वे पैर जमा सके ? और आज भी यदि हम दोनो का सहारा उनसे छिन जाय तो टिकना यहाँ मुश्किल हो जाय उनका ?"

अब प० हीराचद्र जी भी कुछ-कुछ गौरव महसूस करने लगे। और प० अमीरचद्र बुझी चिलम को फिर से बुझवाकर, मुँह से धुआँ निकालते हुए बोले—"लेकिन जब मैने जोर देकर कहा कि—'और सदस्यो की क्या राय होगी इस प्रस्ताव के बारे मे मै नही बता सकता, पर मै तो इसके सख्त खिलाफ हूँ कि किसी बिना जाने-पहचाने पुरुष के, और खासकर एक जवान पुरुष के हाथ मे अपनी जवान बेटियो और बहनो के भविष्य को सौप दूँ, अथवा अपने समाज को सौपने की सलाह दे सकूँ' तो पासा पलटते देर न लगी।"

"शाबाश ! शाबाश, चौधरी !"—प० हीराचन्द्र जी शास्त्री मानो खुशी मे उछलते हुए बोले—"अब मै मान गया तुम्हारी अक्ल का लोहा ! बडी तगड़ी आपत्ति रही तुम्हारी !"

प० अमीरचन्द्र जी अपने मित्र की शाबाशी से उत्साहित हो सीधे होकर बैठ गये। हुक्के की नली उनके हाथ मे थमाकर स्वर मे गर्व भर-कर बोले—"और जानते हो ? मेरे इस एतराज से जहाँ दूसरो के हृदय मे हिम्मत भर आई, वहाँ स्वामी और वर्मा के चेहरे पर एकाएक एक लाली उभरकर, फिर दूसरे ही क्षण मुर्दनी भी छा गई। पर स्वामी जल्द सम्हल गया। ब्रह्मचारी की महानता के गीत गाते हुए बोला—

"उनकी विद्वत्ता से तो आप सब परिचित हो ही चुके है। उसके बारे मे सफाई या सबूत पेश करने की आवश्यकता अब नही रही। किन्तु, जहाँ तक चरित्र का प्रश्न है, सो उस व्यक्ति के चेहरे से, बोल और व्यवहार से ही उसका ठीक पता चल जाता है। सो, यदि ब्रह्मचारी आदित्यनाथ के चेहरे पर चरित्र की उज्ज्वलता को कोई न देख सके, तो मै समझता हूँ कि दोष उस देखने वाले का है, न कि उस चरित्रवान व्यक्ति का ? यदि मुझ पर विश्वास है आप लोगो का तो मैं तो बडी दृढता से कहूँगा कि उस जैसा चरित्रवान और विद्वान् सारे देश मे ढूँढने पर भी मिल जाय तो यह हम सबो के लिये एक अलभ्य लाभ होगा, बडे सौभाग्य की बात होगी।"

कहकर अपने मित्र के हाथ से वे हुक्के की नली खीचकर गुडगुडाने लगे, और प० हीराचद्र शास्त्री मुस्कुराते हुए बोले—"लेकिन स्वामी का जबाब भी उतना ही तगडा रहा दोस्त, जितना कि तुम्हारा एतराज ! स्वामी को, आखिर दाद देनी ही पडेगी प्यारे !"

लेकिन अपने दोस्त द्वारा दुश्मन को दी हुई दाद उन्हे पसन्द न आई। मानो स्वाभिमान को कुछ ठेस लगी। बोले—"पहले आगे भी सुन लोगे कि मैंने क्या जवाब दिया कि लगे पहले ही दाद देने ! मैने कहा—'अपने परम आदरणीय परम पूज्य श्री स्वामी जी महाराज की बुद्धि और विवेक पर अविश्वास करने की धृष्टता मै नही कर सकता। मै एक नाचीज़ हूँ उनके सामने। उनके महान् त्याग के समक्ष भला किस नाचीज का सिर सहसा श्रद्धा से न झुक जायगा। पर अत्यन्त विनय के साथ श्री चरणो मे निवेदन यह अवश्य करूँगा कि केवल चेहरे से, बोल-व्यवहार से ही किसी व्यक्ति के चरित्र का पता नही चल जाता। इसके लिये जरूरत होती है उस व्यक्ति के पिछले जीवन की पूरी जानकारी की। ऐसा अक्सर देखा गया है कि बोल-व्यवहार, चेहरा-मोहरा और वेश-भूषा से पूरे सत से दीखते व्यक्ति भी अन्त मे पूरे शैतान साबित हुए हे। और जो शैतान होता है वह भगवान् से भी छिपा रह सकता है।

वह भगवान् से भी तब तक छिपा रह सकता है जब तक कि उसकी पूरी पोल न खुल जाय। और पोल खुल जाने पर भगवान् क्या, इन्सान भी उसे जल्द पहचान लेता है। अत मै स्वामी जी महाराज के प्रस्ताव का परम विनीत भाव से, पर दृढता के साथ विरोध कर रहा हू, सज्जनो।"

"शाबाश ! शाबाश चौधरी ! हजारो बार शाबाश।" इस बार धरती से मानो उछलकर हीराचन्द्र जी शास्त्री बोले—"मै मान गया, मान गया कि तुम भी शैतान के उस्ताद ही निकले ! अब तक मै अपने को ही उस्ताद माने हुए था, पर अब तो तुम्हारी शागिर्दगी मे ही सौभाग्य समझूँगा प्यारे। लो, अब से तुम गुरु, और मै चेला !"—कहकर उन्होने अपनी ऊनी बन्दर टोपी को सिर से उतारकर प० अमीरचद्र के चरणो पर रख दिया।

प० अमीरचद्र भी कम प्रसन्न न हुए। टोपी को सस्नेह अपने मित्र के सिर पर पुन: रखते हुए चेहरे को नचाते, मुस्कुराते हुए बोले—"और उस समय फिर अफसोस कि तुम नही रहे, शास्त्री। नही तो देखते जी भरकर उन दोनो के चेहरे ! मेरी आदर भरी उक्ति से स्वामी के चेहरे पर प्रसन्नता के बजाय उस समय उदासी और घबराहट की रेखाएँ उभरती दीखी। मानो उसी को लक्ष्य कर, मै यह सब कह रहा होऊ ! और वर्मा का खूबसूरत चेहरा भी खूब कीर्तिहीन बन चुका था, यद्यपि चेहरे से झेप को मिटाने की भरपूर चेष्टा वह कर रहा था !"

पण्डित जी पुन हुक्का गुडगुडाने लगे। और हीराचद्र शास्त्री इस बार खूब चुपके से बोले—"लेकिन एक बात बताना तुम से भूल गया था चौधरी ! बात मजेदार भी है, जरूरी भी। प्रसग छिड जाने से अभी याद आ गई। वर्मा के चेहरे पर जो झेप तुमने लक्ष्य की वह अकारण न थी। बधाई दूँगा कि वार तुम्हारा व्यर्थ न गया। अनजाने ही सही, पर तीर निशाने पर जा लगा। इन हजरत के पिछले जीवन की जानकारी मुझे मिल चुकी है। नजदीक के पडोसी ही तो ठहरे ! सौ-सवा-सौ मील की दूरी, दूरी तो नही होती। उस दिन बंजार के मेले मे एक सज्जन

मिले थे, इनके गाँव के। सुनाने लगे हजरत का गुणानुवाद ! बोले—'वह तो, सुना है कि आपके कुल्लू मे जाके पैगम्बर बन गया है।' और मैने जवाब दिया—'पैगम्बर नही, पैगम्बर के मत्री।' सज्जन कुछ हँसोडे दीखे। बोले—'पैगम्बर का मत्री तो पैगम्बर से भी बढा-चढा होता है पण्डित जी। और यदि बुरा न माने आप तो मेरा तो ख्याल है कि पैगम्बर का मन्त्री सिवा शैतान के और कोई हो ही नही सकता !''

इतना कहते-कहते शास्त्री जी जोर से हँस पडे और प० अमीरचद्र भी। लेकिन उनमे जानने का कौतूहल अब इतना प्रबल हो उठा कि मसनद पर पौढे न रह सके, सीधे बैठकर, हुक्के की नली पर हाथ रख, सावधानी से सुनने लगे।

शास्त्री जी व्यग्यभरी मुस्कुराहट से चुपके-चुपके फिर बोले—"इस चालीस की उम्र मे ही जाने कितने चोले बदल डाले उन्होने। न धर्म को छोडा, न राजनीति को और अब हजरत फिर धर्म पर उतर आये। कभी इनका सिर भी ब्रह्मचारी आदित्यनाथ की तरह ही, लम्बे बालो से भरा होता; लम्बी-लम्बी दाढी और मूँछो से भरे चेहरे की रौनक देखते ही बना करती ! और चूँकि गोसाईं चन्द्रदत्त महाराज ने धार्मिक क्षेत्र मे मुछ-मु डेपन को अपने व्यक्तिगत उदाहरण से अब जायज करार दे दिया है, अत वर्मा जी महाराज भी मूँछ मुडाकर ही अब हम कुल्लूवासियो को मूँडने चल पडे है दोस्त !"—कहते-कहते वे पुन. जोर से हँस पडे।

पर अमीरचन्द्र जी इस हँसी मे पूरा योग इस बार न दे सके क्योकि पूरी कथा सुनने की उतावली मे वे हँसने के मूड मे कतई न थे।

"पहले असल बात तो पूरी तरह सुनाओ शास्त्री !"—उत्सुकता भरे स्वर मे जरा खिसियाकर वे बोले—"अलकार बाद मे लगा लेना !"

"अजी सुनो भी तो !"—शास्त्री जी उनकी उत्सुकता को दबाने के ख्याल से फिर आगे बढे—"बात तो इतनी बडी है कि थोडे समय मे न सुन सकना आसान है, न सुना सकना। पर सक्षेप मे, साराश उसका बताये देता हूँ कि हजरत किसी भी गुण से रिक्त नही है। अभिनय की

कला मे वडे ही कुशल ! आज महीनो मे हमारे बीच विराज रहे है, पर बोल-व्यवहार से किसी को भी सदेह हो सकता है कि इन्होने इन हाथो जाने कितनी हत्याएँ की है ? कितनो को ठगा है ? और कितनी औरतो को बहकाकर उनका सर्वनाश भी कर डाला है ?"

उनके हत्यारेपन की बात सुनते ही प० अमीरचन्द्र के चेहरे पर आतक की रेखा उभर आई। बदन मे पसीना आ गया।

"एक और मजेदार बात बताऊँ तुमसे !" शास्त्री जी फिर बोले, "हजरत ने एक कम्पनी भी खोल रखी है, खूब भारी-भरकम नाम से। पहले तो पहाडी मूर्खों को डरा-धमकाकर या राजी-खुशी से इस कम्पनी के हिस्सेदार बनाकर हजारो पर हाथ साफकर उन्हे अन्त मे धत्ता दिखा दिया, और अब इस ताक मे है कि किसी मालदार मुर्गी को हिस्सेदार बना उस पर भी हाथ साफ किया जाय।"

फिर जरा स्वर को और धीमा बनाकर, जरा और नजदीक खिसककर वे बोले—"लाला शकरलाल के घर जो वह रोज यज्ञ कराने जाता है, और वह सारा परिवार उसे गुरु मानकर पूज भी रहा है, तुम देख लेना कि यह गुरु-शिष्य-सम्बन्ध कम महँगा साबित न होगा लाला शकरलाल के लिये !"

"तो हमे आगाह कर देना चाहिये उस बेचारे को !"—प० अमीरचन्द्र जी झट सीधे होकर मानो एकाएक उपकार-भावना से भरकर बोल उठे।

और प० हीराचन्द्र ने उस भावना का मजाक करते तिरस्कार भरे स्वर मे जवाब दिया—"रहने भी दो यार, अपनी इस उदार भावना को। आगाह करने का मतलब क्या है, जानते हो ? अपनी जान को जोखिम मे डालने की मूर्खता। सो हमे इन झझटो मे नही ही पडना चाहिये। और ये भी किस लिये ? इन वदतमीज पजाबियो के लिये जो हम कुल्लू वालो को इन्सान भी नही समझते ? नमस्ते करो तो नमस्ते तक का सीधा जवाब भी नही देते ? यह कहाँ का न्याय है कि हमारे सिर पर

जबरन बैठकर हमे ही खाये, और हमी को नफरत की निगाहो से निहारे भी ?"

हीराचन्द्र शास्त्री इस बार एकाएक आवेश मे आकर एक अन्य प्रसग को लेकर बोल पडे—"तभी तो मैं कहता हूँ तुमसे बार-बार, कि हमे कुल्लू को पजाब से अलग करने का आन्दोलन छेडना चाहिये, ताकि पजाबियो के शोषण और बदतमीजी से पिंड हमारा छूट सके। सरकारी दफ्तरो को देखो ! अगर एक भी कुल्लूवासी सिवा क्लर्क के आफीसर मिल जाय ? अपने कुल्लू के उगते नौनिहालो के भविष्य के लिये भी तो हमे सोचना ही चाहिये ? क्या हमेशा वे क्लर्क और चपरासी बनकर इन पजाबियो के बूटो तले ही पिसेगे ? एक तो अग्रेजो की हुकूमत और तिस पर से पजाबी अफसरो की लात भी ?"

इस बार आवेश से कुछ अवश होकर वे खाँसने भी लगे, और प० अमीरचन्द्र जी उनकी बात पूरी होने की प्रतीक्षा करने लगे।

खाँसी को दबाकर गला खखासकर शास्त्री जी फिर बोले—"लाला शकरलाल स्वय घर का बडा मालदार है, पर कुल्लू के जगलात का आफीसर बनकर कुल्लू को कगाल किये जा रहा है। परले दरजे का बेईमान और घूसखोर है। और अपने पापो पर पर्दा डालने के लिये इन आर्यसमाजी धूर्तो से प्रतिदिन अपने घर मे यज्ञ भी रचा रहा है। धार्मिकता का ढोग रचा रहा है। वास्तव मे मेरी आत्मा उस दिन बडी ही सतुष्ट होगी मित्र, जिस दिन सुनूगा कि वर्मा ने इसे भी उल्लू बनाया। इस पर भी हाथ साफ कर गया।"

उनकी खाँसी का जोर इतना बढ गया कि उस पर काबू पाने मे उनकी स्वल्प शक्ति का अधिकाश खर्च हो गया। और पजाबियो के विरुद्ध उनका यह जोश-खरोश भी अधिक देर तक टिका न रह सका। बवडर आया, झट बिला भी गया। क्योकि वास्तविकता का जामा पहने परिस्थितियाँ उनकी नजरो मे नाच गई। अपने व अपने समाज मे उस त्याग व आत्म-शक्ति का अभाव अनुभव करते उन्हे देर न लगी जिसके

वल पर किसी प्रबल विरोधी का विरोध किया जा स्के । परन्तु अपनी आँखो मे वे स्वय अपराधी बनकर आ खड़े हुए । क्योकि वास्तवियत उन्हे बार-बार व्यग्य भरे इशारे से दिखलाने लगी कि कुल्लू के इलाके मे पजाबियो के प्रभुत्व व शोषण को मजबूत करने मे उन जैसे लोग भी कम उत्तरदायी न थे । पजाबी अफसरो व वकीलो के साथ मिलकर वे उस शोषण मे स्वय हाथ वटाया करते । और भीतर मे कुढते रहकर भी ऊपर से उनकी जी-हुजूरी मे ही दिन विताते । अन्यथा उन्हे भूखो मरने का भय था । अपने बडे परिवार के भरण-पोषण की समस्या बड़ी जटिल थी । यदि पजाबी अपनी शान-शौकत व दिखावे के जीवन के लोभ मे भारत मे अग्रेजी राज्य के मजबूत पाये बने हुए थे, तो प० हीराचन्द्र व अमीरचन्द्र जैसे लोग भी अपनी रोटी व सुखी जीवन के लोभ मे कुल्लू के समाज पर पजाबियो व पजाबी अफसरो के प्रभुत्व व शोषण के सुदृढ स्तम्भ बने हुए थे ।

दोनो मित्रो मे इस विषय पर विचार-विमर्श होता रहा । फिर उस विषय से हटकर वे प्रस्तुत विषय पर आये । श्री बीरेन्द्र वर्मा के जीवन की जानकारी उन्हे मिल चुकी थी । स्वामी सत्यकेतु द्वारा समय-समय पर किये वायदे व दिये वचनो की असगतियाँ उन्हे उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे भी सदिग्ध बना चुकी थी । ब्रह्मचारी आदित्यनाथ के बारे मे कुछ निश्चय वे नही कर पा रहे थे । कभी अपनी परख की कसौटी पर उसे खरा पाते, और कभी अन्य महापुरुषो के व्यवहार के आधार पर उसे भी उन्ही की बिरादरी मे शामिल कर देते । लेकिन अन्त मे दोनो मित्र इस निश्चय पर पहुँचे कि, जाहिर तौर पर, तीनो मे से किसी से भी दुश्मनी मोल लेने की गलती न की जाय । प्रतीक्षा की जाय कि आगे क्या गुल खिलता है ।

◇ ◇ ◇

लेकिन शास्त्री जी अपने मित्र से विदा ले, अपना तग पायजामा और शायद कभी न धुला, वद गले का काला ऊनी कोट झाडने, बादामी रंग

की बदर टोपी को सिर पर व्यवस्थित करते, टेढी एडी के जूते पैरो मे सम्हालते अपने घर की ओर जाते-जाते जा पडे कचहरी की ओर। क्योकि कुल्लू के एक किसान से रास्ते मे ही उनकी भेट हो गई जो अपने वकील लाला रामनाथ जी के रुख से बडा ही परेशान हो रहा था। पुराने ढग का सफेद ऊनी जामा, पायजामा और गोली गदी टोपी मे लिपटे हुए उसके व्यक्तित्व से परेशानी साफ प्रकट हो रही थी। रग खूब गोरा-गोरा, चेहरे का नक्शा भी आकर्षक, पर पैतीस-चालीस की उम्र मे ही उस पर झुर्रियाँ उभर आई थी। हाथ मे जगली काठ की खुरदरी छडी थी, और पैरो मे रबड के तले वाले, कपडे के जीर्ण-शीर्ण जूते।

झुककर बडे आदर से शास्त्री जी के पैर छूते-छूते ठेहुने छू, प्रणाम जताकर वह हाथ जोड दैन्यभरे स्वर मे बोला—"गरीब उजड जावे गुरुजी, अगर नजर ना करो आप!"

"नही कालू!"—शास्त्री जी उसे आश्वासित करते हुए बोले—"तू क्यो उजडेगा? उजडे तेरा दुश्मन! बता, क्या बात है जो इतना परेशान हो पडा है तू?"

"परेसान तो होना ही हुआ गुरुजी! सारी जायदाद रेहन पर चढ गई, मगर फिर भी मुकदमे से निस्तार न हुआ। मैं कगाल हो गया, मगर अब भी ओकील साहब का पेट न भरा! कहता है, पचास रुपया और लाकर दे, तो मुकदमा जिता दूँ तेरे को। कहता है, हाकिम मुकदमा लबा ले गया, तो मेरा क्या कसूर? तो क्या, मेरा कसूर है गुरुजी कि इतना लबा मुकदमा गया, इतना मेरा खरच हो गया, फिर भी फैसला न हुआ? आपने ही तो कहा था गुरुजी, 'कालू, पचास रुपया पर ठेका कर ले ओकील से, बडा अच्छा ओकील है। मुकदमा जिता देगा तेरा। बाल-बच्चो का पेट काटकर पचास दिया। तिसपर और पचीस। अब और पचास कहता है। कहता है, अगर न दूँ तो जेल हो जायगी।' ·· अब आप ही उद्धार करो गुरुजी। पैरो पडता हूँ आपके!"—कहते हुए उसने सचमुच उनके पैर पकड लिये। रोने भी लगा।

"ना, ना,"—शास्त्री जी मानो दया से भरकर उसका हाथ पकड कर ऊपर उठाते हुए बोले—"फिकर न कर तू, अभी सब ठीक कराये देता हूँ ! सब ठीक हो जायगा ! तुझे क्यो जेल होगी भाई ? जेल होवे तेरे दुश्मन को ।"

और कालू को सचमुच ही बडी राहत मिली शास्त्री जी के इन शब्दो से। उससे बोलते-बतियाते कचहरी पहुँचकर लाला रामनाथ वकील से उसका फैसला जल्द करा दिया यद्यपि मुकदमे के फैसले मे अभी काफी देर थी। अर्थात् पचास के बजाय केवल बीस रुपये से फैसला हुआ जिनमे पाँच रुपये बतौर कमीशन के शास्त्री जी के भी थे।

इस काम से फुर्सत पाकर श्री लाला जी श्री शास्त्री जी को अकेले ले जाकर बोले—"क्यो शास्त्री, कल तुम बैठक मे नही आये ?"

शास्त्री जी लाला जी से उम्र मे दसेक साल छोटे होने के कारण उनका बडे भाई की तरह आदर करते थे। और लाला जी उन्हे छोटे भाई की तरह प्यार से 'तुम' कहकर सबोधित करते थे।

जवाब मे शास्त्री जी बोले—"कल मुझे भी बुखार था, और छोटे बच्चे को भी। आजकल वह परेशानी है लाला जी, कि क्या बताऊँ आपसे।"

"हाँ, सो तो है ही !"—लाला जी सहानुभूति दरशाते हुए बोले—"भगवान् की मर्जी ! नही तो परेशानी किस बात की रह जाती तुम्हे, अगर वे दोनो ..." कहते-कहते मानो लाला जी का स्वर भारी हो गया।

शास्त्री जी चुप रहे। लाला जी फिर बोले—"तो कल बैठक मे हुई बात शायद मालूम हो चुकी होगी तुम्हे ?"

"कुछ-कुछ !"

"भई, कल स्वामी जी का रुख देख मुझे तो बडा अचभा हुआ ! मुझे तो पहले यह मालूम था कि विद्यापीठ के 'आचार्य' पद के मुतल्लिक तुम से बात तै हो चुकी है उनकी। मगर जब उस पद के

लिए कल उन्होने ब्रह्मचारी जी का नाम 'प्रोपोज' किया तो सभी मेंबरो को बडी हैरानी हुई! आखिर बात क्या है? उनके दिल मे यह एकाएक तबदीली क्यो?"

"बात कुछ नही। पर उनका दिल तो दिन मे दस बार बदला करता है, लाला जी!"

"सो तो कुछ-कुछ दीख रहा है। मगर यह तो ठीक नही कि किसी बगैर जाने-पहचाने शख्स को अपनी बहनो और बेटियो के बीच बैठाकर, उनका 'कन्ट्रोल' उसके हवाले कर दिया जाय?"

"स्वामी जी के लिए तो सब ठीक है लाला जी! स्वामी जी जो ठहरे! पता नही, घर-बार कभी रहा भी हो उनके? और जिसके घर-बार कभी रहा ही नही वह दूसरो की बहन-बेटियो की जिन्दगी व इज्जत-आबरू की अहमियत को भला क्या समझ सकेगा?"

लाला जी कुछ देर चुप रहे। मानो दिल दुविधा मे पड गया। फिर जरा हिचक भरे स्वर मे बोले—"मगर स्वामी जी तो वे तो बानप्रस्थी है न? घर-बार तो रहा ही होगा?"

"उनके कहने के मुताबिक ही तो? और यदि उनके कहने पर ही विश्वास कर लिया जाय, तो इस पर भी विश्वास करना ही होगा कि वे विद्यापीठ को एक मुश्त पच्चीस हज़ार रुपये दे ही देगे? साल-दो-साल के भीतर लाख-दो-लाख रुपये भी 'फिक्स्ड डिपाजिट' मे जमा करा ही देगे?"

लाला जी शायद शास्त्री जी के शब्दो का मतलब ठीक से समझ न सके। क्षण भर अवाक् आँखो से उनका मुँह ताकते रहे। फिर बोले—"तुम्हारा मतलब नही समझा शास्त्री?"

"मतलब तो साफ है लाला जी! और वकील की अक्ल कोई कमजोर नही होती जो उसे समझाने की जरूरत? पर यह तो आप खूब जानते है कि स्वामी जी महाराज की उदारता केवल विद्यापीठ पर ही नही बल्कि इस कुल्लू के अन्य अनेक स्थानो पर बहुत पहले भी बरस

चुकी है। लेकिन जिस प्रकार उन स्थानो के चातक अब तक टापते ही रह गये, मुझे पूरी उमीद है कि स्वामी सत्यकेतु जी महाराज विद्यापीठ के मुतल्लिक भी कुछ और बनकर अपने व्रत मे खलबल नही डालेगे। यानी विद्यापीठ के हम चातक स्वाती की उन बूँदो को, जिनकी स्वामी जी ने हम पर खूब वर्षा की है और आगे बरसाते रहने का वायदा भी किया है, सिर्फ याद करके अथवा सपने मे ही पीकर सन्तोष कर जायँ तो ठीक ! वर्ना व्यर्थ की बेचैनी से क्या लाभ ? और हवा के महलो मे विचरने मे क्या लाभ ?"

लाला जी मानो अब भी न समझने का स्वाग करते मुस्कराते हुए बोले—"मगर देख रहा हूँ कि तुम्हारी इस पहेली मे वकील की अक्ल भी उलझ ही गई ! अगर अक्ल इसमे ही उलझी रह गई, तो बाल-बच्चो की रोटी का क्या होगा ? और अपना क्या होगा जब आज शाम को तुम्हारी भाभी का मुकाबला करना पडेगा ?"

इस पर शास्त्री जी ठहाका मारकर हँस पडे। लाला जी भी हँसे।

शास्त्री जी हँसते हुए ही बोले—"अच्छा ! तो कुल्लू के सबसे सीनियर वकील की अक्ल का आज इम्तहान हो गया। लेकिन उतना तो जरूर आपको याद होगा कि स्वामी जी महाराज को पधारे यहाँ साल के लगभग हो चुका। तब से अब तक उनकी कही बातो का आपस मे मेल तो बिठाइये ! तब, सब समझ मे आ जायगा आपको ! पर विद्वानो को छोटी बात समझ नही आती। आप ठहरे एम ए, एल-एल बी., और बहुत बडे ! हम कुल्लू के लोग अनपढ, गँवार और मूर्ख ! बिल्कुल छोटे ! इसीलिए छोटी-छोटी बातो पर भी ध्यान रखकर असलियत का पता जल्द लगा लेते है !"

इन बातो का व्यग्य मानो लाला जी को जा चुभा ! कुछ अप्रतिभ-से बोले—"तुम तो बात का बतगड बना गये शास्त्री। अच्छा तो, मै चलता हूँ। एक मुवक्किल की पेशी का वक्त अब हो रहा है। कागजात पढूँगा।"

"नही, नही।"—शास्त्री जी उन्हे रोकते हुए बोले—"अभी बहुत

कुछ बाते करनी है आप से !"—कहकर चुपके-चुपके उन्होने एक-एक कर वे सभी बाते बता डाली जो मौके-बे-मौके स्वामी जी के मुख से निकली थी पूरी होने के लिये, पर पूरी न हो सकी थी, न पूरी होने की उमीद ही थी। शास्त्री जी की प्रखर स्मृति पर लाला रामनाथ जी को कम आश्चर्य न हुआ।

फिर शास्त्री जी ने कहा—"तो लाला जी, इसकी ही क्या उमीद है कि वह पच्चीस हज़ार अथवा लाख-दो-लाख का थैला विद्यापीठ के खजाने मे कभी जमा हो सकेगा ? सस्कृत मे एक कहावत है—'अहं डपोरशखोऽस्मि वदामि च ददामि नो।' सो, यदि सच बताऊँ तो आपके स्वामी जी महाराज भी डपोरशख के चाचा से कम हमे नही दिखाई देते !" कहते-कहते वे दबकर हँस भी पडे।

लगा कि लाला जी शास्त्री जी की बातो के कायल हो चुके है। और साथ ही उनके चेहरे पर निराशा और खीझ की उभरती आभा भी दीखी। निराशा इस लिये कि जब स्वामी जी महाराज को शास्त्री जी डपोरशख सिद्ध कर चुके तो उस विपुल धन-राशि की उमीद खरगोश की सीग बन गई जिसे देने व सचित करने के निमित्त वचन वे (स्वामी जी) दे चुके थे। और जब धन की उमीद रही नही तो विद्यापीठ-समिति की अध्यक्षता से लाभ क्या ? उससे सम्मान क्या ? उनकी पुत्री तो, खैर, अचिर भविष्य मे किसी धनी घर मे ब्याही जाकर धन से रिक्त नही ही रहेगी। लेकिन इस बात पर उन्हे बडा गुस्सा आ रहा था कि नाहक उनके नाम मे एक ऐसे विद्यापीठ का समाचारपत्रो मे विज्ञापन किया गया जिसका अस्तित्व तक अब सदिग्ध हो चला है ! यह सब सोचते ही उनके चेहरे पर उदासी की रेखाएँ घनी हो उठी, जिन्हे देख शायद शास्त्री जी के हृदय मे सचमुच सहानुभूति उमड आई !

"आप चिता न करे लाला जी !"—शास्त्री जी उन्हे आश्वासित करते बोले—"स्वामी जी की माया से मुक्त हमे हो ही जाना चाहिये। तभी हमे मोक्ष मिल सकेगा। मगर विद्यापीठ को भी चलाकर हमे दिखा ही

देना चाहिये, केवल कुल्लू के बल पर, बगैर किसी बाहर की मदद की उमीद के। तभी शाबाशी है लाला जी ! तभी बाहर के लोग भी समझेंगे कि कुल्लू मे भी कुछ बल है, कुछ जीवन है। और तभी हम-आप सिर ऊँचा कर सकेंगे दूसरो के सामने !"

"मगर यह होगा कैसे ?" लाला जी फिर भी निरुत्साह स्वर मे ही बोले—"कहना आसान होता है, करना मुश्किल ! सब कुछ होता है पैसे से, और इस पैसे की ही कमी है कुल्लू मे।"

"कमी कोई नही लाला जी ! हम-आप भी गुजारा कर ही लेते है यहाँ से। और बहुत-से दूसरे लोग, जो पजाब जैसे भरे-पूरे प्रदेश से खाली हाथ यहाँ आये, और देखते-ही-देखते लाखो के मालिक बन गये, सो कहाँ से ? कुल्लू से ही तो ? तो इस विद्यापीठ को चलाने का पैसा भी कुल्लू से ही आ जायेगा। दिल चाहिये, उत्साह चाहिये। फिर चिन्ता किस बात की ?"

शास्त्री जी की इन बातो से लाला जी कुछ झेप गये। शास्त्री जी भी आज तरग मे आकर बहुत कुछ कह गये, बहुत दूर तक बह गये जिसकी आशा उन जैसे व्यक्ति से न थी।

"तो भाई"—लाला जी ने सकुचित स्वर मे ही जवाब दिया—"मुझे तो जैसा कहोगे कर दूँगा। जो सेवा मुझसे हो सकेगी पीछे नही रहूँगा। मगर यह उत्साह तुम्हारा कायम रह भी सके तो ? अगर यह महज गुब्बारे की हवा ही हो,तब तो वही होगा जो सालो से होते यहाँ देखता आ रहा हूँ। तुम्हे क्या याद नही कि कई बार उत्साह मे आकर जाने कितनी सस्थाएँ तुम लोगो ने खोली और कुछ दिन बाद ही दफना भी डाली ? और जैसा कि अभी तुमने बताया है, और तुम्हारा अदाजा अगर सही है, तो समझो कि इस विद्यापीठ का भी वही हाल हो चुका जो इससे पहले की सस्थाओ का यहाँ हो चुका है।"—कहते-कहते लाला जी के स्वर मे एक वेदना उभर आई जिसे शास्त्री जी ने शायद लक्ष्य नही किया।

लाला जी की बात से मानो शास्त्री जी को अपनी व अपने कुल्लू की आत्मशक्ति का भान जल्द हो चला। उत्साह का गुब्बारा मानो जल्द पक्चर हो चला। वे कुछ सोचने की दशा मे आ गये।

"देखो शास्त्री!"—उन्हे चुप देख लाला जी फिर बोले—"अभी नाहक स्वामी सत्तकेतू पर शक-शुबा जाहिर कर बेचैन होने से सिवा नुकसान के फायदा कोई नही। इन्सान सच्चे दिल से बहुत-सी बाते बोलकर भी अक्सर पूरा नही कर पाता। इसलिये हम उसे झूठा करार दे इसमे अक्लमन्दी मुझे नही दीखती। सबर का फल मीठा होता है। हमे कुछ दिन और सबर कर स्वामी जी को मौका देना चाहिये कि वे अपने वायदे पूरे करते है, या यो ही सब ढकोसला है उनका। क्यो, क्या ख्याल है तुम्हारा?"

"मेरा भी वही ख्याल है, जो आपका।"—इस बार मानो शास्त्री जी पराजित होकर बोले—"कहावत है, पुराना चावल पथ्य होता है। सो बुजुर्ग ठहरे आप। बुजुर्गो की बाते अक्सर अक्ल से खाली नही होती।"

लाला जी खुश हो गये। यदि कोई बुजुर्गो का लोहा स्वीकार कर ले तो बुजुर्गो को प्रसन्न होते देर नही लगती।

लाला जी को प्रसन्न देख शास्त्री जी ने अब एक और तीर छोडा—'पर लाला जी, एक बहुत जरूरी बात कहना आपसे भूल गया हूँ। पहले आप अपने मुवक्किल के मुकदमे की पेशी को मुल्तबी करा आवे। फिर बताऊंगा आपसे। बडी मजेदार व जरूरी बात है वह। मै यही रहूँगा तब तक। बडी खतरे की बात है लाला जी।"

और लाला जी मान गये। चले गये अदालत मे हाकिम को कहकर पेशी मुल्तवी कराने। और शास्त्री जी तब तक ढालपुर के उस प्रशस्त चौरस मैदान मे, देवदारु के विरल-विरल तरुओ की छाया मे एक चक्कर लगा आये। वे यह सोचते रहे "यदि स्वामी सत्यकेतु का आसन अभी गोल नही हो सका, तो बेहतर है कि वर्मा का ही आसन गोल करा देने का

प्रयत्न किया जाय। और यदि स्वामी सत्यकेतु अपने वचन के सच्चे साबित हो जायँ तो व्यर्थ की शत्रुता मोल लेने मे कोई लाभ नही। बल्कि 'सेवा मे मेवा' इस नीति का अनुसरण करना ही श्रेयस्कर। और यदि वर्मा को भगा सकने मे मै सफल हो गया, तो आचार्यपद को ब्रह्मचारी के ही हवाले कर स्वय कार्यवाहक मत्री के पदमात्र से सतुष्ट हो जाना भी नासमझी न होगी। और यदि ब्रह्मचारी 'आनरेरी' रहे तो मुझे भी 'आनरेरी' हो जाने मे हरज महसूस नही होना चाहिये। आखिर खर्चे-वर्चे का सारा सिलसिला तो कार्यवाहक मत्री के ही हाथ मे रहेगा।"

लाला जी वापस अदालत से आ गये। अपनी प्रतीक्षा मे खडे शास्त्री जी से बोले—"तो बताओ, कौन-सी जरूरी बात है वह ?"

और शास्त्री जी जरा और निकट जाकर फुसफुसाकर बोले—"लाला जी, यह बात तो बहुत दिनो से मालूम थी मुझे, पर कही खुल जाने के भय से मै आपको भी न बता सका। क्योकि बाल-बच्चेदार हूँ। जान का डर होना ही चाहिये। सबसे पहले आप ही से बता रहा हूँ।' और उम्मीद भी कर रहा हूँ कि यह बात कही खुलेगी नही!" फिर जरा गला खखासकर—"अपने कार्यवाहक मन्त्री श्री वर्मा जी कोई कच्ची गोटी खेले आदमी नहीं है! जाने कितने चोले इन्होने बदल डाले; कितनी अबलाओ के जीवन बरबाद कर डाले; और सबसे बडी बात यह है कि जाने कितने कत्ल भी कर और करा डाले, पर अचम्भा तो यह कि पुलिस की पकड मे कभी न आ सके! और वह जो खूबसूरत और कमसिन बीवी है न इनके साथ अभी, वह ब्याही नही उडाई और बहकाई हुई है लाला जी! और अब तक जाने कितनी ऐसी औरतो को बहका और उडाकर हजरत बीवी भी बना चुके है, और बाद मे पजाब, सिन्ध और बम्बई के नगरो मे एक-एककर उन्हे बेचकर पैसे भी बनाते रहे है। अगर आप चाहे तो सबूत भी मिल सकता है, लेकिन इसके गाँव के जिस आदमी ने यह सब मुझे बताया, हो सकता है कि जान के डर से किसी और के आगे सब कुछ न बता सके! क्योकि इनका एक खुफिया दल

भी है जो पता लगाने और बदला लेने मे बडा ही होशियार रहता है। लेकिन उसकी बात यह सच्ची है, बिल्कुल सच्ची है लाला जी ! अब आप खुद सोच ले कि विद्यापीठ-कमेटी की बात तो अलग, इन्हे कुल्लू और कुल्लू के समाज मे रहने देना ही कहाँ का मुनासिब ? और कहाँ का मुनासिब होगा कि…"

शास्त्री जी आगे न बोल सके। क्योकि उनकी दृष्टि अकस्मात् उस ओर जा पडी जिधर से स्वामी सत्यकेतु और वीरेन्द्र वर्मा उन्ही दोनो की ओर बढे आ रहे थे। वे दोनो ही झट गुफ्तगू समाप्त कर उन दोनो का स्वागत करने आगे बढ चले।

◇ ◇ ◇

वर्मा जी, हिमालय के उस प्रदेश के निवासी थे जहाँ वर्षो पहले ईसाई मिशनरियो का कार्य आरम्भ हो चुका था। शिक्षा और सस्कृति मे पिछडे उस प्रदेश मे मिशनरियो ने शिक्षा और सस्कृति का वह आलोक फैलाना आरम्भ कर दिया था जिसे प्राप्त करने वालो मे एक वीरेन्द्र वर्मा जी भी थे। वर्मा जी शायद उस 'खस' जाति मे से थे जिसका उल्लेख मनु ने यो किया है—शनकैस्तु क्रिया लोपादिमा क्षत्रिय जातय, वृषलत्व गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च। ·· किराता दरद खसा:। अर्थात् धीरे-धीरे आचारभ्रष्ट होकर तथा ब्राह्मणो का सम्पर्क न रहने के कारण किरात, दरद और खस आदि क्षत्रिय जातियाँ अन्त मे शूद्र बन गई। पर वर्मा जी अब शूद्र न थे। जैसा कि 'वर्मा' इस उपाधि से ही प्रकट है, क्षत्रियत्व को पुन: प्राप्त कर चुके थे। बरन अब वे 'स्वामी दयानन्द' और उनके 'सत्यार्थ प्रकाश' का सहारा लेकर 'ब्राह्मणत्व' को भी प्राप्त कर चुके थे। यद्यपि 'वर्मा' इस उपाधि से अभी मुक्त न हो सके थे। इसी कारण तो वे लाला शकरलाल जी के घर मे रोज 'यज्ञ' कराने जाते, और उस सारे परिवार को शिष्य बनाकर अपना पैर भी पुजवाते। शायद इस तरक्की के कारण भी जन्मजात ब्राह्मण श्री हीराचन्द्र शास्त्री उनसे ईर्ष्या करते; जला करते।

जो भी हो, जब वर्मा जी को इस काना-फूसी का पता चल गया कि उनके पिछले जीवन का बहुत-कुछ रहस्य कुल्लू के लोगो पर प्रकट हो चला है तो बेचारे का दिल बेचैन रहने लगा। लेकिन फिर भी वे बेचैनी को दबाये रखते। इस सम्बन्ध मे सयम का अभ्यास वर्षो मे होने के कारण अपनी मनोदशा को चेहरे पर उभरने से दबा देने मे वे सफल हो जाते। लेकिन फिर भी उन्हे स्पष्ट दिखाई देने लगा था कि कुल्लू मे उन की दाल गलने से पहले ही आग बुझ चुकी। उसे पुन पजालकर प्रज्वलित करने का ईंधन उनके पास अब नही रहा। यहा तक कि उनके सम्बन्ध मे स्वामी सत्यकेतु भी सदिग्ध हो चले। वर्मा जी की अब उस विशाल योजना का क्या होगा जिसको सफल बनाने मे स्वामी जी ने उन्हे नकद एक लाख रुपये की सहायता का आश्वासन दिया था ? उन की योजना थी उस नकद एक लाख रुपये को कम्पनी मे लगाकर उसकी आय से वे अपने घर के पास एक विशाल 'गुरुकुल' का निर्माण करेंगे जिसमे पूर्ण वैदिक पद्धति से शिक्षा का सचालन किया जायगा। ऋषियो की भूमि वह हिमालय पुन वेदो की ध्वनि से गूँज उठेगा, और हिमवान के उत्तुग शिखरो से पुन एक बार ज्ञान की गगा निकलकर सारे भारत को आप्लावित करेगी—उत्तर को भी दक्षिण को भी। और तब भारत पुनः एक बार मनु के शब्दो मे हिमालय की चोटी से ससार को चुनौती देगा—

'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादाग्र जन्मन
स्व-स्व चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्या सर्वमानवा ।'

अर्थात् 'ससार के सभी मानव इस भारत-वसुधरा पर उत्पन्न हुए अग्रजन्माओ—ब्राह्मणो से अपने-अपने चरित्र की शिक्षा ग्रहण करेगे।' और वर्मा जी जाति को जन्म से नही वरन् आर्यसमाजी सिद्धान्तो के अनुसार गुण और कर्म से मानते थे। अत. वैदिक शिक्षा और सस्कृति के प्रचार के आधार पर वे सारे हिमालय व समस्त भारत को ब्राह्मणमय

बना देना चाह रहे थे। पर कितने दुःख की बात कि उनका यह स्वप्न अब स्वप्न ही रह जायगा!

अब वर्मा जी की मनोदशा पर भी तनिक सोचा जाय। निराशा मे मनुष्य की मनोदशा अक्सर हो जाती है कि वह बीते जीवन के पन्ने खोल-खोलकर देखना शुरू कर दे। वर्मा जी भी जब-तब निराश होकर अक्सर अपने जीवन के पन्ने खोला करते। एक गरीब 'खसिये' परिवार मे पैदा हुए। मिशन स्कूल मे पढे, और पढने वालो मे यद्यपि काफी तेज गिने जाते, पर खेद कि बार-बार के प्रयत्न के बावजूद वे मैट्रिक न पास कर सके। यद्यपि इस बार-बार की असफलता से 'अग्रेजी' उनकी काफी मँज गई, पर गणित म अपनी कमजोरी को वे दूर न कर सके, न कर सके!

लेकिन कहते है कि जिसकी प्रतिभा और महत्वाकाक्षा बचपन मे ही पक जाय वह आगे चलकर जीवन के सघर्ष मे सफल नहीं हो पाता। क्योकि बचपन से ही ख्याली पुलावो के पकाने मे ही दिमाग का अधिकाश खर्च कर चुकने के कारण उसके पास ठोस कार्य के लिये कुछ बच नही पाता। वर्मा जी मे प्रतिभा की कमी न थी, पर महत्वाकाक्षा भी बहुत बडी थी। बचपन मे ही वे हवाई किलो के निर्माण के इस प्रकार आदी बन चले थे कि कुछ बनकर जीवन को कुछ ठोस वे न दे सके। यद्यपि अग्रेजी वे गजब की बोला करते, सत्यार्थ प्रकाश के द्वारा यत्किंचित् वेद-मत्रो का अध्ययन भी कर ही चुके थे, व्यवस्था और व्यवहार की क्षमता भी कमाल की थी, पर कोई जरिया न होने के कारण वे ऊँचे न उठ सके। राजनीति मे सफलता खूब मिल सकने की सभावना यद्यपि थी, पर वहाँ भी कोई जरिया न था, धन-दौलत का आधार भी न था। परन्तु कमाकर दाल-रोटी मात्र से सतुष्ट हो जाना उनके लिये आसान न था।

न तो ठोस साधना म वे सफल हो सके, न महत्वाकाक्षा को दबा सकने मे। फिर वह अतृप्त आकाक्षा ही तृप्ति को न पा, अनेक अनीतियो

से, अनाचारो की अनेक पगडडियो और पथो से गुजरने जो लगी, सो लग ही पडी। शुरू-शुरू मे पश्चात्ताप भी शायद खूब हुआ होगा, ग्लानि भी खूब हुई होगी, और सकोच भी खूब, पर अब वे निराशा की आग मे झुलसते रहकर भी अनाचारो की याद मे पश्चात्ताप नही करते, अनीतियो के उच्छ्वास मे शोकाकुल नही होते। बल्कि अब तो यदि शोक भी होता, बेचैनी भी होती तो महज इसलिये कि अपनी चालो मे, इरादो मे, सफलता उन्हे मिलती क्यो नही? मिला करती क्यो नही?

और ऊपर से, व्याख्यान-मचो से समितियो और सत्कार्यों के सुपरिणामो के बारे मे बडे-बडे व्याख्यान वे देते, पर भीतर से महज इसे मूर्खो या धूर्तो के चोचले के सिवा और कुछ न मानते। क्योकि उनका मन यह मान चुका था कि ऊपर उठने के लिये, समाज के सिर पर उटकर बैठने के लिये समीतियो या सत्कार्यों की नही, अपितु ठीक इनके विपरीत दुर्नीतियो और दुष्कार्यो की जरूरत होती है, होती रहेगी भी। मौजूदा दुनिया के, अथवा इतिहास के, अनेक महापुरुषो मे उन्हे इन्ही चीजो की झलक दिखाई देती। उनके साफल्य का आधार वे इन्ही चीजो मे ढूढा करते। महापुरुष समाज को अपने पीछे चलाता है, स्वय उसके पीछे नही चलता। समाज की मान्य रूढियो व सस्कारो को मानकर कोई महापुरुष नही बनता, बल्कि उन रूढियो को उखाडकर, उनका तिरस्कार कर के ही। अत वे उन्नत जीवन के पथपर अग्रसर होने के लिये जो भी तरीके अपनाते, उन्हे जायज मानकर ही।

वे सोचा करते—"जीवन आखिर है क्या चीज? सस्कारो का एक पुलिदा ही तो? जिसे सारा समाज बुरा कहे, बुरा माने, उसे यदि मै भला ही मानूँ, तो क्या बुरा?" आकाक्षाओ व महत्त्वाकाक्षाओ की चाबुक उन्हे सारे भारत का भ्रमण करा चुकी थी। वे भारत के विभिन्न समाजो व सस्कृतियो को परख चुके थे। वे अपने-आप से पूछा करते—"यदि भले और बुरे का मापदड एक ही है, तो क्यो दक्षिण के तमिल नाड और केरल के ब्राह्मणो मे अपनी सगी बहन की कन्या से विवाह

कर लेने की प्रथा सर्वमान्य और सम्मान्य है, जब कि यही बात उत्तर भारत मे अत्यन्त जघन्य और पातित्यकारक है ? और फिर—हिमालय मे यमुना और टौन्स नदियो के बीच के प्रदेश 'जौनसार बाबर' के हिन्दुओ मे एक परिवार की पत्नियो पर सभी सगे भाइयो का सामूहिक अधिकार और उपभोग, बिल्कुल आज भी जायज है, तो फिर भारत के अन्य प्रदेशो मे यही बात नाजायज क्यो है ? और फिर—पठानो मे डाका डालना अथवा चलते राहियो को लूट लेना सामाजिक तौर पर बिल्कुल बुरा नही माना जाता, किन्तु अपने घर मे ठहरे अतिथियो की जान-माल की सुरक्षा मे अपनी जान गॅवा देने तक की बात उनमे मान्य क्यो है ? सम्मान्य क्यो है ? तो, यह सब सदियो व पीढियो से चले आते महज सस्कारो के सिवा और कुछ नही है। भले-बुरे की मान्यता का आधार सस्कार के सिवा और कुछ नही है ।

वे फिर सोचा करते—"महापुरुषो का कर्त्तव्य होता है समाज के पुराने सस्कारो को उखाडकर, मिटाकर, उनकी जगह नये सस्कारो, व नई मान्यताओ को जन्म देना और जमाना । किन्तु यह सब होता है औरो के लिये अपने लिये नही । अपने लिये उनके निजी सस्कार, निजी विचार और निजी आचार होते है !" देश के अनेक महापुरुषो के सपर्क मे रहकर वे इस निर्णय पर पहुंच चुके थे । पर खेद कि दिन-रात उन महापुरुषो के पथ पर विचरते रहकर भी वे महापुरुष पद को अभी प्राप्त न कर सके थे ! अथवा समाज ही उन्हे महापुरुष के रूप मे स्वीकार करने को अभी कतई तैयार न था !

पर वर्मा जी भी हार मानने वालो मे से न थे । यद्यपि मैट्रिक परीक्षा से वे हार चुके थे, पर जीवन की महत्त्वाकाक्षाओ के समक्ष हार स्वीकार कर लेना वे जीवन का अवसान समझते थे, मृत्यु मानते। वे सोचा करते—"साफल्य और असाफल्य के बीच अतर तो बाल बराबर भी नही होता । अक्सर उस सूक्ष्मतम अतर को लाँघ न सकने के कारण ही इन्सान पीछे रह जाता है । अक्सर वह बाल बराबर अतर हिमालय के सर्वोच्च शिखर

से भी ऊँचा बन जाता है।") तो इस प्रकार वे अपने को अवसर साफल्य और असाफल्य के उस न्यूनतम अन्तर के निकट अवश्य पाते, पर खेद कि अब तक उस निकटता व न्यूनतमता को पारकर जीवन के सर्वोच्च साफल्य के साथ तादात्म्य प्राप्त न कर सके थे। किन्तु साथ ही इस नैकट्य का बोध उन्हे यह धैर्य भी देता ही कि यदि कभी वे उसे पार कर सके तो फिर पौबारह क्योकि उनका विश्वास दृढ हो चला था कि यदि साफल्य के निमित्त अनुकूल प्रयत्न आवश्यक है, तो अनुकूल परिस्थिति भी। क्योकि (वर्षो तक प्रयत्न करते रहकर भी मनुष्य अपने लक्ष्य को अधिगत इसलिये नही कर पाता कि अनुकूल परिस्थिति उसके पास नही आ पाती। और इस अनुकूल परिस्थिति का अभाव ही वह न्यूनतम अन्तर है जिसे लाँघ सकने मे प्रबल-सकल्पशाली व्यक्ति भी परास्त हो जाता है) महत्वाकाक्षा की पूर्ति मे सफल नही हो पाता है। फिर यदि प्रयत्न करते-करते वह अनुकूल परिस्थिति भी कभी आ गई तो ? फिर पौबारह। वे फिर सोचते— किन्तु, अनुकूल परिस्थितियो का निर्माण भी मनुष्य ही करता है। यह एक भिन्न विषय है कि दूसरे के द्वारा निर्माण की हुई परिस्थिति का लाभ कोई दूसरा ही उठा लेता है—ठीक उसी प्रकार जैसे किसी दूसरे के श्रम के फल को कोई दूसरा ही हथिया लेता है।" यह सोचते ही उनके विचार का प्रवाह किसी अन्य दिशा मे मुड जाता। वे सोचने लगते—"दूसरे के श्रम का फल कोई दूसरा हथिया लेता है यह कैसा शाश्वत् सत्य है! यह सत्य कितना नग्न और कितना कठोर है! अपने आप मे कितना सत्य है!"

किन्तु मन मे इस सत्य के उदित होने पर भी वर्मा जी की सहानुभूति उन मूर्खो और अभागो के पक्ष मे नही हो जाती जिनके श्रम के फल को दूसरे चालाक हथिया लेते है। बल्कि हथियाने वालो को ही शत-शत शाबाशी देते-देते उनका हृदय भर जाता! अथवा, यदि हृदय उनके न भी था, तो दिमाग तो था ही? वही सतोष से भर जाता!

फिर कभी समाज का राजनीतिक इतिहास, अपने पन्ने खोल-खोलकर

उन्हे पढाने लग जाता—"देख वर्मा, भगवान् श्रीकृष्ण से लेकर अब तक के राजनीतिक महापुरुषो की जीवनियो को गहराई से, अपने निजी दृष्टि-कोण से देखकर सोच तो कि 'जिसकी लाठी उसकी भैस' की नीति के सिवा इनके जीवन के साफल्य और महत्व का आधार और रहा ही क्या है ? यदि तेरे पास लोहे की या जनबल की लाठी नही, तो बुद्धि की लाठी तो है ही ? तू इस नीति-वाक्य को याद रख कि—"बुद्धिमान् ही बलवान होता है।" 'बुद्धिर्यस्य बलतस्य'। राजनीतिक, इतिहास के इन सभी महापुरुषो के पास सबसे बडा बल बुद्धि का बल था। यह बल ही उन्हे अन्य बलो के सग्रह मे सहायता देता। सो, बुद्धि के सहारे बुद्धि की लाठी लेकर निर्भीक आगे बढता जा ! व्यर्थ मे भले-बुरे के विचार के फेर मे पडकर अपने जीवन की गति को अवरुद्ध न होने दे ! हमेशा इस वाक्य को याद रख कि—मृदु या निष्ठुर किसी भी तरीके से अपने को बढाना चाहिये ही। 'कर्मणा येन केनापि मृदुना दारुणेन वा। उद्धरेत् दीन-मात्मानम् ....।'

इस प्रकार वर्मा जी को नया आलोक, नई दृष्टि और नया उत्साह प्राप्त होता। इस प्रकार के सैकडो नीति-वाक्य वर्मा जी को जबानी याद थे जिन्हे वे व्याख्यान के समय भी काम मे लाते। वे कुल्लू मे रहते हुए व्याख्यान-मचो से कुल्लू के उन अभागे किसानो के लिये आँसू भी बहाते, पर वे आँसू शायद हृदय के नही, बुद्धि के होते। अपनी बुद्धि के कौशल पर उन्हे पूरा विश्वास था। ऐसे अवसरो पर अनेक नेताओ को स्वय रोते वे देख चुके थे। और उनके निजी जीवन पर विचार करते उन्हे पक्का विश्वास हो चुका था कि यह सब बुद्धि के कौशल का ही परिणाम है, हृदय के कौशल का नही। और जब धीरे-धीरे अभ्यास करते उन्हे इस कला मे कुशलता प्राप्त हो चुकी तो वे स्वय भी व्याख्यान-मचो से निर्धोक इसका प्रयोग करने लग पडे।

लेकिन इस समय, उनके सामने जो समस्या थी वह कुल्लू से सलामत और ससम्मान निकल देने की। क्योकि इतना तो विश्वास उन्हे हो ही

चला था कि वहाँ अब पैर जमा लेना आसान नही रह गया। महिला-विद्यापीठ के द्वारा अर्थ-लाभ एव उस पिछडे प्रदेश के नेतृत्व की आशाओ पर पानी फिरते वे स्पष्ट देख रहे थे। निराशा के आवेश मे, जब-तब गुस्से मे आकर वे उन लोगो को गोली का निशाना बना देने की भी सोचा करते जिन पर उन्हे सदेह हो चला था कि उनके कारण ही उनके पिछले जीवन का भेद यहाँ खुलने लगा है, खुल चला है। लेकिन वे आवेश पर काबू पा जाते, क्योकि हर प्रतिकूल परिस्थिति मे पिस्तौल का सहारा अब वे ठीक नही समझते। और इससे किसी लाभ की उमीद भी न थी। पर इस बात को सोचकर उन्हे कम ग्लानि नही होती कि कुल्लू से खाली हाथ वे लौट जाय, केवल कुछ मूर्खो की बन्दर-घुडकी पर ही।

एक दिन वे एकाएक अपने आपको चुनौती देते बोले—"धिक्कार है वर्मा, तेरी अब तक की उस साधना को, अगर तू यहाँ से खाली ही हाथ लौट जाय। अगर जाना ही है तो कुछ करके जा जिससे पीठ पीछे कुछ दिन तक तेरी चर्चा तो चला करे। और निराशा की बात ही क्या, जब कि अब भी ऐसे अनेक प्रदेश इस देश मे भरे पडे है जहाँ तेरी अक्ल के प्रयोग के लिये काफी खुला मैदान है, काफी गुजायश है कि निराशा कभी-कभी वीरता की भी माँ बन जाती है, पर वह निश्चित रूप से भीरुता की ही माँ है और भीरुता निराशा की। चल निर्धोक होकर योजना बना। और उसे कार्यान्वित करके यहाँ के लोगो को एक पाठ पढाता चल। चल प्यारे!"—कहते हुए वे अकेले मे ही ठहाका मारकर हँस पडे और इस हँसी के बवडर मे निराशा का कण-कण उडकर विलीन हो गया।

◇ ◇ ◇

वर्मा जी संकल्प के सच्चे निकले। उनके सकल्प मे शायद शैथिल्य भी आ जाता यदि उस दिन लाला शकरलाल जी ने उन्हे निराश न किया होता। उस दिन लाला जी के घर मे महीनो से हो रहे वैदिक यज्ञ की परिसमाप्ति की पूर्णाहुति थी। पर अग्निदेव को पूर्णाहुति देकर भी जब यजमान ने यज्ञ के आचार्य श्री वीरेन्द्र की पूर्णाहुति देने मे रचमात्र भी

उदारता की आवश्यकता न समझी, तो आचार्य ने भी जैसे-को-तैसा दिखाने का सकल्प कर लिया ! वर्मा जी किसी सनातनी लाला जी के घर यज्ञ की पूर्णाहुति देख चुके थे। वे यह भी देख चुके थे कि किस प्रकार उस श्रद्धालु लाला ने अपने आचार्य को रुपये-पैसे व कपडे-लत्ते से खूब सतुष्ट कर दिया था ! सैकडो ब्राह्मणो व कगालो को जिमाया भी था ! सो वे सोच रहे थे कि उस दिन यज्ञ की परिसमाप्ति पर उनके यजमान लाला शकरलाल भी उन्हे दान-दक्षिणा व वस्त्राभूषण से सतुष्ट अवश्य करेगे ! भले ही वे ब्राह्मणो को न जिमाये, कगालो को कुछ न खिलाये; किन्तु ऐसा कैसे सम्भव है कि वे आचार्य को दान-दक्षिणा से सतुष्ट किये बिना रह जाय ?

लेकिन लाला जी ने सोचा शायद—"आर्यसमाजी बन जाने पर भी यदि दान-दक्षिणा व ब्रह्मभोज आदि के झमेले से पिड न छूट सका, तो आर्यसमाजी बनने से लाभ क्या ?" और वर्मा जी ने भी सोचा शायद—"आर्यसमाज का सहारा पकडकर शूद्रत्व से क्षत्रियत्व, और क्षत्रियत्व से ब्राह्मणत्व को जीतकर भी यदि दान-दक्षिणा के हक से वचित ही रहना पडा तो इस विजय से लाभ क्या ?"

उस दिन पूर्णाहुति के अवसर पर स्वामी सत्यकेतु, ब्रह्मचारी आदित्यनाथ और प० हीराचन्द्र शास्त्री आदि एक-दो सज्जन और भी भोजन पर आमत्रित थे। फिजूल-खर्ची मे बचने की लाला जी की इस बुद्धिमानी से वर्मा जी काफी सतुष्ट थे, पर जब यजमान ने आचार्य की दान-दक्षिणा के अवसर पर भी उसी बुद्धिमत्ता का परिचय दे दिया तो वर्मा जी भीतर से अत्यन्त असतुष्ट हुए बिना न रह सके। किन्तु फिर भी उनके मन मे आशा की एक क्षीण रेखा चकरा रही थी कि दो-चार दिन बाद ही सही, लाला जी उन्हे शायद सतुष्ट कर ही देगे। लेकिन लाला जी का दिल उसके बाद भी न पिघल सका। न पिघल सका।

लाला जी तो उस दिन आचार्य के चरणो को शायद छूने भी नही यदि स्वामी सत्यकेतु की कुशलता उन्हे ऐन मौके पर झुकने को बाध्य

न कर देती। क्योंकि स्वामी जी का दबदबा सब पर कायम था। उनकी वाणी का आदर और सम्मान करना परिवार का हर व्यक्ति अपना फर्ज मानता। क्योंकि सुना ऐसा गया था कि स्वामी जी पर लाला जी की यह श्रद्धा अकारण न थी। क्योंकि स्वामी जी ने उन्हे वचन दे दिया था कि उनके एक सगे चचेरे भाई श्री अमुक जी पजाब के 'चीफ फॉरेस्ट काजर्वेटर'[1] के पद पर मौजूद हैं, अत. लाला शकरलाल जी की अचिर भविष्य मे ही 'फॉरेस्ट रेजर' के पद से 'डी एफ ओ' पद पर तरक्की वे करा ही देंगे।

सो, उस दिन जब यज्ञ की परिसमाप्ति पर अपने सुन्दर-सुकोमल शब्दो द्वारा यज्ञ के विभिन्न अगो का वर्णन और विश्लेषण करके अन्त मे यज्ञ से सम्बन्धित एक प्रश्न का उत्तर उन्होंने उस सारे परिवार से पूछ दिया, तो उसका उत्तर दे सकना उस परिवार के किसी भी व्यक्ति के लिये सम्भव न रहा।

"अच्छा!"—तब अपनी घनी दाढी-मूँछो मे मुस्कराते हुए स्वामी सत्यकेतु ने उन सबो से कहा—"तो, जो-जो इस प्रश्न का उत्तर न दे सके वह एक-एक कर आचार्य जी के चरणो पर माथा रखकर प्रणाम करे! बडी आसानी से छुटकारा मिल जायगा। माफी मिल जायगी!"

फिर क्या था? परिवार का हर व्यक्ति मुस्कराता हुआ एक-एक कर आचार्य के चरणो पर गिर गया। आचार्य जी के चेहरे पर स्वाभिमान की आभा उभरती दीखी, और ब्रह्मचारी व हीराचन्द्र जी के चेहरे पर मनोरजन की मीठी मुस्कान। लेकिन ब्रह्मचारी अवाक् रह गया था स्वामी जी की सधी हुई वाणी की कला पर! कुशलता पर!

पर, वर्मा जी का धैर्य और सतोष अधिक दिनो तक कायम न रह सका। जब उन्हे पूरा निश्चय हो चुका कि लाला जी से कुछ झडने की उम्मीद अब न रही और कुल्लू मे ठहरने की गुजायश भी, तो एक दिन

1 वन-विभाग का सबसे बड़ा सरकारी अफसर

वे उनके युवा पुत्र श्री रामचन्द्र को बिल्कुल अकेले मे ले जाकर चुपके से बोले—

'मुझ पर विश्वास है तुम्हारा रामचन्द्र ?"

इस प्रश्न पर रामचन्द्र जरा अकचकाया। सहसा इसका मतलब वह न समझ सका। और चूंकि प० हीराचन्द्र जी ने बडी सावधानी और चतुराई से ही वर्मा जी के बारे मे प्रचार किया था, अत वर्मा जी के जीवन का रहस्य लाला शकरलाल जी के घर तक अभी नही पहुँच सका था। फिर अभी रामचन्द्र का वर्मा जी के व्यक्तित्व पर अविश्वास का प्रश्न उठ ही कैसे सकता था ?

सो, क्षण भर भौचक्का रहकर उसने निर्धोक दृढता भरे स्वर मे विश्वास व्यक्त किया—"जरूर ! जरूर, वर्मा जी ! क्यो नही ?"

वर्मा जी आश्वस्त हुए। प्रसन्न हुए।

"अच्छा !" अब वर्मा जी स्वर मे बुजुर्गी और हितचिता के भाव भर कर बोले—"तो जीवन मे कुछ करना चाहते हो, या इस अखाडा बाजार[1] की इस सडी-गली दुकान मे ही पडे रहना चाहते हो ?"

रामचन्द्र नौजवान था। और किसी भी नौजवान के लिये इस प्रकार का प्रश्न एक चुनौती बनकर ही सामने आता है ! कौन नौजवान जीवन मे कुछ करना नही चाहता ? किस नवयुवक के मन मे भविष्य की रगीनियाँ और उमगे नही खेला करती ? लाला शकरलाल जी के चार पुत्रो मे रामचन्द्र सबसे बडा था। वह भी मैट्रिक फेल था। अत किसी ओहदे की सरकारी नौकरी पाने की उमीद न होने से पिता ने मामूली पूंजी देकर व्यापार की ओर उसे लगा दिया था। पर इस बडे घर के लडके को उस छोटी-सी जगह मे, उस छोटी-सी दुकान मे बैठना कतई भाता न था। और वर्मा जी ठहरे व्यावहारिक मनोविज्ञान के मँजे हुए विद्वान्।

---

१. कुल्लू शहर का मुख्य बाजार

सो, वर्मा जी, लक्ष्य पर निशाना साधते हुए फिर बोले—"जिस जगह पर अभी बैठे हुए हो रामचन्द्र, उसमे दिन भर खटने-मरने के बाद कही रोटी-दाल भर का जोगाड कर पाओगे तुम। लेकिन ज़िंदगी सिर्फ रोटी-दाल तक ही तो महदूद नही ? अभी तुम छडे (क्वाँरे) हो। लेकिन शादी-ब्याह के बाद जब दिन-पर-दिन जिम्मेदारियो का बोझ बढता जायगा, कुछ ख्याल है उन दिनो का तुम्हे ?"

रामचन्द्र कुछ घबडाया ! मानो भावी जिम्मेदारियाँ परेशानियाँ बनकर आज ही उसके चेहरे पर चमक उठी। वास्तव मे इस सम्बन्ध मे अब तक उसने सोचा तक न था। आँखो मे परेशानी व ओठो पर परामर्श की आकाक्षा भरकर वह चुपचाप वर्मा जी को ताकने लगा।

"और एक बात !" वर्मा जी ने पुन निशाना साधा—"तुम्हारा छोटा भाई लछमन बी ए मे पढ रहा है। एम ए. करेगा। फिर आसानी से किसी ओहदे की सरकारी नौकरी वह पा जायेगा। फिर अपनी बात सोचो, कि तुम अपने आफीसर भाई के सामने क्या इसी सडी-गली हालत मे पडे रहना पसद करोगे ? उस वक्त कैसा तुम्हारा दिल करेगा कि एक ही माँ के पेट से पैदा हुआ एक भाई आराम और शान की जिन्दगी बिताये और दूसरा एक गई बीती दुकान मे बैठा रोटी-दाल के जुगाड मे दिन भर मक्खियाँ मारा करे ?"

बात रामचन्द्र को लग गई। यद्यपि पैतृक सम्पत्ति भी उसके पास कम न थी। पर हिस्सेदार भी तो कम न थे ? और यदि बनिया-कुल का बालक निज भुजबल से कुछ उपार्जन न कर सका तो बडी लज्जाजनक बात है उसके लिये ! और दूसरे, वह मैट्रिक मे फेल हो कर यदि व्यापार की दिशा मे भी कुछ उन्नति न कर सका तो यह भी कम शर्म की बात न होगी ! वर्मा जी इससे पहले सफलता की एक योजना उसके सामने रख चुके थे, पर वह सहमत न हो सका था। वह योजना थी उनकी अपनी 'कम्पनी' मे उसका सक्रिय साझेदार बन जाने की। यह योजना वे लाला शकरलाल जी के आगे भी एक बार पेश कर चुके थे, पर लाला

जी इन झंझटो मे पडना नही चाह रहे थे। इस दिशा मे एक-दो बा
का कटु अनुभव उन्हे ऐसे खतरो से आगाह कर चुका था। जगल क
सरकारी नौकरी ही कहाँ की कम लाभजनक थी जो व्यर्थ की एक न
परेशानी वे मोल लेते ?

लेकिन जब इस समय रामचन्द्र के समक्ष वर्मा जी ने उसी योजन
को जरा अधिक आकर्षक बनाकर पेश किया तो रामचन्द्र का मन डो
चला। पर पैसे तो पिताजी के पास थे ? बगैर पैसे के साझीदार त
वर्मा जी भी नही बना सकते ? लेकिन जब उसने, पैसे की ओर से अपन
मजबूरी जाहिर की, तो वर्मा जी ने पूछा—"तुम खुद, ज्यादा-से-ज्यादा
कितना जुटा सकते हो अभी ?"

"पाँच सौ !"—रामचन्द्र ने बेधडक जवाब दिया।

'बस !"—वर्मा जी प्रसन्न होकर बोले—"बहुत है ! अगर साल
के भीतर तुम्हे पाँच हजार का फायदा न करा दूँ तो मेरा नाम बदल
देना रामचन्द्र ! मेरे नाम पर थूकना तुम ! अपनी कम्पनी की एक
ब्राच इस कुल्लू मे भी रहेगी ही जिसके 'सोल डायरेक्टर' तुम रहोगे
रामचन्द्र !"

रामचन्द्र 'डायरेक्टर' बनने की आकाक्षा मे झूम उठा !

वर्मा जी फिर बोले—"रामचन्द्र, अफीम की देश-विदेशो मे खूब
खपत देख रहा हूँ। पहले अफीम से ही अगर यहाँ का कारोबार शुरू
किया जाय तो ठीक। अपने पास एक जीप भी है, सधे हुए चालाक आदमी
भी है, और पुलिस के आदमी भी मिले हुए है। इसलिये यहाँ से दूर-
दूर माल मुहय्या करने मे कोई दिक्कत न होगी। कुल्लू से लद्दाख और
लद्दाख से यारकद को अफीम भेजकर फिर पैसे बटोर लो प्यारे ! यारकद
से सारे चीन को अफीम भेजा जाता है। क्योकि चीन के लोग रोटी के
बगैर भले ही रह जायँ, पर अफीम के बगैर नही रह सकते। शिमले के

उस तरफ के पहाडो मे अफीम इतनी सस्ती है कि क्या बताऊँ प्यारे ! मिट्टी के मोल मिला करती है, बिल्कुल मिट्टी के मोल ! सो, इन पाँच सौ रुपयो की अफीम उन पहाडो से लाकर तुम्हारे हवाले मै किये देता हूँ, महीने के भीतर। फिर देखना कि अपना कारोबार यहाँ किस कदर चमक उठता है। और तब देखना कि तुम्हारे लाला जी तुमसे कितना, कितना खुश हो जाते है !"

रामचन्द्र का दिल-दिमाग स्थिर न रह सका। सयोगवश नये सौदे के लिये दुकान मे पैसे मौजूद थे। उसने उसी क्षरण वर्मा जी की कम्पनी के भरे फार्म पर हस्ताक्षर कर दिया। केवल पाँच सौ रुपये मे दस हजार की पत्तियाँ खरीदकर वह कम्पनी का बाकायदा साझीदार बन गया। कम्पनी के कुल्लू ब्राच के 'डायरेक्टर' का ओहदा क्या कम था उसके लिये ? और वर्मा जी ने यह सोचकर इतने से ही सतोष कर लिया कि भागते भूत की लँगोटी ही सही। और दूसरे दिन ही शायद सदा के लिये वे कुल्लू से भाग निकले। न कुछ के मुकाबले पाँच सौ ही कहाँ का कम था ?

◇ ◇ ◇

स्वामी जी वर्मा जी के चले जाने पर मन-ही-मन नाखुश न हुए। बल्कि उपासको मे जब-तब प्रसन्नता ही प्रकट करते। और जब वर्मा जी के चले जाने पर निर्धोक उनके जीवन की चर्चा शुरू हो चली, तो इस प्रसन्नता को वे और खुले आम प्रकट करने लगे। पर खेद कि रामचन्द्र बेचारे पर शामत आ गई ! कुल्लू ब्राच के 'डायरेक्टर' का ओहदा बडा महँगा साबित हुआ ! दिन-रात बाप की झिडकियाँ खाते-खाते एक दिन तग आ कर दर-दुकान छोड वह घर से चपत हो चला। तो, इस प्रकार श्रीमान वर्मा जी ने तो यजमान से आचार्यत्व की गहरी दक्षिणा वसूल कर ही डाली।

उधर ब्रह्मचारी अब व्यासा के पार उस बडे मकान मे अकेला रह गया। आदर-सत्कार वर्मा जी अपने साथ लेते गये। और उसके पास जो

थोडी जमा-पूँजी थी उसे भी। कितनी श्रद्धा से वे रात को अकेले मे ब्रह्मचारी से पढा करते! बहुत कुछ पूछा करते! उसकी सचित जानकारी मे साझेदार बनते! और उम्र मे बडे होकर भी अकेले मे उसके पैर छू प्रणाम करते। उभय दम्पति ही उसकी सेवा मे सदैव सन्नद्ध रहते। फिर ऐसे अनुगत शिष्य पर विश्वास कर ब्रह्मचारी के लिये गाँठ की पूँजी हवाले कर डालना अस्वाभाविक न था। और वर्मा जी ने स्वय माँगी थी, जल्द लौटा देने के वायदे पर। तो उस जैसे व्यक्ति के लिये इनकार कर देना भी आसान न था।

कथा मे चढावे से आये पैसो को सनातन-धर्म सभा को ही वह भेंट कर चुका था। अब केवल दस रुपये सहारे के रूप मे उसके पास बच रहे थे। स्वामी सत्यकेतु हर दूसरे-तीसरे दिन आकर पूछ जाते। सुख-सुविधा के सम्बन्ध मे हार्दिक व्यग्रता प्रकट कर के वापस अपने उपासक के घर चले जाते। वर्मा जी वायदा कर गये थे घर से जल्द वापस आकर रुपये वापस कर देने का, किन्तु जब उनकी जीवन-गाथा ब्रह्मचारी के कानो मे भी आ पहुँची तो उन पैसो की आशा ही जाती रही। कुछ बेचैनी अवश्य महसूस हुई, क्योकि किसी से मुँह खोलकर माँगने अथवा हाथ पसारने की आदत उसे न थी। यद्यपि वेश उसका साधुओ सा-ही था, पर मुफ्तखोरी मे श्रद्धा उसकी कतई न थी। केवल विद्वत्ता का सहारा था। विभिन्न भाषाओ से अनुवाद वह कर लेता। दस-बारह आने पेज पर, अपने श्रम को प्रकाशक के हाथ बेचकर कुछ कमा लेता। घुमक्कडी मे खरच देता।

पर, स्वामी सत्यकेतु के व्यक्तित्व और उदारता मे विश्वास उसका कायम था। एक वक्त तो खाना हुआ। दस रुपये महीने के काफी थे। पाँच रुपये का चावल, दो रुपये की दाल; तीन रुपये की साग-सब्जी, नोन, तेल, मसाला आदि। स्वामी जी से माँग लेगा। मैदान मे वापस जाकर उनके पैसे लौटा देगा। क्योकि अभी वह पहाड से नीचे इसलिये नही जाना चाह रहा था कि एक गभीर ग्रन्थ के अध्ययन मे सलग्न था। और

अध्ययन के फलस्वरूप एक पुस्तक लिखना चाह रहा था।

स्वामी जी अक्सर आग्रह करते—"आप बडे सकोची हे जी ! कभी कुछ कहते भी तो नही, कभी कुछ बताते भी तो नही ? माना कि तपस्वी जीवन हे आपका। आपकी आवश्यकताएँ नही के बराबर है। किन्तु इसीसे यह तो उचित नही कि मुझे किसी सेवा का मौका ही न दे आप ? अच्छा ब्रह्मचारी जी ! वह जो पुस्तक लिखना चाह रहे है आप, उसके प्रकाशन के लिये पैसे मै दूँगा आपको। आप चिन्ता किसी बात की न करे ! खूब लिखे ! मजे मे लिखे।" और कभी कहते—"वर्मा चला गया। मुझे भी बदनाम करता गया, आपको भी। विद्यापीठ के कार्यक्रम पर वह बडा बुरा असर डाल गया ब्रह्मचारी जी ! कितनी आशा और लालसा से राजी किया था आपको आचार्य-पद के लिये, सो उसने सब नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ! खुद गया, पर सब बिगाडता गया !" फिर एकाएक गुस्से मे आकर उबल भी पडते—"यहाँ के लोग भी हरामजादे, कितने महान मूर्ख है ! ये मूर्ख भला क्या जाने विद्वत्ता का आदर करना ? क्या जाने व्यक्तित्व को पहचानना ? सब पशु है, पशु ! और अपनी ही तरह औरो को भी मानते है। कहा कि "देखो, ब्रह्मचारी जी जैसे विद्वान् का मिल जाना विद्यापीठ के लिये भी, कुल्लू के लिये भी, कम सौभाग्य की बात नही !" मगर मूर्खो मे अक्ल हो तब न ? विवेक हो तब न ? कहने लगे कि ब्रह्मचारी जी जवान है। हमारे अनजान भी है। ऐसे के हाथ हम अपनी बहन-बेटियो को नही सौप सकते।" मगर मूर्खो को समझाया कैसे जाय कि 'यही जवान ब्रह्मचारी जब कथा बाचता, कितनी खुशी से अपनी बहन-बेटियो को तुम भेजा करते उसके पास ?' और इसका जवाब सुनिये जरा—"कि वह तो कथा थी। और यह विद्यापीठ है। दोनो बाते जुदा है।" और जब मैने कहा कि 'नीचे के बडे-बडे शहरो के महिला विद्यालयो और कालेजो मे जवान पुरुष अध्यापक भी है, आचार्य भी है।' तो बोले कि 'वह तो नीचे की बात है। इस पहाड

के पिछड़े प्रदेश की नीचे के समुन्नत शहरो से तुलना नही की जा सकती।"

स्वामी जी अक्सर इन बातो को दुहराते। जिस दिन प्रथम-प्रथम इन बातो को सुनकर ब्रह्मचारी के चेहरे पर बेचैनी की रेखा उभर आई, तो वे बोले—"यह सब महज एक बहाना है, ब्रह्मचारी जी! यह तो दुनिया जानती है कि कुल्लू मे लडकिया बिका करती है। खुद भाई-बाप अपनी बहन-बेटियाँ बेचा करते है। अगर आपकी गाँठ गर्म हो, और इन्हे पता चल जाय कि आप विवाह के इच्छुक है, फिर देखिये कि दलालो का दौर किस प्रकार शुरू हो जाता है। मै पिछले दिनो स्वय देख चुका हूँ कि पिता ने स्वय अपनी पन्द्रह वर्ष की सुन्दरी बालिका को साठ-साला बूढे के हाथ बेच दिया, केवल दो हजार मे। और दलाल थे वे ही लोग जो आज विरोध करते है कि 'चूँकि ब्रह्मचारी जवान है, इसलिये हम उसके हाथ मे अपनी बहन-बेटियो की शिक्षा की बागडोर नही सौप सकते।' कितने दुख की बात है! कितने आश्चर्य की बात है!"

और फिर एकाएक स्वरो मे व्यथा उभारते हुए बोले—"और इसीलिये तो इस 'महिला विद्यापीठ' का आयोजन किया मैने, कि महिलाओ मे आत्मचेतना का भाव जाग्रत किया जा सके, ताकि वे डटकर ऐसे अन्यायो का खुले-आम विरोध कर सके। मगर देख रहा हूँ कि बेईमानो ने इस कार्य मे विघ्न डालने के इरादे पक्के कर लिये है। वे सोचा करते है, यदि विद्यापीठ का कार्य सफलतापूर्वक चल निकला, और हम-आप सरीखे लोग यदि कुछ दिन भी यहाँ जम गये, तो इनकी मन-मानी और चौधरीगीरी को सख्त खतरा पैदा हो जायगा, इसीलिये इनका यह सारा विरोध है, और यह सारी बकवास भी है।"

स्वामी जी के तर्को मे कुछ तथ्य उसे अवश्य मालूम हुआ। वह खडा-खडा चुपचाप सुन रहा था और स्वामी जी उसके इर्द-गिर्द चहल-कदमी करते यह सब कहे जा रहे थे।

"मगर आप, अगर"—स्वामी जी के स्वरो मे इस बार सहसा दृढ

मकल्प की सबलता जाग उठी—"सच्चे दिल मे मेरा माथ दे ब्रह्मचारी जी, तो मै इसी कुल्लू मे एक ऐसी शानदार शिक्षा-सस्था का सचालन कर दिखाऊँ कि ये लोग देखते ही रह जायँ, कटते ही रह जायँ, और किसी भी हरामी को उस मस्था की व्यवस्था मे पैर भी न रखने दूँ। भाड मे जाय यह विद्यापीठ, और जहन्नुम मे जायँ यहाँ के ये लोग!"

क्रोध के आवेश मे उनकी लबी घनी भौहे ऐठकर झबरेदार बन गई। पहाडी तरु-गुल्मो से छन-छनकर आती हुई हवा उनकी दाटी सहलाने लगी। पर फिर भी उनका क्रोध शान्त न हो सका।

"पैसे की चिन्ता मुझे नही हे!"—क्रोध के आवेश मे हाथ की सोटी हवा मे घुमाते, एक बार तिरछी आँखो मे ब्रह्मचारी को देखकर वे फिर बोले—"एक बार यदि लाहौर, दिल्ली, बम्बई और कलकत्ते का चक्कर लगा आऊँ तो हजारो-लाखो बात-की-बात मे ले आऊँ। और जब पैसे आ जायेंगे, तब देखियेगा कि ये ही हरामी दौड-दौडकर हमारे पैरो पडेगे! अपनी बहन-बेटियो की शिक्षा की बागडोर हँसी-खुशी हमारे हाथ सौंपेगे। लेकिन फिर इन्हे व्यवस्था-समिति मे घुसाने की गलती मैं नही करूँगा! अब खूब पहचान गया हूँ इन सबो को! इन धूर्तो को!"

"आप कुछ आरम्भ तो कीजिये!"—ब्रह्मचारी ने उनकी बात पर पुन विश्वास कर जवाब दिया—"सहयोग तो भगवान के घर से ही आ जायगा! सहयोग का अभाव आपको न रहेगा, स्वामी जी!"

स्वामी जी खुश होकर बोल पडे—"बस! इसी की आशा थी आपमे मुझे! आप चिता किसी बात की न करे। सारी सुविधाएँ मै प्रस्तुत करूँगा! खूब आनन्द लीजिये। निश्चिन्त होकर बैठिये! अध्ययन कीजिये। लिखिये। हमारी संस्था के गौरव को बढाइये।" इत्यादि-इत्यादि।

ब्रह्मचारी का चेहरा खिल उठा। उसे और चाहिये क्या! पढने और लिखने की सुविधा के समक्ष अन्य किसी भी सुविधा को वह तुच्छ मानता। सो, जब स्वामी जी ने उस सुविधा का आश्वासन उसे दे ही

डाला, तो उसका खिल उठना अस्वाभाविक न था।

अब स्वामी जी वहाँ स्थित पक्के भवन को एक बार गहरी निगाह से निहार कर व्यग्य भरे स्वर मे बोले—"देखिये, यही है कुल्लू का मकान ! ऐसे ही मकान को यहाँ आलीशान कहा जाता है। और गाँवो के गये-गुजरे मकान बिल्कुल तख्तो के ! और फिर जरा आगे बढकर उस मकान की दीवार पर अपनी सोटी का प्रहार करते हुए—"और यह है यहाँ का शहरी राजमहल ! ज़रा देखिये तो ? पत्थर के टुकडो को मिट्टी के गिलाबे से जोडकर ऊपर काठ के कुछ बल्ले रख, उनपर पत्थर की सिलेटो को बिछा दिया। महल बना दिया ! आखिर कितना खर्च आया होगा इस महल के बनाने मे ? मुश्किल से तीन या चार हज़ार ! मगर अपनी सस्था के भवन पर पचास-साठ हजार तो हम अवश्य खर्च करेगे ! फिर देखेगे कुल्लू के लोग कि सस्था क्या होती है, सस्था का भवन कैसा होता है; और सस्था चलाई कैसे जाती है ?"—कहते-कहते उनके चेहरे पर गर्व और सतोष की रेखाएँ एक साथ उभर आई।

ऐसी बहुत-सी बाते कहकर स्वामी जी एक समय सप्रेम विदा ले चलते बने, और ब्रह्मचारी चला गया रसोई-घर मे खिचडी पकाने। स्वामी जी पर अपनी स्थिति प्रकट करना उसने ठीक न समझा ! विश्वास तो था ही। जब जरूरत होगी माग लेगे। पचीस-पचास की भला स्वामी जी जैसे महान् व्यक्ति के लिये कौन-सी बडी बात थी ? जब कि वे स्वय उससे अनेक बार हजारो देने का वादा कर चुके थे। और वह बगैर काम किये मुफ्त का लेना चाह भी तो न रहा था ? बिल्कुल आश्वस्त था।

लेकिन जब ब्रह्मचारी का राशन समाप्त हो गया, कानी-कौडी भी उसके पास शेष न रही, तो स्वामी जी के दर्शन उसे दुर्लभ हो गये। सयोग की बात ! स्वामी जी का दोष इसमे कतई न था। यद्यपि कुल्लू के इलाके से बाहर नही, पर कुल्लू शहर से बाहर वे अवश्य थे। ब्रह्मचारी जब उस दिन, उनके उपासक ठाकुर मलखानसिह 'फारेस्ट रेजर' के घर

उनसे मिलने गया तो मालूम हुआ कि स्वामी जी नग्गर[1] के मेले मे है। मेले मे दो-तीन दिन से अधिक लगने की सभावना न थी। पर खेद कि उन्हे वापस आने मे पूरा सप्ताह लग गया।

ब्रह्मचारी जिस बडे मकान मे रह रहा था उसे स्वामी जी ने किराये पर कहकर प० केसोराम से लिया था। प० केसोराम कागडे की तरफ के थे, पर अब निश्चित रूप से कुल्लू के निवासी बन चुके थे। लाख-डेढ लाख की जायदाद अब तक बन चुकी थी। उनके पिता प० राजाराम ने प्रथम विश्वयुद्ध (१९१४-१८) मे 'रिक्रूटिग एजेट' बनकर कागडा के हजारो नौजवानो को सेना मे भरती करा-कराकर सरकार बहादुर की बडी सेवा की थी। उसी उपलक्ष्य मे सरकार की ओर से सौ एकड जमीन उन्हे कुल्लू मे मिली थी। अब तो सेब के तीन बगीचे और चार किते निजके मकान भी थे। लगान-बझान का कारोबार भी चमक उठा था। लाहुल और स्पीती तक के लोग उनसे सूद पर पैसे लेने आते। सूद का दर कुछ कडा होने के बावजूद उनके द्वार खटखटाने को मजबूरियाँ लोगो को मजबूर कर देती।

प० केसोराम बहुत खुश इस बात पर थे कि, जहाँ उस खाली पडे मकान से किराये के पैसे वसूलने होगे, वहा मुफ्त मे सब के बगीचे की रखवाली भी होगी। क्योकि उनका निजी निवास वहाँ से मील भर दूर अपने दूसरे बाग मे था जहा उनके बासे की कोठी कम शानदार न थी। वे अक्सर ब्रह्मचारी के पास आते और बडे विनय से दोनो हाथ जोडकर बोलते—"मै दास हूँ आपका! कोई सेवा हो तो जरूर बताये मुझसे।" और फिर बडी बेतकल्लुफी से अपने निज का परिचय भी पेश करते—"ब्रह्मचारी जी! हम तो पशु है, पशु! जानवर! पैसे पैदा करना और खूब ऐश लेना! सिवा इसके न कुछ जानते है, न मानते है। धरम-करम, ज्ञान-विज्ञान, आत्मा-परमात्मा यह सब आपके लिये

---

१ कुल्लू की पुरानी राजधानी

है। आप जैसे महात्माओं के लिये! हम गृहस्थियों के लिये, पापियों के लिये नहीं!"

और जो कुछ भी हो, वे झूठ नहीं बोला करते। औरों की सेवा में भले ही कजूस हो, पर अपनी सेवा में कजूस वे कतई न थे। चार-चार पत्नियाँ थीं, मजे का मकान, अच्छी इगलिश नस्ल का एक कुत्ता, सवारी के लिये तेज चाल की एक घोड़ी, नौकर-चाकर सब कुछ थे उनके पास। वे अक्सर कहा करते—"जो नफा नरमी में है वह गरमी में नहीं ब्रह्मचारी जी!" और इसीलिये वे सबसे नरम रहा करते। हाकिम-हुक्कामों को नियमित रूप से डालियाँ भेंट करते। कभी कदाचित् कुछ बड़ों को घर बुला कर जिमाते भी। नौकर-चाकरों का सत्कार भी करते ही। उनके लिये भी हुक्का, चिलम-तम्बाकू का लगर चालू रखते ही।

लेकिन प० केशोराम भी कुछ दिनों से दिखाई न दिये। और कुल्लू के दूसरे लोगों से घनिष्ठता अभी कायम न हो सकी थी, अत ब्रह्मचारी किसी से पैच-उधार माँगने की स्थिति में भी न था। और दूसरा कारण यह भी था कि श्रीमान वर्मा जी बहुतों से उधार-पैंच लेकर सबको धत्ते दिखाते गये थे। और चूंकि ब्रह्मचारी वर्मा जी का सम्पर्की रह चुका था, अत वह किस मुँह से किसी से कुछ माँग सकता, या कह सकता? और अब लोगों की आँखें भी बदल चुकी थीं। अब उन आँखों में पहले का सम्मान भी न था। अक्सर उनमें घृणा और व्यग्य की रेखाएँ ही देख ब्रह्मचारी बड़ा बेचैन हो जाता। उसे बड़ी ग्लानि होती! लेकिन फिर भी वह कुल्लू से इस व्यग्य और घृणा की दशा में विदा होना नहीं चाह रहा था।

जब राशन समाप्त हो चुका तो दो दिन उसने सिर्फ नमकीन चाय पर इस आशा से गुजार दिये कि स्वामी जी अब आ ही रहे होंगे, आ ही रहे होंगे। और सचमुच तीसरे दिन सवा नौ बजे स्वय स्वामी जी महाराज—'नमस्ते ब्रह्मचारी जी!' कहते आ पधारे भी। पर ब्रह्मचारी

जी के भूख से उतरे चेहरे को देख वे दग रह गये ! उन्हे बड़ा आश्चर्य हुआ।

"आप क्या बीमार थे ब्रह्मचारी जी ?" बेचैनी भरे स्वर मे उन्होने पूछ दिया।

"जी नही !"—ब्रह्मचारी ने उदासीन स्वर मे जवाब दिया।

'नही, आप छिपा रहे है शायद !"—कहते हुए बडी महानुभूति से स्वामी जी उसके पास जा बैठे। ग्लानि-जन्य सामान्य ज्वर उसे अवश्य हो चला था। स्वामी जी उसकी नाडी और कपार छूकर चिता भरे स्वर मे बोले—"आपको कुछ बुखार है ब्रह्मचारी जी ! तो खबर क्यो नही भिजवाई आप ने मेरे पास ? मैं स्वय आ जाता ! आपकी सुख-सुविधा का प्रबन्ध कर जाता।" ब्रह्मचारी जी के पास कौन सवाद-वाहक बैठा था जो सवाद उनके पास ले जाता ? पर स्वामी जी ने इस ओर ज़रा भी ध्यान न दे, सहानुभूति दिखाने मे कजूसी रचमात्र भी न की।

अब सारा सकोच परित्याग कर ब्रह्मचारी ने अपनी सच्ची स्थिति उनसे कह सुनाई। सकोच-विजडित स्वर मे ही केवल पच्चीस रुपये उधार की उसने माग भी कर दी, पर वर्मा जी द्वारा रुपये उडाये जाने की बात उसने नही कही।

और जवाब मे—"यह क्या कहा आपने भी ?"—स्वामी जी जरा झिडकभरे स्वर मे उससे बोले—"उधार ? मै क्या पराया हूँ जो इस प्रकार सकोच करते है आप ? मैं अभी जाता हूँ, और पार्वतीदेवी के हाथ आपके लिये भोजन भी भिजवाता हूँ !..... आप भी सकोचशीलता की सीमा पार कर गये ब्रह्मचारी जी ! यदि ऐसी बात थी, पहले ही कहते ? फिर यह स्थिति ही क्यो उपस्थित हो पाती ? कभी महान् विद्वान् भी महान् भूल कर बैठता है ! खैर, मैं स्वय रुपये लेकर आऊँगा, आज सध्या को। और कुछ राशन भी भिजवाऊँगा ! अच्छा ! अभी तो मै चल रहा हूँ। देर करना ठीक न होगा।"—कहते हुए उस कमरे से निकलकर

लबे-लबे डग भरते अपने बासे को वापस चल पडे ।

◇ ◇ ◇

स्वामी जी को कुछ दिनो से रोज दिल का दौरा शुरू हो चला था। व्यावहारिक मनोविज्ञान के प्रकाड पडित प० हीराचद्र जी शास्त्री का अनुमान था कि यह सब बहाना था। दूसरो की सहानुभूति अर्जित करने का एक नाटक। और दूसरे मनोविज्ञानियो का कहना था कि यह बहाना नही, अपितु स्वभावसिद्ध सत्य था, निराशा का आशिक सस्फुरण था। अर्थात् चूँकि स्वामी जी के उद्देश्य और इरादे कुल्लू मे सफल न हो सके, अत वह असाफल्य, और असाफल्य से पैदा हुई निराशा ही जब तब दिल को कुरेदने और चकराने लग जाती है। और प० हीराचद्र जी का मतव्य था कि चूँकि स्वामी जी यह समझने लग पडे है कि अपने बेपेदीपन और डपोरशखी होने के कारण वे अपने उपासको तक मे अपना सम्मान खो चुके है, अत. इस प्रकार के नाटको से उनके दिलो मे सहानुभूति जाग्रत करने का प्रयत्न वे कर रहे है। क्योकि उन्हे पता है कि सहानुभूति और तिरस्कार एक साथ नही रह सकते ।

सबके अनुमानो का तात्पर्य मूलतः एक ही था। पर एक-दूसरे से कुछ नयापन दिखा सकने मे उन्हे कम आनन्द न आता। अभिमान भी होता। क्योकि स्वामी जी द्वारा पैदा की हुई परिस्थितियाँ उनके मस्तिष्क को खूब उर्वर बना चुकी थी ।

मुख्य उपासक ठाकुर मलखानसिंह ने बडी गहराई से लक्ष्य किया कि जब गुरु और शिष्य के जीवन, और जीवन की आकाक्षाओ मे कोई मौलिक विभेद नही, तो फिर वे क्यो किसी अपने जैसे व्यक्ति का शिष्यत्व स्वीकार कर अपने मे हीनत्व का सचार करे ? क्यो उस व्यक्ति के सत्कार मे, खान-पान मे इतनी उदारता मे पैसो को बर्बाद करे ? क्योकि उनके उपचेतन मन के किसी कोने मे यह भावना निरतर गतिशील थी कि स्वामी जी का शिष्यत्व स्वीकार कर उनकी सेवा-सुश्रूषा से शायद वे जीवन के उन सभी अपराधो की कालिमा को धो-पोछ सकेंगे, जिन्हे जगल

की सरकारी नौकरी के इस लबे अर्से मे वे मचित कर चुके थे। और मन की ऊपरी सतह मे यह आशा भी गतिशील थी कि चूँकि 'चीफ फॉरेस्ट कान्जर्वेटर' स्वामी जी के सगे रिश्तेदार है, अत ओहदे की तरक्की मे कठिनाई न रह जायगी ! लेकिन जब उन्हे विश्वास हो चला कि ये सब निरे आकाश के फूल ही है, तो श्रद्धाभक्ति के प्रदर्शन मे धन व वक्त का व्यय करना अब उन्हे बिलकुल फिजूल मालूम होने लगा।

अब ठाकुरानी, प्रतिदिन भोजन से पहले गरम-गरम पानी से उनके पैर पखारने स्वय नही आती। जेवन-जेवनार के शानदार प्रकार भी अब सामान्य बन चुके थे। अन्य उपासको के निमत्रण का सिलसिला भी अब खूब कम हो चला था। तहसीलदार श्री कपूरचन्द्र खन्ना का यह अकाट्य नियम अब अकाट्य नही रह गया कि प्रति रविवार को श्री स्वामी जी महाराज को अपने घर बुलाकर उनके साथ जीमा ही जाय। क्योकि उनकी इस प्रबल आशा मे शैथिल्य आ गया था कि वे स्वामी जी महाराज के माहात्म्य से एस डी ओ के पद पर कभी पहुँच सकेगे ! और रिटायर्ड इजीनियर लाला सोमनाथ चोपडा भी कुछ दूर-दूर रहने लग पडे थे, क्योकि उन्हे भी विश्वास हो चला कि उनके बेटे के ओहदे की तरक्की मे, अथवा स्वय कुल्लू-समाज के बीच मान-सम्मान अर्जित करने मे स्वामी जी का साहाय्य या सम्पर्क अब कुछ काम न कर सकेगा। और वे लोग भी, जो 'खत्री' होने के नाते श्री स्वामी जी महाराज से किसी सामारिक रिश्तेदारी का आविष्कार भी कर चुके थे, अब उन्हे अपने आविष्कारो पर पानी फेरते रचमात्र भी व्यथा या वेदना का अनुभव न हो रहा था ! बल्कि अपने आविष्कारो पर उन्हे ग्लानि ही होती।

स्वामी जी यह सब कुछ देख रहे थे, समझ रहे थे; मन-ही-मन अपने असाफल्य और दूसरो की धृष्टता पर खीझ रहे थे। क्योकि यह स्वाभाविक है कि बेईमान भी अपने ईमान पर शक किया जाना पसन्द नही करता। बल्कि अपनी नीयत पर शक-सन्देह किये जाने पर वह मन-ही-मन और भी खीझता है, नाराज होता है। और स्वामी जी तो स्वामी

जी थे। फिर नाराज क्यो न होते ? अपने ऊँचे व्यक्तित्व के प्रति जनता की वितृष्णा से दुखी और क्रुद्ध होना अस्वाभाविक न था उनके लिये। पर इस वेदना और अपमान की परिस्थिति से परित्राण पाने का तरीका कुछ समझ वे न पा रहे थे। उन्हे कभी-कभी अपने सुयोग्य शिष्य श्री वीरेन्द्र वर्मा पर बडा ही क्रोध आता, और कभी-कभी उनके दिल मे ईर्ष्या की आग भी धधक उठती कि गुरु गुड ही रहा, पर चेला चीनी बन चला ! और उन्हे कभी-कभी अपनी इस नासमझी पर भी कम क्रोध और शोक न हो आता कि, क्यो उन्होने व्यर्थ के वचनो और वायदो के भँवर मे उपासको के मन को फँसाकर अन्त मे स्वय उस भँवर मे जा फँसे ? क्या ही अच्छा होता कि वचनो के बाण बिखेरते वक्त सब कुछ ईश्वर की इच्छा पर डालकर स्वय कमल के पत्ते पर जलबिन्दु की भाँति बेदाग बचे रहते ? किस बात और साधन की कमी थी उनमे ? दाढी-मूँछो व सिर पर लम्बे बालो से भरा हुआ परम भव्य और आकर्षक व्यक्तित्व ! वाणी और व्यवहार मे माधुर्य व चातुर्य का आश्चर्यकारी समन्वय ! किस प्रकार वे सपाटे की अग्रेजी बोला करते। और आर्य-समाज के साप्ताहिक सत्सगो व सार्वजनिक सभाओ मे उपदेशो व भाषणो से बात ही बात मे कैसा जादूभरा वातावरण पैदा कर देते ! पर अब ये सारे उपादान उनके विफल बन रहे थे ! जरा-सी ही तो भूल थी ? यदि वचन प्रदान करते समय वे केवल इतना कह देते—'प्रयत्न मै अवश्य करूँगा। पर आगे ईश्वर की इच्छा। उस सर्वशक्तिमान की इच्छा के समक्ष भला मै हूँ क्या ?' और तब सब कुछ ठीक रहता ! अमीरचन्द्र व हीराचन्द्र को भी गोल-मटोल शब्दो मे उलझाये रखा जा सकता था। पर, अब चिडिया खेत चुग चुकी थी ! पछताने से कुछ लाभ अब न था।

लेकिन फिर भी पछताए वे जा रहे थे। उनकी दशा इस समय उस मरणोन्मुख मानव-सी थी जो जीवन के उन शेष क्षणो मे जीवन का लेखा-जोखा करने के बाद सिवा शून्य के कोई सबल अपने पास नही पाता जिसके आश्रय वह परलोक के दुर्गम पथ पार कर सके ! उम्र

छियासठ पार कर चुकी थी। जीवन के कुछ ही वर्ष तो अब बच रहे थे? परलोक की चिता यद्यपि उन्हे न थी, पर इहलोक की चिता तो थी ही। इहलोक मे अमरत्व के लोभ ने ही तो उन्हे इस पथ पर अग्रसर किया था? 'गुरुकुल कागडी' जैसी विशाल सस्था खोलकर एक आर्यसमाजी नेता को वे अमर होते देख चुके थे। डी ए वी. कालेज मे तो वे शायद स्वय छात्र भी रह चुके थे, और उसके सस्थापक की महिमा अपनी आंखो परख चुक थे। फिर वैसी ही किसी सस्था के सस्थापन के लोभ मे, उसी महिमा की महत्वाकाक्षा मे ही तो वे घर-द्वार छोडकर निकल पडे थे! पर अब देख रहे थे कि सब कुछ व्यर्थ और निरर्थक! अब तक के प्रयत्नो का कोई ठोस फल निकल न सका।

अपने प्रयत्नो के असाफल्य पर निराशा सबको होती है। उन लोगो को भी, जो दूसरो के लिए ही आत्मोत्सर्ग की पराकाष्ठा पर पहुँचकर भी उद्देश्य मे सफल नही हो पाते, और उन लोगो को भी, जो केवल सुयश और शाबाशी की खातिर ही उत्सर्ग का प्रदर्शन करके भी कामयाब नही हो पाते। स्वामी सत्यकेतु को नाम की लालसा थी, शाबाशी की ख्वाहिश थी, और भोग की आकाक्षा भी कम न थी, पर इस कहावत को चरितार्थ होते देख वे निराशा की आग मे और भी उत्तप्त होने लगे थे कि—"दुविधा मे दोनो गये, माया मिली न राम!"

अब अपने साथियो के साफल्य को याद कर वे और भी निराश हो पडे थे। अपने साथी महाशे दूनीचद की सफलता पर उन्हे कम ईर्ष्या नही हो रही थी। बेचारा मैट्रिक फेल कर सिर्फ पन्द्रह रुपये मासिक पर ही तो आर्यसमाज के दफ्तर मे मामूली क्लर्क की जगह पर भरती हुआ था। पर आज, वह अनेक पुत्रो का पिता; तीन-चार समाचार-पत्रो का स्वामी और आर्यसमाज का एकच्छत्र नेता बनकर इहलौकिक ख्याति एव रुपए-पैसे से जीवन की समस्त सुख-सुविधा का उपार्जन कर क्रमश: पारलौकिक पथ की ओर भी अग्रसर हो रहा था। क्योकि महाशे दुलीचद को महाशे से 'लाला' की, और लाला से 'महात्मा की, और महात्मा से 'स्वामी' की

उपाधियाँ और सम्मान अर्जित करते न कोई विघ्न हुआ था, न अधिक समय लगा था। स्वामी सत्यकेतु जब कि अब तक वानप्रस्थ की पगडडियो पर ही विचर रहे थे, लाला दुलीचन्द सन्यास के राजपथ पर अब बडे मजे मे बढे जा रहे थे। और आश्चर्य तो यह कि इस सन्यासावस्था मे भी उन्हे घर से रिश्ता-नाता बिल्कुल तोडना न पडा था। पैसे और भोजन-वसन के निमित्त परावलबी बनकर स्वामी सत्यकेतु की तरह किसी समय विडम्बित होने की आशका उन्हे न थी। तो फिर उनके जीवन पर विचार कर स्वामी सत्यकेतु के दिल मे ईर्ष्या और निराशा का होना अस्वाभाविक न था।

फिर वे जब-तब ब्रह्मचारी आदित्यनाथ के सम्बन्ध मे सोचते—"मैने क्यो मूर्खता की इस व्यक्ति से सम्पर्क कायम करने मे? क्या आवश्यकता आखिर थी इसका साथ करने की?" लेकिन जब उन्हे अपनी दूसरी गलतियो का ख्याल आता तो वे इस गलती को भी क्षमा कर देते। प० हीराचन्द्र जी जैसे मनोवेत्ताओ का अनुमान और निर्णय तो यह था कि ब्रह्मचारी को अपनाने मे स्वामी जी के एक नही अनेक उद्देश्य थे। एक तो यह, कि वे किसी अन्य का कुल्लू के धार्मिक जीवन मे दखल देकर प्रभाव जमा लेने को अपनी और अपने आर्यसमाज की तौहीन मान रहे थे। वे सनातनी घरो मे भी घुसकर वहाँ आर्यसमाज के झण्डे गाडने के प्रयत्न मे थे। और दूसरा यह कि ब्रह्मचारी उन्हे प्रबल प्रतिद्वन्द्वी लग रहा था। सो, उसे मीठी-मीठी बातो से अपनाकर, उलझाकर अपना अनुगत बना लेने मे उन्हे अपना उत्कर्ष ही दिखाई दे रहा था। लेकिन स्वामी जी की यह कामना अक्सर निराशा के चट्टान से टकरा जाती जब ब्रह्मचारी भरी सभा मे उनके विचारो का विरोध कर देता। उसकी वाणी मे विलास का लालित्य नही होता, पर सत्य का लालित्य और बल अवश्य छिपा होता जो बहुधा श्रोताओ को प्रभावित कर स्वामी जी को छोटा बना देता।

इन सब बातो को याद कर वे मन-ही-मन जला करते, अकेले मे ब्रह्मचारी से ऐसा न करने का इशारा भी करते, पर फिर भी यह अन्याय जब-तब हो ही जाता। लेकिन तब भी वे ब्रह्मचारी को हाथ से बे-हाथ होने देना नही चाहते। खुले विरोध व खुली प्रतिद्वन्द्विता की आशका से वे और भी डरा करते।

लेकिन आज ब्रह्मचारी को ब्यासा के उस पार उस दशा मे देख आने के बाद से उनके मन के भावो मे द्वन्द्व छिड गया। ब्रह्मचारी के मन मे प्रतिद्वन्द्विता का भाव कभी धोखे मे भी न आ पाया। यदि कभी वह उनका विरोध भी करता तो महज सत्य के समर्थन के ख्याल से ही; किन्तु स्वामी जी ऊपर से आदर और स्नेह दिखाते हुए भी मन-ही-मन उसे एक खतरनाक प्रतिरोध ही मानते। तो आज, अपने उस प्रबल प्रतिरोध को उस दशा मे देख उनके मन के शैतान का प्रसन्न हो उठना अस्वाभाविक न था! उन्हे यह कतई आशा न थी कि ब्रह्मचारी कभी इस स्थिति मे आ पडेगा। लेकिन आज उसकी उस स्थिति पर विचार करने पर उनके मन मे सहानुभूति नही, बल्कि उसके प्रति एक तुच्छता और अवहेला का भाव ही उदित हुआ! हाय! जिस प्रतिद्वन्द्वी को वे इतना खतरनाक माने बैठे थे, उसी की शक्ति और सामर्थ्य का ऐसा शोचनीय पर्यवसान!

घृणा और वितृष्णा से हृदय आकुंचित हो उठा! प्रतिशोध की परितृप्ति अनजाने ही प्रबुद्ध हो उठी! लेकिन वही मन जब उनकी निज की वर्तमान दशा से जा टकराया, तो वह तृप्ति, वह घृणा व वितृष्णा ज्यादा देर तक टिकी न रह सकी! अकस्मात् एक आशका से उनका हृदय सिहर उठा! आखिर कुछ दिन पहले तक उनकी अपनी स्थिति क्या ऐसी ही थी? महिमा के जिस गौरवमय पख पर व्यक्तित्व उनका उडा करता, वह कबका कटकर धराशायी बन चुका था। डेढ-दो मास पूर्व तक, इसी कुल्लू की गलियो व सडको पर जनता की आँखे जिनके आदर मे बिछी रहती, अब उन्ही गलियो व सडको पर उन्ही आखो मे

घृणा व वितृष्णा की रेखाएँ दौडते वे निज की आँखो से ही देखा करते! अब किसी को 'नमस्ते' करके ही उसके नमस्ते को वे पा सकते! तो फिर यदि उन सरीखे महामहिमाशाली का आज यह हाल है, तो कल उन्ही का हाल ब्रह्मचारी के उस हाल से भी बुरा और बदतर हो सकता है ?

आशका के इस भय के नीचे उनके मन मे उठा शैतान एकाएक बैठ गया। और जब शैतान बैठ गया तो इन्सान उठ खडा हुआ ! अब ब्रह्मचारी की दशा के लिये उनके मन मे सहानुभूति भी जाग उठी ! और पार्वतीदेवी के हाथ उसके पास भोजन भेजने को वह वचन भी याद आ गया ! वे दौडते हुए पार्वतीदेवी के घर पहुँचे, पर वे घर न थी। कही दूर गई थी। वापस उपासक के घर आये। पर उपासक से कुछ कहने या फरमाने का साहस उन्हे अब नही होता। उनके चेहरे को पढकर उनके मन को समझ चुकने पर भी वे वहाँ से आसन गोल न कर सके थे। अब सिवा विधवा पार्वती के कोई आश्रय उन्हे नजर न आ रहा था। और इस स्थिति मे कुल्लू से निकल जाना भी ठीक नही दीख रहा था। किन्तु युवती पार्वतीदेवी के घर टिकने मे, बुढापे मे भी लाछन और प्रवाद की कमी न रहेगी, यह सोचकर सकुचित हो जाते। पर दूसरा कोई चारा भी तो अब न था।

खैर, ब्रह्मचारी के पास भोजन भेजने का सकल्प तो शिथिल हो गया, किन्तु रुपये तो भेजने ही चाहिये ? बेचारा आशा मे तडप रहा होगा। उसका वह क्षुधाक्लात और सकोची चेहरा उन्हे बार-बार याद आने लगा। लेकिन पैसे पास मे न थे। कुछ दिन पहले तक पचीस-पचास रुपयो का जोगाड कर लेना बिल्कुल आसान था उनके लिये। पजाबी अफसरो के घरो मे अव्याहत प्रवेश था उनका। वे महिलाएँ उनकी कृपा अर्जित करने को सदैव सन्नद्ध रहती। पर उन सबो से बहुत कुछ लेकर कुल्लू के दीन-दुखियो मे बिखेर कर भी जब वे अपनी महिमा को अत तक अक्षुण्ण न रख सके, तो उन उपासिकाओ को अपने दिये पर कम अफसोस अब न हो रहा था ! और स्वामी जी ने लिये भी तो थे उधार कहकर ही।

सो, अब उन सबों का दरवाजा भी उनके लिये बन्द हो चुका था।

और वह ठेकेदार भी तो अब हाथ मे नही रह गया था जिससे सरकारी ठेके दिलाने का आश्वासन देकर दस-पाँच करके बहुत कुछ वे ले चुके थे। बल्कि उसकी उस खुली गुस्ताखी को याद कर अब भी उनका मन लाचारी के क्रोध से विक्षुब्ध हो रहा था, जब उस दिन सारे-आम उसने पैसो के लिये उनका हाथ पकड लिया था, और बडी मुश्किल से छुटकारा उनका हो सका था। यदि पार्वतीदेवी ने स्वय रुपये देकर उनका उद्धार न किया होता, कहा नही जा सकता कि क्या दशा होती उनकी ?

लेकिन क्षण भर मन-ही-मन ब्रह्मचारी से भी उन्हे ईर्ष्या हो चली कि उसे भी ऐसी दशा मे आ पडने का मौका क्यो नही मिला ? किन्तु दूसरे ही क्षण उनकी वह ईर्ष्या घृणा और उपेक्षा मे बदल चली जब पुन उसका क्षुधाक्लात चेहरा उन्हे याद आ गया। आखिर इससे दीन-दशा किसी की हो ही क्या सकेगी ? उनके धैर्य और सतोष के लिए ब्रह्मचारी की वह दीन-दशा नाकाफी न थी। लेकिन फिर भी रुपये भेजने का ख्याल उनके दिल से अभी दूर न हो सका ! किन्तु रुपये का जोगाड हो सकना भी आसान न था। केवल एक ही उपासिका का अब सहारा रह गया था। विधवा श्री पार्वतीदेवी के पास भी इतनी अधिक पूँजी न थी कि गाहे-बेगाहे वह स्वामी जी के काम आती। यद्यपि स्वामी जी का पल्ला उन्होने विशेष आर्थिक लाभ के लोभ मे ही ग्रहण किया था, पर अब तो केवल बाँह गहे की लाज भर रह गई थी।

स्वामी जी कुछ देर पसोपेश मे पडे रहे, पर बाद मे लाचारी ने वचन की बेचैनी उनके दिल से दूर कर दी। अब वे ब्रह्मचारी को उसके भाग्य पर ही छोड स्वय निश्चित हो चले। ब्रह्मचारी सारा दिन, सारी रात उनकी प्रतीक्षा मे बेचैन होता पडा रहा, पर न पहुँची वहाँ पार्वतीदेवी

जी भोजन के हाथ, और न पहुँचे श्रीमान सत्यकेतु जी महाराज स्वय रुपयों के हाथ।

◇ ◇ ◇

तीन दिन का उपवास, और हृदय पर विश्वासघात का जबर्दस्त आघात! जब हम किसी व्यक्ति को आदरणीय और श्रद्धेय मानकर उस पर अध-विश्वास कर बैठते है, किन्तु जब उस व्यक्ति के व्यवहार से ही वह आदर और श्रद्धा सहसा लुप्त हो जाती है तो दिल को मामूली चोट नही लगती। पूरे दिन और रात की प्रतीक्षा के बाद जब भोर मे कुछ देर के लिये आँखे लगकर फिर खुल गई तो ब्रह्मचारी को बडी कमजोरी और बेचैनी महसूस हुई। बात मामूली थी। कुल पचीस रुपये उधार की माग! लेकिन समय पर एक पैसे का महत्व भी कम नही होता। किन्तु सबसे बडी बात तो यह कि स्वामी सत्यकेतु-सा व्यक्तित्व यदि इस छोटी-सी बात की चपेट मे पडकर ही एकाएक सतह के ऊपर आ जाय तो कैसे उससे उन बडी बातो की उमीदे रखी जायँ जिनके लिये वह बार बार वचन दे चुका है? वचन देता जा रहा है? और जब कि अपनी आँखो से ब्रह्मचारी की उस दशा को वह देखकर भी लौटकर न आ सका, तो क्यो न आदित्यनाथ के मुख से स्वामी सत्यकेतु महाराज के लिए ये घृणा के अगारे निकल पडे—"लुच्चा! लफगा! शैतान का अवतार! बदमाश! रँगा सियार!"—इत्यादि-इत्यादि।

खैर, अब इन बातो से होना क्या था? केवल मन और मुँह खराब करने के सिवा और कुछ न था। सिवा उन काठ और पत्थर की दीवारो के, वहाँ कोई सुनने वाला भी न था जो उसके आहत और दग्ध हृदय पर सहानुभूति की शीतलता बरसा देता। जिस प्रकार दुनिया अपनी राह चली जा रही थी, उसी प्रकार नीचे व्यासा भी अपने प्रखर प्रवाह पर उछलती, मुस्कराती, नाचती और अट्टहास करती जा रही थी।

ब्रह्मचारी भावुक ठहरा। चोट खूब लगी थी! हृदय का बाँध टूटकर उससे भावना का प्रवाह फूट पडा। आँखो से भावना बह चली, और

स्वरो से भी। उसके हृदय के स्वर रह-रहकर ध्वनित होने लगे—

"यह सारा छल-कपट और धोखा-धडी सभ्यता का ही परिणाम है। सभ्यता ही मनुष्य मे आकाक्षा और आकाक्षा की पूर्ति के निमित्त छल-कपट व प्रपच रचा करती है। सभ्यता ही मनुष्य मे मनुष्य का शोषण करने की प्रवृत्ति भरा करती है। सभ्यता ही मनुष्य को सत्य से अलग कर असत्य के अवगुण्ठन मे लपेटती है। सभ्यता ही समाज की समस्त बुराइयो की जड है। यह सभ्यता ही समस्त खुराफातो का मूल कारण है!"

मनुष्य भावना के प्रवाह मे बहकर कटु-सत्य, चिर-सत्य, अर्ध-सत्य, असत्य सब कुछ उगलने लगता है। ब्रह्मचारी के इन समस्त उद्गारो मे छिपे सत्य-असत्य की मात्रा का निर्णय कर देना आसान नही। लेकिन भावना का नशा उसका कम होने के बजाय बढता ही गया। वह मन-ही-मन पुन. बोलने लगा—

"व्यर्थ है समाज मे शिक्षा और सस्कृति के प्रचार का प्रयास। व्यर्थ है वे सारे नीति और नैतिकता के प्रलाप! और व्यर्थ है ये सारे राज्य और शासन के दभ, आडम्बर और अहकार शिक्षा और सस्कृति के प्रचारक! नीति और नैतिकता के प्रलापक। राज्य और शासन के सचालक! तुम लोगो के होते हुए भी क्यो स्वामी सत्यकेतु और वीरेन्द्र वर्मा जैसे लाखो लोग समाज को बारबार उल्लू बनाकर भी स्वच्छद विचरा करते है? स्वच्छद खेला करते है? शासन और कानून की आड मे लाखों अभागो और अनजानो के खून, पसीना और आँसू की नीव पर अपनी शान-शौकत और भोग-विलास के महल खडे करने वाले धूर्तो! तुम सबमे अवश्य कोई गहरा गठबधन है! तुम सब अवश्य एक-दूसरे के पूरक और पोषक हो! अन्यथा यह सब नही होता! नही होता!! नही होता!!!"

भावना का नशा बढता ही गया। अब एकाएक उसका हृदय दौड पडा सुदूर अतीत के उन आदि मानवो की ओर जो सभ्यता के सम्पर्क से

कतई दूर थे, पर मानवता का अभाव उनमे न था।

वह फिर बोलने लगा—

"लाख भले थे वे आदि मानव जो सभ्यता और सस्कृति के सपर्क से हजारो कोस दूर थे! लाख भला था वह समाज, समाज का वह जगली जीवन जब मनुष्य से मनुष्यता दूर न थी! न तब राज्य था, न राजा था! न शासन और कानून का आडम्बर था! न सभ्यता और सस्कृति का पाखण्ड भरा ताना-बाना था! अहा! कैसा उन्मुक्त था वह जीवन! और कैसा स्वच्छन्द था वह समाज!"

ब्रह्मचारी आदित्यनाथ का मन अब अतीत के अनुराग से भर उठा! महाभारत के शातिपर्व मे भीष्मपितामह के मुख से वर्णित उस सत्ययुगी समाज का जीवन वह पढ चुका था! आधुनिक समाजशास्त्र भी उन तथ्यो की परिपुष्टि कर ही रहा था। फिर क्यो न उसका मन उस निश्छल अतीत के अनुराग से भर उठे जब कि सचमुच उसका हृदय इस समय छल-कपट के आघात से आदोलित हो उठा था?

भावना का आवेग क्रमश: कम हुआ। अब उसे क्षुधा का आघात अधिकाधिक अनुभव होने लगा। पर क्षुधा-निवृत्ति का उपाय क्या था? बाग मे सेव के कच्चे-कच्चे, बिल्कुल छोटे-छोटे फल अवश्य लटक रहे थे, पर वे काम के न थे। और ब्रह्मचारी के लिये ग्रहणीय तो वे इसलिये न थे कि वे दूसरे के थे। 'अय निज परो वा' इस भावना से शायद ऊँचे अभी वह उठ न सका था! लेकिन भूख? भूख तो भूख ही है? वह तो देवता को भी नही छोडती? इस भूख भयभीत होकर ही इन्सान को न चाहते हुए भी, अनेक अनीतियो की शरण लेनी पडती है! उसे कुछ समझ मे नही आ रहा था। यदि किसी से जाकर वह कुछ माँगे और यदि देने वाला इनकार कर दे? और कोई पसीजकर यदि दया भी दिखा दे? उभय भाँति ही उसे अपना मरण ही महसूस हुआ।

या यही प्रायोपवेशन (मरण-व्रत) करके प्राण-त्याग करदे, अथवा कुल्लू को नमस्कार कर विदा हो पडे? विदा हो पड़ने का ख्याल इस

समय उसे बुरा न लगा। दूसरा उपाय और था ही क्या ? इस विचार मे उसने उठकर तैयार होना चाहा, पर उसे बडी निराशा हुई जब उसके पैर तलमला गये। आँखो मे ऐसी चौंधी आ गई कि वह तलमलाकर बिछौने पर गिर पडा। स्वस्थ होते-होते कई मिनट लग गये !

लेकिन अपनी इस दुर्बलता और शैथिल्य पर उसे बडी ही ग्लानि हुई। इस जरा-सी परिस्थिति पर भी यदि वह काबू न पा सका, तो आगे जीवन मे वह कर क्या सकेगा ? भरी हुई जवानी है। सारा जीवन ही खाली पडा है। फिर यदि इतने मे ही घबडा गया तो धिक्कार हे इस जवानी को। इस अभिज्ञता और विद्वत्ता को !—यह सोचते ही वह सकोच से गड भी गया। पर सकोच से हृदय मे साहस के कुछ अकुर अवश्य फूट आये। लेकिन फिर भी इस दशा मे पहाडी पथ पर चलना आसान न था। केवल उपवास ही नही, विश्वासघात, दुर्बलता भी उसमे अभी कम न थी। अब पुन उसकी आँखो मे आँसू आ भरे। लेकिन ज्यो ही उसने एक बार करवट ली कि टिक्-टिक् करती अपनी घडी पर नजर जा पडी। चाबी देना वह भूल गया था। घडी को चाबी देते-देते ही उसे ख्याल आया कि क्यो न इस घडी को ही बेचकर तत्काल की समस्या सुलझा ली जाय ? और ज्यो-ज्यो यह विचार दृढ होता गया, त्यो-त्यो उसके मन मे शाति और सतोष जाग्रत होने लगा। बेचैनी दूर होने लगी।

अब वह घडी को उलट-पुलटकर देखने लगा। पाँच एक साल पुरानी होने के बावजूद सयत्न-रक्षित होने के कारण नई-सी ही दीख रही थी। 'वेस्ट एण्ड वाच' कम्पनी की प्रसिद्ध घडी बिकने मे दिक्कत तो न होगी। आधी कीमत भी मिल जाय तो कमी किसी बात की न रहेगी। फिर तो वह कुल्लू मे भी आसानी से कुछ महीने गुजार सकेगा। कुछ लिखाई-पढाई का काम भी कर सकेगा। यद्यपि उस घडी को लेकर किसी दुकान या व्यक्ति के पास जाते उसे सकोच अवश्य अनुभव होने लगा, पर लाचारी थी। और संकोच काहेका जब वह भिखमगी न थी?

पर कमजोरी इतनी थी कि मील भर दूर बाजार तक जा सकना आसान न था। सब से पहले इस उपवास की धारणा होनी ही चाहिए। तब कही बाहर जा सकना आसान रहेगा। यद्यपि ब्रह्मचारी शरीर से काफी मजबूत था, पर कुछ मास पहले मियादी या किसी ऐसे ही बुखार मे गुजर चुकने के कारण पहले की शक्ति अभी वापस न आ सकी थी। वस्तुत कुल्लू आगमन मे स्वास्थ्य-सुधार भी उद्देश्य था उसका। सो, कुछ खाद्य वस्तु पाने की चिन्ता करते-करते सामने बगीचे के किनारे बथुआ के पौधो की ओर उसकी दृष्टि दौड पडी। फिर क्या था? आशा ने साहस का सचार कर दिया। कुछ बल महसूस हुआ। बथुआ के पत्र तोडते-चुनते आधा क्षण लग गया। आस-पास बिखरी लकडियाँ चुनकर उसने आग जलाई। बथुआ का साग अब पकने लगा। और ब्रह्मचारी के मुख से रह-रहकर महाभारत के युधिष्ठिर-यक्ष-सवाद का वह श्लोक भी निकलने लग पडा—

दिवसस्याष्टमे भागे शाक पचति यो गृहे,
अनृणी चाप्रवासी च स वारिचर मोदते।"

—अर्थात्, सुखी वह है, जो दिन की अन्तिम वेला मे साग पकाकर खाता हुआ भी, न किसी का कर्जदार है, न अपने घर-बार से दूर कही परदेस मे है।

यद्यपि इस श्लोक का पूरा प्रसग वहाँ नही था, किन्तु साग पकाने का प्रसग तो था ही। और खानाबदोश होकर भी एक प्रकार से अपने बन्धु-बाँधवो से दूर परदेस मे तो था ही? नही तो ऐसी दशा होती क्यो उसकी? ब्रह्मचारी चूल्हे के आगे बैठा गुनगुना ही रहा था कि 'नमस्ते ब्रह्मचारी जी!' इस अभिवादन से चौंककर उधर देखा, पर धुएँ के कारण सहसा निश्चित न कर सका कि व्यक्ति कौन है। यद्यपि आवाज उसकी पहचानी-सी ही प्रतीत हुई।

उत्तर मे उसने भी नमस्ते किया। अब पहचानते भी देर न लगी कि वह तहसीलदार श्री कपूरचद खन्ना का इकलौता लाडला महेन्द्र था।

"मेरे कमरे मे बैठो महेन्द्र ! आ रहा हूँ अभी !"

पर महेन्द्र के मन मे कौतूहल था। कुल पन्द्रह-सौलह की ही तो उम्र थी अभी अत मामूली बात मे भी कौतूहल का होना अस्वाभाविक न था। पर उसे यह मामूली बात न जची। ब्रह्मचारी का चेहरा बिल्कुल उतरा हुआ था। मानो वर्षों का बीमार हो वह ! यही तो दस-बारह दिन पहले जब भेंट हुई थी, चेहरे पर अस्वास्थ्य का चिह्न भी नजर न आ सका था !

"आपको यह क्या हो गया, ब्रह्मचारी जी ?" स्वर मे परेशानी और उत्सुकता भरकर उसने पूछा—"आप बीमार थे क्या ?"

"हाँ !"—ब्रह्मचारी ने सकुचाते हुए जवाब दिया। क्योकि सहसा वह निश्चित न कर सका कि जवाब क्या दे। यद्यपि बीमार वह था ही ? मनोव्यथा की बीमारी, भूख की बीमारी सभी बीमारियो से बढकर होती है। अत केवल 'हाँ' मे जवाब देकर वह चुप रहा।

"कैसी बीमारी ब्रह्मचारी जी ?"—महेन्द्र और भी औत्सुक्य भरे स्वर मे पूछता बिल्कुल उसके निकट आकर बैठ गया।

ब्रह्मचारी ने उस बच्चे की आँखो मे कुछ लक्ष्य किया। मानो सारा हृदय वहाँ उतरकर समवेदना से बेचैन हो पडा हो। उस चितवन मे शिष्टाचार का दिखावा रचमात्र भी न था। इस निश्छल सहानुभूति के आघात से उसका हृदय भी उसके स्वरो और आँखो मे उतर आया।

"जरा बुखार था महेन्द्र।"—भरे स्वर मे उसने जवाब दिया।

"जरा तो नही !"—महेन्द्र ने मानो प्रतिवाद करते मे पकते साग की ओर देखकर पूछा—"और यह क्या कर रहे है आप ?"

"साग पका रहा हूँ। पथ्य के लिये !"—कहते-कहते उसका स्वर और भी भारी हो गया !

महेन्द्र उस भारीपन को भाँप गया। वह बेचैन होकर बोला—"तो बुखार मे आपके पास यहाँ कोई न था ?"

'मेरे पास ?" ब्रह्मचारी स्वरो मे औदासीन्य भरकर बोला—"हाँ! फक्कडो के पास यहाँ आता कौन है भाई ?"

"मै डाक्टर को बुला ले आऊँ ? या दवा वगैरह ले आऊँ आपके लिये ?"

ब्रह्मचारी का हृदय ज़रा विचलित हो चला। पर उगी उदासीन स्वर मे उसने जवाब दिया—"डाक्टर या दवा की अब ज़रूरत क्या महेन्द्र, जब बुखार खुद ही टल गया ?"—कहते हुए उसने तरकारी को चूल्हे से उतार लिया। फिर महेन्द्र से बोला—"जरा बगीचे से सेव के एक-दो पत्ते तो ले आओ महेन्द्र! जरा तुम्हे भी दूँगा सिर्फ स्वाद लेने की खातिर, दूसरा कोई बरतन मेरे पास नही है।"

महेन्द्र ने जरा हिचक अवश्य जाहिर की, पर ब्रह्मचारी के आदेश को टाल न सका! वह पत्ते ले आया। ब्रह्मचारी ने एक काठी के सहारे एक पत्ते पर जरा-सी साग रख के महेन्द्र के आगे धर दिया, और शेष को काठी के सहारे जरा-जरा निकालकर पत्ते पर ठडा कर-करके स्वय खाने लगा। वह बिना नमक की साग भी इस समय उसे कम स्वाद न दे रही थी। क्योकि नमक भी पहले ही खत्म हो चुका था। लेकिन महेन्द्र ब्रह्मचारी के आदर से ही उस साग को बडी मुश्किल से निगल सका।

ब्रह्मचारी को साग खाते अधिक देर न लगी। महेन्द्र, झट तसली को उठाकर व्यासा के किनारे जा, उसे माँज पानी भरकर ले आया। परिस्थिति को भाँपते उसे देर न लगी। भरी तसली को ब्रह्मचारी के सामने रखकर वह स्वर मे दृढता भरकर बोला—"मै आपके लिये अपने घर से अभी खाना लेकर आ रहा हूँ, ब्रह्मचारी जी!• अगर आपने मना किया, तो कहे देता हूँ, कि मै भूख हडताल कर दूँगा, आपके सामने।" —कहते-कहते ही उसकी आँखे सजल हो उठी।

महेन्द्र जब तसली माँज रहा था, ब्रह्मचारी की दशा पर उसके हृदय का कण-कण करुणा से मुखरित हो उठा। सम्पन्न घराने का इकलौता लडका था। जीवन मे प्यार और प्यार-भरी निगरानी का

अभाव कभी अनुभव न किया था। जरा-से सिर दर्द पर भी अपने ऊपर घर-भर को मरते वह देख चुका था। लेकिन आज जब यथार्थ उसकी आँखो मे बडी क्रूरता से खरोंचे मार गया तो वह स्थिर न रह सका। और इस बाल-हठ के माधुर्य ने आदित्यनाथ को भी मुग्ध कर दिया। सहानुभूति के आघात से वह विह्वल हुए विना न रह सका। अचानक उसकी आँखो मे भी आँसू उभर ही आये।

"नही !"—मुस्कराते हुए जरा भरे स्वर मे प्रतिवाद करते वह बोला—"भूख-हडताल की जरूरत न पडेगी महेन्द्र !' अच्छा ! तो, एक काम करो ! अगर जरा भी मेरे लिये तुम्हारे दिल मे इज्जत है, जरा भी प्यार है, तो मेरा एक काम कर दो। और सो भी इस तरीके से कि कोई दूसरा जान भी न पाये कि यह मेरा काम है। बोलो, करोगे तुम ?"

महेन्द्र दग रह गया ! आदित्यनाथ के उस शपथपूर्ण आदेश और आग्रह का तात्पर्य उसकी समझ मे न आया ! किन्तु ब्रह्मचारी जी के लिये उसके दिल मे इज्जत भी थी, प्यार भी था। क्योंकि ब्रह्मचारी के वचन और व्यवहार मे अब तक कोई असगति उसे दिखाई न दी थी। और इस समय उस पीडित ब्रह्मचारी के लिए उसके हृदय मे सहानुभूति का जो स्रोत उमड रहा था उसके आवेग मे वह उसके लिये सब कुछ करने को तैयार था।

"जरूर करूँगा ब्रह्मचारी जी ! जरूर करूंगा।"—उसने दृढ स्वर मे जवाब दिया।

"तो, यह लो !"—उसकी ओर अपनी बहुमूल्य जेब-घडी को बढाते हुए उसने आदेश के स्वर मे ही कहा—"इसे बाजार मे, अथवा किसी दूसरे के हाथ भी बेचकर मेरे लिये कुछ रुपये ला दो और उन्ही रुपयो मे से कुछ दिन का राशन भी बाजार से लेते आओ ! चावल, दाल, हल्दी, नमक, तेल और एक बोझ लकडी। और सेर-भर आलू भी। समझे ? और एक थाली, एक कटोरी और एक तमली भी। और फिर

मजे मे हम दोनो मिलकर खाना बनाये, और आज दोनो ही मिलकर यही खाये भी। फिर भूख-हडताल की जरूरत तो न रह जायगी महेन्द्र ?" कहकर ब्रह्मचारी मुस्करा पडा।

महेन्द्र भी मुस्करा पडा। क्षणभर वह असमजस मे अवश्य पडा रहा, पर ब्रह्मचारी के शपथपूर्ण आदेश का अनादर करना उसने अनुचित समझा। उसने उस घडी को चुपचाप ले लिया, और चल पडा बाजार की ओर।

◇ ◇ ◇

महेन्द्र आज स्वय भी घोर मानसिक व्यथा से आक्रात होकर ही ब्रह्मचारी के पास पहुँचा था। मनोव्यथा बच्चो को भी होती है, भले ही अनुभूति की क्षमता परिपक्व कभी न हो। परीक्षा मे, और विशेषकर अन्तिम परीक्षा मे पास न होना छात्रो के लिये कम दुखदायी नही होता। महेन्द्र को अपनी मैट्रिक परीक्षा का परिणाम कल सध्या को ही मालूम हुआ था। जब मनुष्य पूर्णत आशावान हो, तब यदि एकाएक निराशा का प्रहार हो पडे तो उस समय की व्यथा को बडी आसानी से समझा जा सकता है। स्वामी सत्यकेतु पर महेन्द्र की अटूट श्रद्धा थी, विश्वास था। जब वह परीक्षा देने के लिये विदा हुआ था, स्वामी जी ने अपने पट्ट शिष्य श्री वीरेन्द्र वर्मा के हाथ बाकायदा वेदमन्त्र पढकर ही उसके भाल मे टीका लगवाया था, गले मे माला पहनाई थी। जब उसने पारी-पारी से दोनो के पैर छू प्रणाम किया था, उसे अब भी याद थे स्वामी जी के वे वाक्य, जो उन्होने जीभ से तालु को बार-बार चटकार पुचकारते हुए कहे थे—"जा बेटा, जा! फर्स्ट पोजीशन तो रखी है तेरी।" और तब कितने समुल्लास और विश्वास के साथ वह विदा हुआ था परीक्षा देने के लिये। लेकिन अब उसे स्वामी जी के शुभाशीर्वाद व वेदमत्रो की व्यर्थता का मानो स्पष्ट प्रमाण मिल चुका था।

एक तो परीक्षा मे फेल होने का शोक और दूसरे श्रद्धा-विश्वास मे व्याघात की वेदना—उसका कोमल भावुक हृदय अब शतश विच्छिन्न

हो रहा था । उसके हृदय का हाल भी अभी ब्रह्मचारी के हृदय के ही समान था । परीक्षा से पूर्व ब्रह्मचारी उसे अकेले मे बार-बार चेतावनी दिया करता—"महेन्द्र, इम्तहान पास होते है मेहनत से, खूब पढने से, न कि साधु-सतो के सत्सग के आशीर्वाद से !" लेकिन इस परामर्श पर ध्यान न दे वह हर रोज स्वामी सत्यकेतु के सत्सग मे आ जाता , शाम-सवेरे उनके साथ खूब अवारागर्दी करता । क्योकि ब्रह्मचारी के व्यक्तित्व के समक्ष उन दिनो स्वामी सत्यकेतु का व्यक्तित्व उसे कही महान, कही विशाल प्रतीत होता । और जब महान व्यक्तित्व विशाल विश्वास का भी जनक होता है, तो लघुतर व्यक्तित्व वाले आदित्यनाथ के परामर्श की उपेक्षा कर देना अस्वाभाविक न था उसके लिये । लेकिन इस समय स्वामी सत्यकेतु के व्यक्तित्व का पासा भी पलट चुका था, उसे उस व्यक्तित्व की निःसारता का एक नया निजी प्रमाण भी प्राप्त हो चुका था; अत: उस किशोर-हृदय मे इस समय ब्रह्मचारी के प्रति विश्वास और श्रद्धा की बाढ उमड आई थी । तभी तो आज वह सवेरे-सवेरे आ पडा था ब्रह्मचारी जी के दर्शन के निमित्त, ताकि उस सत् परामर्श की उपेक्षा के लिये उनसे माफी माँगे, आगे के लिये पथ-निर्देश की प्रार्थना करे; स्वामी सत्यकेतु के विरुद्ध मन मे सचित गुब्बारो को निकाल-निकाल कर अपना जी हल्का करे ।

लेकिन ब्रह्मचारी की उस दशा को देख वह अवाक् रह गया ! विचलित हो चला ! क्योंकि किसी समान-स्थिति के मनुष्य को देख मन मे सहानुभूति का सचार हो पडना अस्वाभाविक नही होता । पर वह तो ब्रह्मचारी को मन-ही-मन प्यार भी करने लगा था, श्रद्धा भी । तो क्यो न उसे उस स्थिति मे देख वह विचलित हो जाता ? युवको व किशोरो का दिल ठहरा ! जब घृणा की तो खूब ! और जब श्रद्धा और प्यार किया तो खूब । चलते-चलते जब भी उस घडी को अपने पैंट के पाकेट से निकाल के वह देखता, उसकी आँखे भर आती । वह बार-बार सोचता—"क्या दुनिया बदमाशों को ही पूजती है ? उसीसे डरती और उसीको

भरती भी है ?" पर उसे कोई सही उत्तर नही मिलता। दुनिया बदमाशो को नही भलो को पूजती है, और बदमाशो को भी पूजती है भला समझकर ही। नही तो उसी कुल्लू मे स्वामी सत्यकेतु को अब कोई क्यो नही पूजता ? पर दुनिया डरती बदमाशो से ही है, भलो से नही। हाँ, जब-तब भलो को दु ख देकर वह डरती अवश्य है। लेकिन महेन्द्र को इस समय यही दिखाई देने लगा कि, दुनिया कद्र करती है बदमाशो की, बेईमानो की। बगैर पाखण्ड किये ससार मे पुजा लेना आसान नही है। और जो भला है, वह पाखण्ड भला क्योकर करेगा ? पुजाने का आडम्बर भला क्यो पसारेगा ?

महेन्द्र चलते-चलते इन्ही विचारो की उलट-पेची मे पडा रहा। बाजार के उस लम्बे-पतले छोर को वह पार भी कर गया, पर पता न चला। अब वह पूरे दो मील दूर, अपनी कोठी पर पहुँचकर तब कही एकाएक उस घडी को बेचने की बात याद कर पाया। मन कुछ असमजस मे पड गया। लेकिन दूसरे ही क्षण, उसे एक बात जब सूझी, तो खुशी का ठिकाना न रहा। जेब-खर्च से बचाये पैसे उसके पास इकट्ठे होकर कुछ बन चुके थे। उसने अपनी दराज देखी। पैसे गिने। गिनकर फिर देखे। काफी थे, घडी की कुल कीमत से भी ज्यादा। उसने सोचा कि क्या ही अच्छा हो यदि वह घडी भी ब्रह्मचारी जी को लौटा दे, यह सारे पैसे भी दे दे! दान की खुशी और अहकार एक साथ उसके हृदय मे उभर कर चेहरे पर निखर आया। लेकिन पुन वह कुछ सोचकर दबक गया। ब्रह्मचारी यदि पैसे लेने से इनकार कर दे ? और वह घडी भी न बेच पाये ? फिर उसे एक बात सूझी। यदि इस घडी को अपने ही पास रखकर ब्रह्मचारी जी को पैसे दे दे, और फिर मौका देखकर, उनके मन का अन्दाजा लेकर घडी को लौटा भी दे, तो कैसा रहे ? यह बडा अच्छा रहेगा! एक अच्छा सरप्राइज' रहेगा! खुशी से हृदय उसका नाच उठा। लेकिन फिर उसे आशका हो उठी, अगर ब्रह्मचारी जी के मन मे कुछ शक हो गया तो ? अगर उन्होने इतने रुपये लेने स्वीकार नही किये तो ? तब उसने उस

घडी की कीमत औरो से इशारे से पता लगाकर उसकी लगभग आधी कीमत 'साठ रुपये' ब्रह्मचारी जी के पास ले चलने का निर्णय किया।

◇ ◇ ◇

महेन्द्र के घडी लेकर जाने के बाद आदित्यनाथ का मन बहुत कुछ स्वस्थ हो चला था। लेकिन पास मे जब दिल और दिमाग हो, अनुभूति और विचार की क्षमता हो तो बगैर अनुभव और विचार के कोई कैसे रह सकेगा, और खासकर उस दशा मे जब अनुभव और विचार स्वत. टकराया करते है? उनके टकराने और उद्बुद्ध होने योग्य परिस्थिति भी स्वय मौजूद होती है?

आदित्यनाथ के मन मे अनुभवो और विचारो की तरग-सी उठकर फिर मन और मस्तिष्क के अनन्त सागर मे विलीन होने लगी। उनमे कुछ को पकड-पकडकर क्रमश एक लडी मे वह गूँथने भी लगा।

वह सोच रहा था—"सभ्यता यदि आज अनेकाशो मे अभिशाप है, तो उसी को अनेकाशो मे वरदान क्या नही बनाया जा सकता? सभ्यता का अभिशाप हर व्यक्ति को ही तो अभिशप्त नही बना देता? तो तहसीलदार (श्री कपूरचन्द) के पुत्र की आँखो मे जिस सारल्य और स्वच्छता का दर्शन अभी कुछ क्षण पहले उसने किया था वह क्योकर सम्भव हुआ? उसका सारा परिवार ही सभ्यता के अवदानो से सम्पन्न है। सभ्यता और सभ्यता के अवदानो को अपनाकर ही वह सारा परिवार सुखी और शान का जीवन बिता रहा है। यह सही है कि श्री कपूरचन्द तथा उन जैसे लाखो-करोडो लोग इसी सुख और शान के जीवन की आकाक्षा मे उन सभी तरीको को अपनाते है, ऐसे अनेक रास्ते अख्तयार करते है जो मानवता और नैतिकता की कसौटी पर खरे नही उतर सकते। पर उसी भ्रष्ट और अनैतिक वातावरण मे ही महेन्द्र जैसे सरल और स्वच्छ शिशु क्यो उत्पन्न होते है? माना कि महेन्द्र भी आगे चलकर सुखी और शान की जिन्दगी के पीछे सभ्यता के अभिशापो से अभिशप्त हुए बिना न रह सकेगा, पर इसमें तो सभ्यता द्वारा पैदा की हुई

परिस्थिति का अपराध है, महेन्द्र का नही ? महेन्द्र जैसे लाखो-करोडो नौजवानो का नही ?"

उसके मन ने ही उसके मन के इस प्रश्न का जवाब देते फिर कहा—"ठीक है ! लेकिन सभ्यता और सभ्यता की परिस्थितियो का निर्माण अपने-आप तो नही हो जाता ? उसका निर्माता भी तो स्वय मनुष्य है। इस आँखो देखी सचाई को सिद्ध करने के लिये किसी सबूत की जरूरत तो नही है। और जब निर्माता स्वय मनुष्य है तो उसके गुण-दोषो की जिम्मेदारी किसी अन्य के सिर नही ही डाली जा सकती। उन परिस्थितियो को पैदा करने की जिम्मेदारी भी तो आखिर मनुष्य पर ही है, जिसकी चपेट मे पडकर महेन्द्र जैसे लाखो अच्छे मानव आगे चलकर अच्छे नही रह जाते। तो इन मानवो को हमेशा अच्छे मानव बने रहने की परिस्थिति पैदा करना क्या मानव की जिम्मेदारी नही है ?"

ब्रह्मचारी काफी देर तक अपने मन के दोनो पक्षो के इन प्रश्नो को सुनता रहा। सोचता भी रहा। फिर मानो पच बनकर एक समय वह मन-ही-मन बोला—"जल मे जीवन भी है, विनाश भी। (वर्षाकाल मे, नदियो के उन्मत्त प्रवाह मे छिपा विनाश, अवकाश को पाकर जिस अकाड ताडव द्वारा हाहाकार की सृष्टि कर देता है, लाखो वर्षो तक मनुष्य इस विनाश के ताडव पर विजय पाने मे समर्थ न हो सका ! प्रकृति की इस प्रचड शक्ति के समक्ष निरुपाय और निरीह बना अपने भाग्य को कोसता रहा। अपनी निरुपायता की कोख से ही जाने कितने देवी-देवताओ को जन्म दे-देकर उसने उन्हे पूजना भी आरम्भ किया। किन्तु, सभ्यता और सस्कृति के उत्तरोत्तर बढते अवदानो ने ही तो आखिर मानव के अन्दर विनाश की प्रचडता पर प्रभुत्व पाने की आकाक्षा जगाकर, प्रवाह की उन्मत्तता मे छिपे जीवन को आयत्त कर उसे व्यवस्थित ढग से जगत् मे बिखेरने की क्षमता भी दी ? और वही जल

फिर विनाश न रह, जीवन बनकर जीवन का, जीवन की प्रगति का आधार बन गया ?"

इतना सोचते ही ब्रह्मचारी का मन प्रफुल्ल हो उठा ! किन्तु कुछ देर पहले जिस मानसिक आवेग के वशीभूत हो उसने शिक्षा-सस्कृति के प्रचार के प्रयास को व्यर्थ बताते हुए सभ्यता को बार-बार धिक्कारा था, उसे याद कर अपनी नासमझी पर उसे खेद भी खूब होने लगा। उसकी समझ मे यह आ गया कि सभ्यता अपने-आप मे बुरी नही है ; सस्कृति अपने-आपमे बुरी नही है, और शिक्षा अपने-आप मे बुरी नही है, बल्कि बुरा है सभ्यता, सस्कृति और शिक्षा के प्रयोग और सचालन का वह तरीका, और वह भावना, जिससे समाज मे वे सारी निकृष्ट परिस्थितियाँ पैदा होती है, और उन परिस्थितियो मे उलझकर मनुष्य मनुष्य न रहकर निकृष्ट और घृण्य बन जाता है। लेकिन साथ ही उसके मन की आँखो मे यह अकाट्य सत्य भी चमक ही उठा कि सभ्यता, सस्कृति व शिक्षा के उपादानो को सुन्दर बनाने, सुन्दर ढग और सुन्दर भाव से सचालित करने एव सुन्दर परिस्थिति के निर्माण की जिम्मेदारी भी तो मनुष्य पर ही है ? इस जिम्मेदारी से किसी बहाने भी वह बच तो नही सकता ?

अब वह फिर सोचने लगा—"मनुष्य आखिर इतने दिनो तक निठल्ला ही तो नही बैठा रहा ? यदि वह निठल्ला ही रहा होता तो उसके हाथ मे निर्माण और ध्वस के जो अब तक अपरिमित और प्रबल साधन हो चुके है, वे प्राप्त न हुए होते ? और यदि वह मानव को सचमुच का 'मानव' बनाने के प्रयत्न मे भी शिथिल रहा होता, तो अब तक जो अनेक पैगम्बर, महापुरुष, सत, सुधारक और सुविचारक उसे प्राप्त होते रहे है, वे प्राप्त न हुए होते ?"

कुछ देर तक वह पुनः इन प्रश्नो की पृष्ठभूमि मे विचारो की वन्या मे बहता रहा। उसने पुन अपने आपसे प्रश्न किया—"किन्तु, इतने पैगम्बरो, सतों, सुधारको और सुविचारको के अथक प्रयत्नो के बावजूद

मनुष्य आखिर सचमुच का 'मनुष्य' बन क्यो नही सका ? दिन-रात उन महापुरुषो के नाम की माला जपकर भी ; उनके नाम पर धर्मों और मत-मतातरो एव दलो की सृष्टि करके भी ; वह क्यो सच्चे माने मे 'मनुष्य' अब भी न बन सका ? वह क्यो अपनी पशुता और शैतानियत से अब भी उन्मुक्त न हो सका ? बल्कि, उल्टे वह क्यो दिनो-दिन मानवता से दूर होता गया ?"

यह प्रश्न एक प्रबल समस्या बनकर इस समय उसके मन और मस्तिष्क मे चकराने लगा। वह फिर अपने-आपसे पूछने लगा—"यह सुनिश्चित नियम है कि कारण के रहते कार्य होता ही है। तो फिर इन कारणो के रहते भी कार्य—मनुष्य को सच्चे मनुष्य बनाने का कार्य—आखिर हुआ क्यो नही ? वह हो क्यो नही रहा ?"

एक वैज्ञानिक अपनी कुछ वर्षो की खोज और अनुसधान के बाद कोई एक ठोस चीज ससार को दे जाता है। लेकिन सत, सुधारक और पैगम्बर हजारो वर्षो से प्रयत्न करते रहने के बावजूद शायद वह ठोस वस्तु आज भी मानव को न दे सके जिसका वह आज भी भूखा है, जिसके लिये उसका हृदय युग-युग से सतृष्ण चला आ रहा है। तात्पर्य यह कि विश्व-मानव को ठोस और सक्रिय रूप मे 'मानव' बना देना वैज्ञानिको के लाखो आविष्कारो से भी बढकर है, विशाल है।

अब वह अपनी सारी शारीरिक कमजोरी को भूलकर, विचारो की उत्तेजना मे कुछ देर कमरे मे चहल-कदमी करने लगा।

"हूँ !"—उसने सोचा—"अवश्य इन कारणो मे ही कोई महती त्रुटि है, बहुत बडी भूल है जो कार्य को नही होने देती ! नही तो हजारों वर्षों के प्रयत्न यो अकारथ ही नही रह जाते ? अवश्य कोई,···अवश्य कोई महती त्रुटि है इन प्रयत्नो मे, प्रयत्न के सचालको मे जो कार्य को नही होने देती ! नही होने देती !"

मानो एकाएक विचारो मे और उत्तेजना आ गई। उत्तेजना कमज़ोरी को बिसारती है। वह कुछ तेज़ी से चहल-कदमी करता हुआ

उसका विचार-प्रवाह एकाएक जा मुड़ा उन विचारकों
माजिक व वैयक्तिक समस्या का मूल कारण समाज
वस्था में ढूँढ़ा करते हैं ; उत्पादन के गलत और
में खोजा करते हैं ।

-विद्यापीठ का सारा चित्र उसके मानस-पट पर
ो उभर आया और उसके साथ आ खड़े हुए स्वामी
र्मा, पं० हीराचन्द्र शास्त्री, अमीरचन्द्र व लाला
दि । लेकिन जब आर्थिक समस्या के आधार पर इन
र गठजोड़ों के मूल कारणों के विश्लेषण की दिशा
' ही था कि कुली के सिर खाद्य-सामग्री लदवाये स्वयं
पहुँचा । ब्रह्मचारी के विचारों की जुड़ती हुई लड़ी
क्योंकि महेन्द्र ने खीर से भरा एक बड़ा कटोरा, कुछ
; सूखे फल उसके आगे रख स्नेह भरे आग्रह के स्वर
से खा लें ब्रह्मचारी जी ! मैं तब तक खाना बनाने का
हूँ । मैं भी आज यहीं खाना खाऊँगा ।"—कहकर
अन्य सामान उतारकर व्यवस्थित करने में लग

ाति के समाप्त होते ही ब्रह्मचारी के मन और मस्तिष्क
ाप्त हो चली ! फलतः शरीर का शैथिल्य फिर उभर
वाद्य पदार्थ को सामने रखे देख भूख भी उभर आई ।
हेन्द्र की इस सरल सहृदयता और स्निग्धता ने उसके
से आन्दोलित कर आँखों में उतार दिया । उसे लगा
वता वहाँ स्वयं पहुँचकर कुछ क्षण पहले उसके मन में
ा उत्तर उसे दे चुकी हो ! इस उत्तर में विचार-
लता न थी । किसी प्रकार का भी कोई उलझाव न
ी बात ने जैसे बहुत बड़ी बात को उसके सामने रख
बात से अपरिचय उसका न था । स्वयं उसका अपना

हृदय इस बडी बात से परिपूर्ण था। पर अपने हृदय मे छिपे होने के कारण उसके रूप को वह परख न सका था। अभी वह कुछ दिनों से देखता और परखता आ रहा था केवल स्वामी सत्यकेतु, वीरेन्द्र वर्मा, और उन्ही जैसे अन्य लोगो के व्यवहार को! उन्ही के स्वरूप को! अत सारा ससार जैसे अधकार से आच्छन्न उसे दिखाई दे रहा था! उस अधकार मे स्वय उसका अपना रूप ओझल हो गया था, और महेन्द्र जैसे कतिपय सरल सहृदय मानवो का सरल स्वच्छ रूप भी! छोटी-सी बात ने कितनी बडी कटुता से उसके मन-मस्तिष्क को विषाक्त कर दिया था। पर एक दूसरी छोटी या बहुत बडी बात ने उस व्यापे विष पर जैसे अब एकाएक अमृत की बौछार कर दी!

आँखो मे उभरे आँसुओ को झट पोछकर और हृदय मे उमडे उच्छ्वासो को दबा गला खखारकर स्नेह-सिक्त स्वर मे उसने महेन्द्र को आमन्त्रित किया—"तुम भी आ जाओ महेन्द्र! तनिक तुम भी मेरा साथ दो! और उस मजदूर को भी शामिल कर लो! सब मिलकर खायेगे! खाना तो अब सध्या को ही बनेगा!"

द्वितीय खंड

अक्सर आन मे आकर लोग शान के काम मे लग जाते है। ब्रह्मचारी आदित्य के दिल को कम ठेस न लगी थी। विश्वासघात का आघात वह बर्दाश्त कर चुका था, पर आघात से पैदा हुई आन वह बर्दाश्त न कर सका। वह सोचने लगा, कुल्लू मे ही कुछ कर दिखाने को। स्वामी सत्यकेतु के आडबर व पाखड का महल कब का ढह चुका था, ध्वस्त हो चुका था। किंतु जनता के दिल मे आदित्यनाथ के प्रति आदर-भाव वापस न आ सका था। उसको वापस लाने की आकाक्षा ने भी आन का रूप लिया। अध्ययन वह काफी कर चुका था। खूब घूम भी चुका था। पर दुनिया जिसे ठोस कर्म कहती हे, ससार की स्थूल आँखो मे जिसका मूल्य आँका जाता है, उस क्षेत्र मे अभी वह कुछ कर न सका था। और अब, जब कुछ कर दिखाने का नशा उसके मन पर सवार हुआ तो अब तक का सारा किया-कराया उसके निज के नेत्रो मे ही नगण्य बन गया। लगा जैसे सारी पढाई-लिखाई और सारी घुमक्कडी ठोस कर्मण्यता से रहित दिमागी व शारीरिक ऐयाशी के सिवा और कुछ नही।

अब उसके मन मे "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत्" ईशोपनिषद् का यह आदेश और उपदेश ध्वनित होने लगा। अर्थात् मनुष्य कर्म करता हुआ ही जीने की अभिलाषा करे। इस सदेश मे जैसे उसे जीवन का सारा सारस्य छिपा हुआ प्रतीत हुआ। अकर्मण्य जीवन मे भला सारस्य

क्या ? जन्म लेकर बचपन, जवानी और बुढापे की लीक पर जीवन की मशीन का एक निरा पुर्जा बनकर घिसटते चले जाना ही आखिर मानव-जीवन का उद्देश्य तो नही ? वह जीवन क्या, जो जीवन भर एक निरा पुर्जा ही बना रह जाय ? वह जीवन क्या जो साधारणता की सीमा न लाघ सके ? लेकिन पुर्जापन की परिधि को पारकर, जीवन-मशीन का निर्माता व संचालक बने बिना, साधारणता की सीमा नही लाघी जा सकती। और बिना ठोस कर्मठता के ठोस असाधारणता भी उपलब्ध नही होती।

सो, ब्रह्मचारी आदित्य ने कुल्लू मे एक विद्यापीठ स्थापित करने का निश्चय किया। इस विद्यापीठ के चक्कर मे ही तो अनजाने फँसकर वह विडम्बित हुआ था, तिरस्कृत हुआ था ? तो इस प्रकार कुल्लू मे एक विद्यापीठ स्थापित व सचालित कर दिखाने की भावना और सकल्प मे दरअसल उस विडम्बना और तिरस्कार का प्रतिशोध भाव ही छिपा हुआ था लेकिन उसका हृदय उसे बार-बार आगाह कर रहा था—"तू ऐसा विद्यापीठ बना आदित्य, जिसमे आडम्बर न हो, पाखड न हो, छल-छद की गन्ध न हो, कूटनीति की कुटिलता न हो, और राजनीति का अखाडा न हो !" दिल की इस आवाज़ को वह सुना करता; समझा करता और उपर्युक्त उपाधियो से बचे रहने के सकल्प को दृढता के आसव पिला-पिलाकर खूब सुपुष्ट भी किये जाता।

लेकिन समस्या थी विद्यापीठ के लिये उपयुक्त स्थान की; अर्थ की व्यवस्था की। उपयुक्त स्थान की समस्या हल भी हो सकती है, पर अर्थ की समस्या टेढी-खीर ही थी। और इस समस्या के हल हुए बिना कुछ होने को न था। क्योकि बिना अर्थ के अर्थवादी समाज मे कोई भी सकल्प सार्थक नही होता और अर्थ के लिये अर्थ-पतियो का मुँह जोहना पडता है; उनके द्वार की खाक छाननी पडती है, उनका चापलूस बनना पडता है। पर ब्रह्मचारी आदित्य इस कला मे निपुण न था। वरन् ऐसी प्रवृत्तियो से उसे घोर घृणा ही थी। पर रह-

रहकर अर्थ की समस्या उसके सामने आ ही जाती। आखिर अर्थ के अभाव ने ही तो वहाँ स्वामी सत्यकेतु को विडम्बित किया था ? स्वय आदित्यनाथ को तिरस्कृत किया था ! और इस अर्थ की आशाओ के फुहारे छोड़-छोडकर ही तो स्वय स्वामी सत्यकेतु कुछ दिन पूजित और सम्मानित होते रहे थे ? वे स्वय आर्यसमाजी थे, जन्म मे खत्री थे, और प० हीराचन्द्र शास्त्री और अमीरचन्द्र धर्म से सनातनी और जन्म मे ब्राह्मण होते हुए भी अर्थ की उम्मीद ही मे तो झुक-झुककर उनके पैर छूते ! रोज उनके दरबार मे हाजिरी देते ? स्वामी सत्यकेतु का सारा आडम्बर ही अर्थ की आशाओ पर आधारित था। किन्तु जब परिस्थितियो की कैंची से आडम्बर का आवरण बिल्कुल छिन्न हो गया, यथार्थ बिल्कुल नग्न हो गया, तो सबकी उमीदो का महल भी ध्वस्त हो गया और उस महल के कगूरे पर बैठा स्वामी सत्यकेतु का व्यक्तित्व भी गिरकर धूल मे जा मिला।

वह इन विचारो व द्वन्द्वो के फेर मे पडा ही था कि कानो मे कुछ आहट आई। उसने देखा सामने महेन्द्र, एक व्यक्ति को साथ लिये आ खडा हुआ था। उसने झट आगे बढकर ब्रह्मचारी जी के पैर छुए, और देखा-देखी साथ के उस सज्जन ने भी। ब्रह्मचारी स्वय आगन की लहलहाती घनी घास पर बैठा था। वे दोनो भी उस घास पर ही विनय से बैठ गये।

"आज भुन्तुर का मेला है, ब्रह्मचारी जी !"—घास पर बैठते ही महेन्द्र उत्साह से बोला—"हम इसीलिये आये हे, ताकि मेले मे साथ ले चले आपको।" और साथ के उस सज्जन की ओर इशारा करके—"और सरदार जी ने भी नही माना। बोले 'ब्रह्मचारी जी को आज साथ जरूर लेते चलेगे।' क्योकि भुतुर के उस पार एक बहुत बडे विद्वान् स्वामी जी है जो इनके 'गुरुजी' है। वे भी आपसे मिलना चाहते है। वे भी मेले मे आयेंगे आज ! सरदार जी से पहचान तो न होगी आपकी ? आप है यहाँ के नायब तहसीलदार सरदार सुन्दरसिह मजीठिया। कई

बार बोले—'भई, ब्रह्मचारी जी का एक बार दर्शन तो कराओ।' तो मेले के लिये अपनी जीप तैयार खडी है ब्रह्मचारी जी ! एक पथ दो काम होगा। मेला भी देखेगे। उन स्वामी जी से मुलाकात भी होगी आपकी। और अब सरदार जी का भी दर्शन-मेला हो गया आपसे !"

महेन्द्र के आग्रह पर ब्रह्मचारी आदित्य तैयार हो गया। मेले मे जाना कोई बुरी बात नही। किसी समाज का जीवन देखने के लिये 'मेला' एक खास और महत्वपूर्ण अवसर होता है। मेले मे मानव अपने मन की दबी उमगो को प्रदर्शन का जामा पहनाने का अवसर प्राप्त करता है। इस प्रकार उस समाज और उस मानव को खुलने व खिलने का भी मौका मिलता है। और जब वह खुल और खिल गया, फिर उसका देखने से शेष क्या रह गया ?

हेमन्त व शिशिर की गाढी रजाई के भीतर से जागकर कुल्लू का जीवन इन मेलो मे ही अगडाई लेना शुरू करता है। चैत्र से लेकर कार्तिक तक विभिन्न स्थानो के विभिन्न मेलो मे वह जीवन खुले व खिले बिना नही रह पाता। और सब कुछ होता है देवता के नाम पर। गाँव-गाँव मे देवता और जन-जन के मन पर देवताओ के श्रद्धा-भरे आतक का अकुश। जनता के मन के साथ ही देवताओ का मन भी जाग पडता है। कितना आकर्षक होता है वह दृश्य जब विभिन्न ग्रामो से घटा-घडियाल, ढोल-नगाडा और सिगा-शहनाई के सम्मिलित स्वर के साथ देवताओ की सवारियो के पीछे-पीछे जनता का विशाल जुलूस मेले की ओर बढा करता है !

भुन्तुर के मेले के दृश्य कम आकर्षक न थे। गाँव-गाँव से आती हुई देवताओ की सवारियाँ जब गुर-पुजारियो[1] के कधो पर झूलती और

1 गुर—देवता का वह मुख्य प्रतिनिधि जिस पर जब-तब देवता 'स्वय' उतर कर उसके मुँह से अपनी बाते कहलवाता है। बिहार और उत्तर-प्रदेश मे गुर को 'भगता' कहते है।

उछलती, एक-दूसरी सवारियो मे मिलकर अपनी खुशी का नाट्य करती, तो वह दृश्य जहाँ कुल्लू-वासियो के हृदय मे श्रद्धा-सम्मान पैदा करता वहाँ दूसरो के दिलो मे हास्य की गुदगुदी भी ! सब कुछ हो रहा था नाटक के तौर पर ही। दर्शको व सवारियो से कुछ दूर खडे कुछ अछूत, नगाडे पर लय-ताल के साथ चोट दिये जा रहे थे, और बास के या काठ के दो लम्बे बल्लो के बीच टिकी देवताओ की पालकियो के ओर-छोर को कधो पर थामे गुर-पुजारी, उस लय-ताल पर ही अपने अगो को कंपाये और लचकाये जा रहे थे।

देवताओ के प्रति श्रद्धा-सम्मान के बीच से ही जब-तब दर्शक स्त्रियो की आपसी अठखेलियाँ भी सजीव हो ही जाती। शृगार मे उनकी तत्परता देखते ही बन रही थी। गोरे-गेहुए मुखडो के ऊपर उनके सिरो पर बँधे हुए लाल अथवा काले रग के थिप्पू[1] उनके चेहरे पर आकर्पण की अजस्र वर्षा कर रहे थे। भडकीली सूती कमीज और सुत्थरण[2] के ऊपर, दोनो कधो व गले को लपेटती नीचे घुटनो तक लटकती ऊनी पट्टू[3] के आवरण मे छिपा सौदर्य भी कम आकर्पक न था। पट्टुए, उम्र और स्थिति के अनुसार रग-विरगी थी—सादी और भडकीली भी। और पट्टू के ऊपर गात्री[4] के कसाव मे कटि का सोदर्य और वक्षोजो के बीच मे पट्टू के दोनो पल्लो को जोडती हुई बुमणियाँ[5]।

गहने भी तरह-तरह के। नाक की दोनो पुडो पर गडे हुए सोने के

---

१. सिर पर बाँधने की आवश्यक लम्बी रूमाल

२. तंग पायजामा

३ कुल्लू की स्त्रियों का मुख्य ऊनी पहनावा। सुत्थरण और कमीज विशेष अवसरो पर पहनी जाती है, जबकि पट्टू और थिप्पू हर दम—हर समय।

४ कपड़े की कमरबद

५ चाँदी, सोने या पीतल की दो नोकदार लड़ियां

बडे-बडे लौंग, और नथुने से चिपटकर ओठो पर झूलती हुई चौडी बलाक (मुँदरी), और गले मे चाँदी का चन्द्रहार और सोने की तरमणियाँ; तथा कानो के हर रेशे मे छिदी हुई खुण्डियाँ (छोटी बालियाँ) और डुलकनू (बडी बालियाँ), कलाइयो मे सोने या चाँदी के कगन, चूडियाँ और मणिदरियाँ, एव बाहो मे बँद व बाँहीबद ! और अनेक तरुणियो के पैरो मे जूते-मोजे के ऊपर मानो टखनो से खेलती व रुन-झुन करती चाँदी अथवा काँस की छडे भी ।

पुरुषो के पहिनावे भिन्न-भिन्न थे । कुछ लोग सफेद अथवा काले ऊन का पायजामा, जामा और गोली-गोली ऊनी टोपियाँ पहने पुरानेपन मे ही मस्त दिखाई दे रहे थे । और कुछ लोगो के लिबास मे जरा-जरा नयापन भी प्रवेश कर चुका था । पुराने ढग की टोपी व पायजामे के साथ कोट-कमीज मे नयापन भी मुस्करा रहा था । बहुतो की टोपियो की मुँडेरो मे खोसे गेदा अथवा अन्य पहाडी फूल मुस्करा रहे थे और बहुतो के गले मे फूल की मालाएँ । और कतिपय युवक कानो मे सोने के बडे-बडे कुडल पहने मानो एक साथ इस सौदर्य व बडप्पन का विज्ञापन किये जा रहे थे । जूते तरह-तरह के—बूट से लेकर घास की चप्पल तक, और किसी-किसी के पैर बिल्कुल नगे भी ।

उधर हलवाइयो की दूकाने अपनी क्षुद्र तबुओ मे उन लोगो को खीचे ही जा रही थी जिनकी रसनाएँ पूडी-मिठाइयो के साथ चाय-पकौडियो की सोधी-मीठी गध से पानी-पानी बन रही थी । बिसातियो की दूकाने भी नर-नारियो की भीड से सजीव हो उठी थी । और माताओ की पीठ पर बँधे अथवा उनकी पट्टूओ का दामन थामे बच्चे उन वस्तुओ के लिये मचल-मचलकर उस सजीवता को और भी बढा रहे थे ।

एक तरफ जादूगर अपने खेल से दर्शको के दिलो को आदोलित कर उनसे पैसे बटोर रहा था, और दूसरी तरफ एक खुली-चौरस जगह मे नाच का रग भी जम चुका था । यात्रियो मे से ही डेढ-दो दर्जन पुरुष एक वृत्त मे खडे हो, परस्पर कमर मे हाथ डाले , मद-मद नाचे जा रहे

थे, और वृत्त के ठीक बीच मे खडा बजनिया ढोल पर चोट दे-देकर मानो नृत्य के लय-ताल का निर्देश किये जा रहा था नर्तको की अग-भगियाँ जब-तब चरम-अवस्था मे आकर कुछ सजीवता अवश्य ला देती, पर उनमे हृदय को उछालने का सामर्थ्य प्रतीत नही होता । किन्तु फिर भी कुल्लूवासी नर-नारी उसे देखने मे कम मशगूल न थे । क्योकि भीड वहाँ कम न थी । लेकिन ब्रह्मचारी आदित्यनाथ इन नृत्यो को एक-दो बार पहले भी देख चुका होने के कारण इस निर्णय पर पहुँच चुका था कि सुधार की वहाँ काफी गुंजायश है । और उसमे इस आशा का अभाव न था कि किसी समय कुल्लू का ही कोई प्रतिभावान युवक इन नृत्यो मे कला की वह कारीगरी भर देगा जिसमे आज की यह दीख रही निर्जीवता शायद ही नजर आ सके । इस निर्जीवता पर शायद ही कोई गर्व कर सके ।

सरदार सुन्दरसिह के गुरु स्वामी सोमानद जी अब तक मेले मे आ चुके थे । ब्रह्मचारी से स्वामी जी का परिचय हो गया, और उनके आग्रह पर उनके साथ ही उनकी कुटिया की ओर उसे चल देना पडा । किन्तु महेन्द्र और सरदार जी साथ न जा सके, क्योकि किसी सरकारी काम से सरदार जी को आज ढालपुर[1] अवश्य वापस जाना था ।

कुल्लू शहर से आठ मील दक्षिण, व्यासा और पार्वती के सगम पर बसे भुतुर का महत्व मामूली नही है । कुल्लू-उपत्यका का केन्द्रवर्ती होने के कारण व्यापार का प्रमुख स्थान होने के अतिरिक्त भावी सम्भावनाओ के अनेक सकेत भी है । यहाँ व्यासा के बडे पुल को पार करते वे दोनो उस पार पहुँचे । उस पार भी नदी के किनारे सडक के दोनो ओर तख्तो के मकानो मे सजी दुकानो की अस्वच्छता पर पुष्ट होती मक्खियाँ क्रमशः घनी होती सध्या के भय से मानो भागकर कही छिप चुकी थी, अतर्धान हो चुकी थी । और हुक्को की गुड-गुड के साथ निकलती सोधी गध मानो

---

१. कुल्लू मे वह स्थान जहाँ सरकार का क्षेत्रीय प्रधान कार्यालय है ।

हवा को कुछ भारी बना रही थी । और मेले से लौटकर आये बच्चो की चुहल मानो कण-कण मे जीवन बिखेरे जा रही थी ।

बाजार पार करते ही पार्वती की धीमी धवल-धारा देख वास्तव मे ब्रह्मचारी विमुग्ध हो उठा ! लगा जैसे बिल्कुल दूध की नदी ! और कितने इतमीनान से कुछ गज आगे ही व्यासा के सामने वह जा रही थी ! ब्रह्मचारी क्षणभर खडे हो उस दृश्य को देखता रहा । कितने आश्चर्य की बात कि आकार मे स्वय व्यासा से विशाल होती हुई भी उसमे मिलते ही अपने अस्तित्व का सकेत भी वह नही छोड पाती । मानो एक घनी लघु नीलिमा, एक विशाल धवलिमा को निगलती उसे तत्काल पचाये जा रही थी ।

प्रयाग मे गगा-यमुना का सगम भी इस सगम के समक्ष उसे अनाकर्षक लग रहा था । चतुर्दिक के पर्वतो से हरित-भरित तरु-गुल्मो की मुस्कान इस सगम मे वह सौन्दर्य भरा करती है, जो प्रयाग के सूखे-सपाट वातावरण मे उपलब्ध कहाँ ? सभव कहाँ ?

पार्वती के तट पर ही स्वामी सोमानद की कुटिया थी । बाहर से बिल्कुल सादी होकर भी भीतर से काफी शानदार ! कुल्लू के अन्य मकानो की तरह इसकी दीवार तख्ते की न होकर मिट्टी की थी पर छप्पर स्लेटो की ही, कलगीदार और चौकोना । भीतर चूने से पुती दीवारो पर दशावतार[1] के साथ दशो[2] महाविद्याओ के बडे-बडे चित्र, सुन्दर फ्रेम और शीशे मे मढे हुए । और एक तरफ व्यासगद्दी-सी सजी थी जिसके चारो कोनो पर काठ के खरादे चार खभो पर शाटिन का झालरदार शानदार चँदोवा तना हुआ था, और दूसरी तरफ बाघ की एक लबी

१ मत्स्य, कश्यप, बाराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि ।

२ काली, तारन, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, मातंगी, बगलामुखी आदि ।

चितकबरी खाल और दो-तीन छोटे आसन और बेत की एक चिकनी चटाई भी। बिजली अभी कुल्लू के किसी भी स्थान मे पहुँची न होने के कारण लालटेन के प्रकाश मे ही कमरे का सारा दृश्य चमक और दमक रहा था।

स्वामी जी के बताये आसन पर ब्रह्मचारी अब विराज चुका था, और आँखे दौडा-दौडाकर कमरे की सजावट निहारे जा रहा था।

"आप भी भला क्या सोच रहे होगे ब्रह्मचारी जी,"—कमरे की किवाड अदर मे बदकर स्वामी सोमानन्द जी अपना आसन ग्रहण करते हुए बोले—"किस आडबरी बाबा के पास आ गया यहाँ ?" लेकिन करूँ क्या ? दुनिया जो नही मानती बिना आडबर कराये ?" फिर जरा मुस्कराते हुए—"किंतु अतिशय सादगी का प्रदर्शन भी तो अतिशय आडबर का ही दूसरा रूप है, ब्रह्मचारी जी ? फिर इस छोटी-सी कुटिया का यह यत्किंचित भीतरी आडबर ससार मे अन्य अनेक खुले व बडे आडम्बरो के समक्ष तो राई-रत्ती भी नही, रचमात्र भी नही।

ब्रह्मचारी जवाब मे केवल एक बार हँस पडा।

"हँसने की कोई बात नही ब्रह्मचारी जी।"—स्वामी जी गभीरता का जरा नाट्य करते हुए बोले—"मैने तो सवा सोलह आने सच्ची बात बता दी आप से, कि बिना आडबर के न दुनिया कभी मान सकी है, न कभी मान सकेगी! और जिसे दुनिया मे रहना है जरा शान-मान और गुमान के साथ, उसे कभी भी आडबर का साथ छोडना न पडेगा। उसके आचरण से आडबर यो चिपका रहेगा, जैसे भूख से भोजन और भोजन से भूख।"

ब्रह्मचारी पुन दबकर हँस पडा।

"आप तो फिर ऐसे हँस पडे जैसे मै झूठ बोलता होऊँ! खैर! सच्ची बातो पर ससार सदा से ही हँसता आया है, और सदा हँसेगा भी। लेकिन जाने दीजिये। मै आपको खीच ले आया हूँ विशेष मतलब से यहाँ। मेरा इसमे दोष नही। क्योकि सारी दुनिया ही मतलबी है, और

मैं इस दुनिया से अपने को अलग नह मानता।'

ब्रह्मचारी पुन हँसी को दबा न सका। स्वामी जी से पहली बार मुलाकात का अवसर था। उनके इस हँसोड व खुलेपन से वह मन-ही-मन कुछ मुग्ध हुआ जा रहा था, परन्तु फिर भी मन मे रह-रहकर कौतूहल उमड रहा था कि आखिर स्वामी जी उससे कहना क्या चाह रहे है और करवाना क्या चाह रहे है!

"आप तो हँसे ही जा रहे है ब्रह्मचारी जी!"—स्वामी जी अब मुख्य विषय पर आये—"मैने आपको आज कष्ट दिया है स्वय कष्ट मे पड चुके होने के कारण। अतिशय बेवकूफ भक्त अतिशय चालाक शत्रु से कम कष्टदायी नही होता! मेरा एक अतिशय बेवकूफ भक्त मुसीबत की एक अतिशय गहरी नदी मे ढकेलना मुझे चाह रहा है। सो सोचा, कि यदि ब्रह्मचारी जी ही चमत्कार का कोई पुल बाँधकर इस नदी को पार करा दे तो बडी आसानी मे उसमे डूबने से बच जाऊँ।" फिर दोनो हाथ जोडकर निहोरे के स्वर मे—"बडी आशा से बुलवा मँगाया है आपको! दुहाई सरकार की! निराश न करेगे आप!"

ब्रह्मचारी इस बार और भी जोर से हँस पडा, लेकिन साथ ही उसका कौतूहल भी बढ चला।

"तो क्या",—इस बार स्वर मे मजाक भरकर उसने पूछा—"उस मुसीबत की नदी मे किसी अन्य अभागे को धकेलकर आप स्वयं किनारे से तमाशा देखना चाह रहे है स्वामी जी!"

स्वामी जी भी हँसे—"नही-नही! बात ऐसी नही ब्रह्मचारी जी! धकेलना आपको नही चाह रहा हूँ, बल्कि आपकी करामात के पुल पर मै स्वय पार उतरना चाह रहा हूँ। तहसीलदार का लडका महेन्द्र यहाँ अक्सर आकर आपकी प्रशसा के पुल बाँध जाया करता है। तभी तो बडी आशा से खीच मँगवाया है आपको—"

"तो महेन्द्र द्वारा बाँधे उस पुल से ही क्यो नही पार हो जाते आप?"—ब्रह्मचारी ने भी हँसकर व्यग्य का व्यग्य मे ही जवाब दिया।

ही !" स्वामी जी ने प्रतिवाद किया—"उस छोकडे द्वारा बाँधे पुल मे यह सामर्थ्य कहाँ कि इस बूढे का बोझ सम्हाल सके ? अच्छा, तो सक्षेप मे अपनी मुसीबत की कथा तो सुना दूँ आपको। वह जो नायब तहसीलदार यहाँ तक घसीट ले आया आपको, सो किसी विशेष मतलब से ही ब्रह्मचारी जी ! वह जितना पक्का मूर्ख है उतना ही पक्का मतलबी भी। यह मूर्ख ही उस मुसीबत की नदी मे धकेलना मुझे चाह रहा है। क्या बताऊँ आपसे, इस बेवकूफ के दिल-दिमाग पर आजकल कुल्लू के आखाडा बाजार के किसी वकील की लडकी के लिये प्रेम का नशा इस प्रकार सवार हो चुका है कि सोने-जागने, उठते-बैठने, खाने-पीते सिवा उस लडकी के और कुछ इसे दिखाई ही नही देता। लेकिन उस लडकी के पीछे पडने के बजाय मूर्ख पड चुका है मेरे पीछे ! इस विरक्त बूढे बाबा के पीछे ! कहता है—'कोई उपाय करो गुरुजी, नही तो मर जाऊँगा ! उसकी याद मे तडप-तडपकर जान दे दूँगा !' मै कहता हूँ मर जा अभागे ! तेरे मरने या जीने से ससार का बिगडता या बनता क्या है भला ? लेकिन मेरे कहने या चाहने से ही न कोई मर सकता है, न अपना हठ छोड सकता है। ठीक उसी प्रकार जैसे गाधी बाबा के कहने और चाहने पर भी अग्रेज यहाँ से नही जाना चाहता, और दुनिया भर के सतो के चिल्ल-पो मचाने पर भी दुनिया अपनी सीधी राह से फिसलना नही चाहती।

"खैर, जाने दीजिए। सस्कृत मे एक कहावत है ब्रह्मचारी !—'तस्य तदेव हि मधुर यस्य मनोयत्र सलग्नम्—'[1] वही बात इस मूर्ख के भी दिल-दिमाग पर सवार है आजकल ! तीन बच्चो की माँ होकर भी इसकी अपनी बीवी उस युवती कुमारी से कही अधिक सुन्दर है, कही

---

१. जिसका मन जिसमे लग जाय उसके लिये वही मीठा, अर्थात् वही सुन्दर और वही सब कुछ।

अधिक स्वस्थ है। और वह कुमारी जिस प्रकार रूप-रंग मे सामान्य है उसी प्रकार शिक्षा-दीक्षा मे भी। लेकिन वासना के उन्माद मे अधी आँखे कुछ देख नही पा रही। समझाकर हार गया, पर मानने को तैयार नही। उलटे मुझे ही हीर-राँझा और लैला-मजनू जैसी कितनी प्रेमी-जोडियो की कथाएँ सुना-सुनाकर उनके उदाहरण दे-देकर उपदेश देने लगता है। मेरा दिमाग दुरुस्त करने का प्रयत्न करता है। कहता है, इस युवती को पाने के लिए वह सब कुछ त्यागने को तैयार है। घर-द्वार, बीवी-बच्चे, कडा-कच्छ-कृपाण-कघी और केस भी! अब बताइये भला, मै किस तरह समझाऊँ उसे? सुना है कि न तो वह लडकी ही इसे चाहती है, न लडकी के माता-पिता ही। फिर मै कौन-सा जादू चला दूँ कि एकाएक सबका मन फिर जाय, मन बदल जाय? और इसकी इच्छा' ....''

वाक्य पूरा होने से पहले ही भोजन के लिए बुलावा आ गया। स्वामी जी का भोजन एक भक्त के यहाँ बना करता था। और उस भक्त का छोटा लडका इतना ढीठ था कि द्वार पर आते ही मुँह की आवाज के साथ किवाड की कुडी भी जोर-जोर से खडकाने लगा। "भूत आ गया, भूत!"—कहते हुए स्वामी जी को आसन से झट उठकर दरवाजा खोलना ही पडा। ब्रह्मचारी को साथ लेकर भक्त के घर भोजन के लिये वे चल पडे।

◇ ◇ ◇

चाँदनी रात मे कुटिया के चतुर्दिक का दृश्य जैसे सोकर जाग उठा! कुटिया के छोटे आँगन मे गेदा, गुलाब व विदेशी किस्म के रग-बिरगे फूल उस चाँदनी मे मुस्कराने लग रहे थे। और ब्यासा व पार्वती के सगम का दृश्य अपने-आप मे एक उपमा बन रहा था। ब्यासा की हरी-नीली धारा पर छलकती हुई चाँदनी मानो हरे-नीले पट पर पन्नियो की झिलमिलाती आभा-सी लग रही थी, और पार्वती की स्वच्छ धवल धारा तो मानो स्वय चाँदनी बन चुकी थी।

समुद्र तल से लगभग चार हजार फुट की ऊँचाई होने के बावजूद जेठ की गरमी कुछ उभर आई ही थी। पर वह गरमी भी प्रकृति की उस अजस्र मुस्कान की तरह ही माधुर्य से भरी थी। भोजन के बाद कमरे मे बद हो इस माधुर्य की उपेक्षा कर देना मूर्खता से रिक्त नही, इसे स्वामी सोमानद भी समझते थे, ब्रह्मचारी आदित्यनाथ भी। दोनो जने बाते करते लगभग आधा मील आगे बढ आये। बस्ती से बाहर आ चुके थे। पार्वती के मोड पर, एक चौरस चट्टान पर जरा अगल-बगल होकर बैठ गये। पार्वती की धारा यहाँ तेज थी और उस तेजी की आवाज उस निर्जन स्थल को भी सरव बना रही थी। किन्तु एक दूसरे की बात वहाँ सुन और समझ सकने मे कोई बाधा न थी।

स्वामी सोमानन्द जी इस बार स्वर मे गम्भीरता भरकर बोले—"ब्रह्मचारी जी! सरदार सुन्दरसिह के दिल-दिमाग पर आज वासना का वह नशा सवार है कि वह बिल्कुल अन्धा बन बरबादी के गड्ढे मे गिरने पर उतारू हो चला है। वासना जब नशा बन जाती है, दुनिया उसे 'प्रेम' या 'प्यार' कहकर पुकारती हे। सरदार सुन्दरसिह के प्रेम अथवा प्यार पर आज दुनिया हंस रही है। पर ओहदे का आदमी है, अत मुँह पर कहने का साहस किसी मे नही, पर पीछे-पीछे सभी हँसा करते है, उसे उल्लू बनाया करते हे। लेकिन कितना आश्चर्य कि स्वय इस वासना के नशे की ही सन्तान होकर भी इस दुनिया को अपनी हँसी पर जरा भी शरम नही आती, जरा भी सकोच नही होता। गहराई से देखने पर ससार के हर आचरण मे आप यही परस्पर विरोधिता पायेगे, ब्रह्मचारी जी!"

ब्रह्मचारी को लगा जैसे स्वामी जी ने बात पते की बताई। पर वह कुछ बोला नही।

"उफ्!" स्वामी जी अब स्वर मे एकाएक वेदना और पश्चात्ताप भरकर बोले—"यह नशा भी कैसी विचित्र वस्तु है? ध्वस और निर्माण दोनो की ही एक आश्चर्यकारी शक्ति छिपी है इसमे! नशे की चपेट मे पड-

कर जाने कितने बन चले, और कितने बरबाद भी हो गये। आज साठ के आस-पास पहुँचकर जब कभी अपने जीवन का लेखा-जोखा करता हूँ, उपलब्धि मे सिवा शून्य के कुछ हाथ नही आता ब्रह्मचारी जी ? मेरे यौवन के उस नशे ने बुढापे तक मे सिवा शून्य के कुछ दिया नही कि उस पर रचमात्र भी गर्व कर सकूँ, सतोष कर सकूँ—कहते-कहते उनका स्वर सहसा भारी हो गया। आँखे मूँदकर निराशा के उठे आवेग पर काबू पाने का प्रयत्न करते वे कुछ क्षण चुप रहे।

लेकिन ब्रह्मचारी का हृदय उनका सही तात्पर्य न समझते हुए भी उस व्यथा-विलोडित स्वर के आघात मे आन्दोलित हुए बिना न रहा। कुछ देर पहले के स्वामी सोमानन्द का इस क्षण के स्वामी सोमानन्द से कोई मेल न था। इस व्यथा-विजडित स्वर का उस हास्य-तरल स्वर से कोई साम्य न था। फिर भी सहानुभूति भरे नेत्रो मे उन्हे देखता वह चुप रहा।

"लेकिन जीवन का यह शून्य भी यदि विशाल होता तो उसमे मैं भी विलीन होकर भगवान् बुद्ध की ही तरह विशाल बन जाता। फिर तो जीवन मेरा शून्य नही रह जाता ब्रह्मचारी जी ?"—कहकर वे ठठाकर हँस भी पडे।

उनकी हँसी की प्रतिध्वनि पार्वती की सरवता मे विलीन हो गई, किन्तु ब्रह्मचारी का हृदय आश्चर्य से आलोडित हो उठा। कुछ क्षण पहले के स्वामी सोमानन्द से इस क्षण के सोमानन्द का पुन कोई साम्य उसे दिखाई न दिया। उनकी इस परस्पर विरोधिता पर वह सरस व्यग्य की बौछार छोडना चाहते हुए भी कुछ सोचकर चुप रह गया।

स्वामी सोमानन्द ने उस चाँदनी की आभा मे ही ब्रह्मचारी के चेहरे पर खिची रेखाएँ पढकर मुस्कराते हुए कहा—"क्यो ? आप भी मन-ही-मन मेरी विचित्रताओ पर हँस अवश्य रहे होगे, ब्रह्मचारी जी ? खैर, हँसना चाहिये ही ! मै स्वय जो हँसा करता हूँ अपनी मूर्खताओ की लबी तालिका पर ? जब असाफल्य और निराशा पश्चात्ताप के तीखे काँटो से

हृदय को कुरेदना शुरू करती है, तो पागल की तरह हँसकर-बोलकर ही तो अपनी वेदना पर मलहम-पट्टी किया करता हूँ ? इस समार मे, दूसरो से सहानुभूति की उमीद रखने जैसी भूल मामूली भूल नही, ब्रह्मचारी जी !"

ब्रह्मचारी का हृदय सहानुभूति के सबल तीरो से बिधकर व्यथा से एकाएक आन्दोलित हो उठा। उसे लगा कि सचमुच इस वृद्ध स्वामी के हृदय का रेशा-रेशा किसी गहरी व्यथा से गुँथा हुआ है, जिसे दिल से निकालना चाहते हुए भी वह निकाल नही पा रहा ! किसी शैतान के समक्ष कही गई व्यथा व्यग्य ही पैदा करती है। शैतानी महानुभूति के वे सारे शब्द हृदय के नही होते। पर सच्ची सहानुभूति मुखर नही होती ! अतः ब्रह्मचारी के हृदय से उठी सहानुभूति मुखर होने मे सकुचित हो रही थी। किन्तु मौन का महत्व भी हमेशा एक-सा नही होता।

"स्वामी जी !"—ब्रह्मचारी को बोलना ही पडा—"ससार मे सभी एक-से नही होते। यदि ससार से स्नेह, सहानुभूति व सद्भावना उठ जाय तो रहने के लिए रह ही क्या जाय यहाँ ? तब इन्सान, इन्सान की खाल मे शैतान के सिवा और रह क्या जायगा, स्वामी जी ?"

कहते-कहते उसके निज के जीवन की अनेक घटनाएँ उसे याद आ गई। उसके मन के सामने स्वामी सत्यकेतु, वीरेन्द्र और महेन्द्र भी आ गये। एक ओर स्वामी सत्यकेतु और वीरेन्द्र वर्मा तथा दूसरी ओर महेन्द्र ! इन्सान की खाल मे होते हुए भी परस्पर कितना अन्तर, कितनी दूरी थी दोनो ओर मे ! यदि उस समय महेन्द्र की निष्कपट सहानुभूति व सहृदयता उसे प्राप्त न हुई होती, मन मे उठा कडवापन क्रमशः जहर बनकर उसे पागल न बना देता ! क्योकि इन्सान की सच्ची सहानुभूति दूसरे पीडित इन्सान को हैवान बनने से बचाती है। महेन्द्र की सहानुभूति न पाकर ब्रह्मचारी आदित्य शायद मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य पुन प्राप्त न कर पाता, यह सोचते ही उसका हृदय जहाँ महेन्द्र के प्रति

वात्सल्य और स्नेह से भर उठा, वहाँ, स्वामी सोमानन्द के लिए सच्ची सहानुभूति के उच्छ्वासो से।

ब्रह्मचारी के शब्दो से स्वामी सोमानन्द का हृदय भी भर आया। सहृदय का सच्चा उद्गार दुखी हृदय को उच्छ्वसित किये बिना नही रहता।

पर सोमानन्द जी उच्छ्वास पर काबू पाकर फिर बोले—"जिस नशे के आवेग मे आज से हजारो वर्ष पहले राजकुमार सिद्धार्थ ने अपना घर-परिवार परित्यागा था ब्रह्मचारी जी, उस नशे के आवेग मे ही आज से लगभग तीस साल पहले मैं भी एक रात को, सब कुछ छोड-छाडकर महाप्रस्थान के पथ पर निकल पडा। लेकिन प्रेरणा का स्रोत समान न था। सिद्धार्थ को ससार से विरक्ति हुई थी। मृत, बीमार, वृद्ध और सन्यासी को देखकर, पर मै विरक्त बना एक प्रतिभावान् विद्वान् महापुरुष की लिखी किताबे पढकर ! उसके व्यक्तित्व के विज्ञापन पढकर।

"पुस्तको, पत्रको व समाचारपत्रो मे उस महापुरुष की महानता के विज्ञापन पढ-पढकर मै सचमुच अध्यात्म के नशे मे अवश होने लगा। यूनिवर्सिटी का 'ग्रेजुएट' ठहरा। और तिस पर नौजवान! और तिस पर दिन-रात कल्पना या महत्वाकाक्षा की दुनिया मे उडाने भरने वाला! फिर अग्रेजी मे शानदार तरीके से लिखी अध्यात्मवादी पुस्तक से मै कैसे अप्रभावित रह जाता? एक पढे-लिखे महत्वाकाक्षी नवयुवक के लिये यह कैसे सम्भव था कि वह मानव होकर 'अतिमानव' की स्थिति मे पहुँच पाने का लोभ सवरण कर पाता? सच कहता हूँ ब्रह्मचारी जी, कि गीता पर उस महापुरुष द्वारा लिखे निबन्ध पढकर तो मै वास्तव मे विमुग्ध बन गया और एक दिन फिर अपने भरे-पूरे परिवार का परित्याग कर चल पडा। 'अतिमानवता' की प्राप्ति के उद्देश्य से उस 'अतिमानव' के प्रख्यात आश्रम की ओर।

स्वामी जी कुछ एक क्षण चुप रहे और ब्रह्मचारी के हृदय मे उत्सुकता जाग उठी। क्योकि वह स्वय भी तो बहुत कुछ ऐसी ही भावनाओ और

उद्देश्यो से आन्दोलित होकर घर से निकल पडा था। फिर अपने ही जैसे किसी अन्य व्यक्ति के अनुभवो व विफलताओ की गाथा सुनने की उत्सुकता उसकी अस्वाभाविक न थी। और उस व्यक्ति के प्रति अब सहानुभूति का अभाव भी न था।

"ब्रह्मचारी जी!"—स्वामी जी मानो सुदूर अतीत की स्मृतियाँ बटोरकर फिर बोले—"उस आश्रम का वातावरण कम प्रभावकारी न था। आश्रम के उन शिक्षित युवक-युवतियो की साफ-सफाई और अनुशासन-बद्ध जीवन देख सहसा किसी के लिये भी प्रभावित हुए बिना रह जाना सम्भव न था। और आश्रम की मुख्य व्यवस्थापिका व सचालिका श्री माता जी की दक्षता व निपुणता भी सामान्य न थी। मेरे ऊपर नशा था आध्यात्मिक जगत् मे विचरने का, अतिमानवता प्राप्त करने के उज्ज्वल आदर्श का। सो, जिस प्रकार मै उस महापुरुष की कलम से प्रभावित हुआ था, उसी प्रकार उस आश्रम के जादू से मुग्ध होकर वहाँ रम गया! अपने तन-मन को उस महापुरुष के चरणो मे अर्पित कर दिया!"

फिर एकाएक कुछ यादकर ब्रह्मचारी आदित्य से प्रश्न किया उन्होने—"महेन्द्र के मुँह से सुना है कि आप कोई विद्यापीठ चलाना चाहते है कुल्लू मे? फिर तो मेरे जीवन के विद्यापीठ की कहानी आपके कम काम की न होगी शायद। मेरे साथ वक्त बरबाद कर शायद आप घाटे मे न रहेगे ब्रह्मचारी जी!"

और ब्रह्मचारी के कुछ उत्तर देने से पहले ही एक व्यक्ति बडबडाता हुआ वहाँ आ पहुँचा। खुली चाँदनी मे वह चेहरा स्पष्ट दिखाई दे रहा था। दोनो का ही ध्यान उधर बट चला। उम्र तीस-पैंतीस के बीच; कद मझोला, रग गोरा; और बादामी आँखो मे नशे की अरुणाई। सिर के बढे बालो पर भूरे रग की गोली ऊनी टोपी के अगली मुडेर से चिपकी हुई रगीन चिप्पी और मूछो के घनेपन मे छिपे पतले ओठ व गालो पर बढी हुई दाढी का बिखरा खुरदरापन, और वे धुले ऊनी कोट

के खुले पल्लो के बीच छाती की उभरी हुई हड्डियाँ, और जगह-जगह पैबद लगे बेधुले पायजामे की दुर्गन्ध मानो लुगडी[1] की उत्कट दुर्गन्ध मे दबी हुई। पहले तो उसने आँखे फाड-फाडकर उन दोनो को निहारा। फिर स्वामी सोमानद को पहचानते ही उसकी श्रद्धा मानो नशे मे उबल चली। हाथ की सोटी झट एक तरफ फेककर वह धरती मे झुक-झुककर अपनी श्रद्धा बिखेरता हुआ लडखडाती जबान मे बोलने भी लगा—"मैं बडा पापी, बडा पापी गुरु जी! मुझे अपना चेला· अपना चेलाऽऽऽ" कहते-कहते ही उसकी आवाज़ और भी लड़खडा चली। लेकिन फिर सम्हलकर वह पुन श्रद्धा-भक्ति जताने और माफी माँगने लगा—"मैऽऽ पापीऽऽ! बडा पापी गुरु जीऽऽऽ। मुझे उस गाँव मे पहुँचा दो, पहुँचा दो गुरु जीऽऽऽ!···मैं बडा पापी गुरु जीऽऽऽ!"

"यह देखिये, ब्रह्मचारी जी!"—स्वामी सोमानद जी हँसकर उस शराबी की ओर बढते हुए बोले—"नशे का एक और तमाशा!" फिर उस शराबी की बाँह पकड फटकारते हुए जोर से—"क्यो रे! तैंने शराब पी है रे?"

लेकिन शराबी ने झट प्रतिवाद किया—"ना! ना! ना गुरुजी! ना!"

"ना-ना के बच्चे!" स्वामी जी ने फिर डाँटा उसे—"तो बडबड क्यो कर रहा है? ऐसी हालत क्यो है तेरी?"

और फिर शराबी झट उनके पैर पकड अपराध स्वीकारते हुए माफी भी माँगने लगा—"अम पापी लोग, पापी लोग गुरु जीऽऽऽ! माफ कर दो! कुसूर माफ कर दो!· ·उस गाँव मे पहुँचा दोऽऽ····· गुरु जीऽऽऽ!

गुरु जी के दिल मे अब दया भला क्यो न आती? आदित्यनाथ से हँसते हुए बोले—"अब गुस्सा या नफरत से काम न चलेगा ब्रह्मचारी

१. देशी शराब।

जी ! आखिर इस पिशाच से पिंड तो छुडाना ही होगा ? आखिर मै भी अपने नशे की ही तो कहानी सुना रहा था, अभी नशे मे आकर जीवन भर के लिए गदहा बन गया। अत इन गदहो से नफरत मै नही करता। सहानुभूति के बिना जीना अब आसान नही रहा ब्रह्मचारी जी ! आइये जरा इस गदहे को उस गाँव मे पहुँचा आये। फिर आप से अपने गदहे-पन की सारी कहानी कहूँगा, सुनाऊँगा।"

ब्रह्मचारी भी हँसकर आगे आ गया। दोनो ने दोनो बाहे पकडकर शराबी को उठा लिया। लेकिन शराबी बार-बार प्रतिवाद करने लगा—"मैं गदहा नही ! गदहा नही गुरु जीSS !" फिर किसी अज्ञात शत्रु के उद्देश्य से मुँह अलगा-अलगाकर—"गदहा वो ! साला वो गदहा ! गदहा वो गुरु जी ! वो साला गदहाSSS !"—कहकर मानो गुस्से मे उछलने के प्रयास मे उनके हाथो से छूटकर वह नीचे लुढक भी पडा।

"यही ससार का हाल है, ब्रह्मचारी जी !"—कहकर स्वामी जी जोर से हँस पडे। किन्तु दूसरे ही क्षण मानो गुस्से मे आकर उस शराबी की बाँह झकझोर उसके मुँह पर एक थप्पड रसीद करते हुए—"अबे ! गदहे के बच्चे। उठ, उठ ! चल ! घर को चल !"—कहकर ब्रह्मचारी की मदद से उसे धरती से उठाकर घसीटते हुए गाँव की ओर ले चले।

"यही यहाँ के औसत किसानो का हाल है, ब्रह्मचारी जी !"—चलते-चलते ही स्वामी जी बोले—"मूर्ख ने कही पी ली होगी लुगटी कसकर, और अब होश-हवाश खोकर" । फिर क्यो न इन गदहो को कोई आसानी से गदहा बना ले ? अज्ञान का अभिशाप और इन बुरी लतो का अभिशाप ! और ठगो और लुटेरो के पैरो तले पिसते रहने का अभिशाप ! एक अभिशाप हो तब न ? विद्यापीठ चलाने से पहले जरा इन सारे अभिशापो पर विचार कर लेना ब्रह्मचारी जी !"—और कहकर वे फिर हँस पडे।

ब्रह्मचारी लेकिन हँसा नही। स्वामी जी की मदद से चुपचाप उस

शराबी को घसीटते हुए बस्ती की ओर चल पडा।

◇ ◇ ◇

उस शराबी को उसके घर छोडकर स्वामी सोमानद जी, ब्रह्मचारी आदित्य के साथ अपनी कुटिया मे वापस आ गये। गाँव के लोग अब तक निद्रा की मीठी आँचल मे समा चुके थे। केवल कल-कल करती पार्वती ही उस निस्तब्ध रजनी मे अपने अथक अखड और शाश्वत् जागरण के गान गाये जा रही थी।

स्वामी सोमानद ने अपने जीवन के पन्ने खोलने शुरू किये। ब्रह्मचारी आदित्य की सहृदयता पर विश्वास उनका जम चुका था। और सबसे अधिक अपनी जीवन-गाथा कह सुनाने का स्वय उन पर नशा सवार हो चुका था। जीवन के बहुतेरे पन्ने सिर्फ पलटते हुए ही वे आगे बढते जा रहे थे। किसी-किसी पन्ने को रुककर वे पढ सुनाते और फिर आगे बढ जाते। क्योकि समय स्वल्प था। कुछ घटो मे ही वह सारी पुस्तक पढ डालनी थी।

ब्रह्मचारी आदित्य खूब आकाक्षा व सहानुभूति से उन्हे सुने जा रहा था। उसे लग रहा था मानो किसी सरस व रोचक उपन्यास की घटनाओ से वह स्वय गुजर रहा हो। मानो वे सारी घटनाएँ उसके निज के जीवन की घटनाएँ हो! स्वामी सोमानद के जीवन के पूर्वाश का साराश नीचे लिखे अनुसार है —

"बगाल के एक सम्पन्न व शिक्षित ब्राह्मण-परिवार मे स्वामी सोमानद जी शिवनाथ बनर्जी के नाम से उत्पन्न हुए। बचपन लाड-प्यार मे बीता, और पिता श्री सतोष बनर्जी ने अपने अन्य तीन पुत्रो की तरह शिवनाथ की शिक्षा-दीक्षा मे भी अपनी ओर से कोई त्रुटि न रखी। पर शिवनाथ कुछ कम मनचला न था। कृत्तिवासी रामायण व काशीदासी महाभारत का अध्ययन वह पन्द्रह-सोलह की उम्र मे ही कर चुका था। गीता और योग वाशिष्ठ का बगला मे अनुवाद भी पढ चुका था। अतः आदर्शवादी होने के साथ-साथ मन उसका अध्यात्मवाद की ओर भी

अग्रसर हो चला। कभी वह राम-लक्ष्मण के भ्रातृत्व के आदर्श से उत्फुल्ल होता, और कभी भीष्म-कर्ण के साथ पाडवो की वीरता व भ्रातृत्व के आदर्श मे। योगिराज परमपुरुष श्रीकृष्ण के आदेश व उपदेश भी उसके दिल-दिमाग को परिचालित किये बिना न रह पाते। इनके अतिरिक्त जादू-टोने की अनेक पोथियो के प्रभाव भी जब-तब उसके मन को आन्दोलित करते। फलस्वरूप वह अनेक बार चुपके से कालेज की पढाई से पीछा छुडाकर तीर्थों को चल देता, कुछ दिन साधु-सतो की सगति कर फिर खाली हाथ घर लोट आता। लेकिन फिर भी उसकी धार्मिक भूख मिट नही पाती, मिटने के बजाय बढ ही जाती। जिस प्रकार अक्खड व्यक्ति ठोकरे खाकर भी झुकने के बजाय तनता ही जाता है, शिवनाथ का आध्यात्मिक मन भी निराश होकर उस नशे मे और भी वेगवान बन जाता। जिस प्रकार कोई चतुर सुन्दरी अपने पीछे पडे किसी प्रेमी को अनेक नाच नचाती, अपने से दूर रखती हुई भी उसे अपनी ओर ही खीचे जाती है, वही हाल अब शिवनाथ बनर्जी का अध्यात्म-सुन्दरी के प्रेम-पाश मे पडकर हो चुका था।

लेकिन पिता शिवनाथ की इस अवारागर्दी और पागलपन से काफी परेशान थे। और माता भी कम दुखी न थी। शिवनाथ के जीवन को नियमबद्ध करने की उन्हे चिन्ता सवार हुई। पैरो मे बेडियाँ डालने के प्रयत्न आरम्भ हुए। धनी घर के लडको के लिए बेडियो की कमी क्या भला? और तिस पर पढा-लिखा भी। अवारागर्दी के बावजूद असाधारण प्रतिभा के कारण जैसे-तैसे वह बी० ए० पास कर ही चुका था। और स्नेहमयी माँ के सशपथ आग्रह पर उस बेडी को पहनने के लिये शिवनाथ को बाध्य होना ही पडा। वह बाकायदा गृहस्थ-धर्म मे प्रविष्ट हुआ। लेकिन फिर भी चित्त मे स्थिरता न आ सकी। और चित्त की स्थिरता के अभाव मे जीवन भी स्थिर न बन सका। गोद मे एक सुन्दर पुत्र को पाकर भी वह माया मे लिप्त न हो सका। और अन्त मे राजकुमार सिद्धार्थ की ही तरह वह एक रात पुत्र व पत्नी को सोते

छोडकर सदा के लिये अनन्त जीवन की खोज मे निकल पडा। अनन्त की ओर चल पडा।"

यह सब सुनाकर स्वामी सोमानन्द जी बोले—"उस आश्रम मे मेरा जीवन बडे मजे मे व्यतीत होने लगा, ब्रह्मचारी जी! चूँकि आश्रम का उद्देश्य और आदर्श अति महान था। विशाल था, अत उसके बोल-बतियान की भाषा भी अति महान थी। अर्थात् वह आश्रम अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति उपलब्ध कर चुका था, अत उसका सारा कार्य 'अग्रेजी' भाषा मे ही हुआ करता। जिसका परिणाम यह हुआ कि आश्रम मे उन लोगो के लिये स्थान न था जो अग्रेजी के जानकार न थे। देशी-विदेशी अनेक नवयुवक और नवयुवतियो से आश्रम का हर कोना सजीव रहता। हर व्यक्ति के मन मे ऊपर उठने की अभिलाषा गूँजा करती। आखिर अपने जीवन के उन्नयन के निमित्त ही तो वे घर-बार छोड़कर भिखारी बने थे? उनमे से अधिकाश उच्च घराने के थे, मध्यवित्त भी थे और कुछ निम्नमध्यवित्त भी।

"खैर! अच्छी अग्रेजी लिख और बोल सकने के कारण आश्रम से निकलने वाली पत्रिका के सम्पादक-मडल मे मुझे भी स्थान मिला। मैने बडी श्रद्धा और कृतज्ञता से माता जी के उस प्रसाद को सिर-आँखो लिया। श्रद्धा और विश्वास के सहारे मेरा मन और मस्तिष्क काफी गतिशील बन चला और मेरी कलम भी उस प्रभाव से अछूती न रह सकी।

"आश्रमवासियो के लिये 'श्रद्धा और विश्वास का आदर्श' एक कडा अनुशासन बन चुका था। क्योकि हर आश्रमी के मन मे यह बात जमा दी गई थी कि बिना श्रद्धा-विश्वास के अति-जीवन की उपलब्धि कतई सम्भव नही। सो, हर आश्रमवासी हर शाम-सवेरे अपने मन-मस्तिष्क को एक केन्द्रीय शक्ति मे समर्पित करने का अभ्यास करता, प्रयत्न करता! और वह केन्द्रीय शक्ति आश्रम की उन माताजी और पिताजी के अतिरिक्त अन्य कुछ न थी। और इसलिये ही आश्रम की माताजी को 'जगत्-माता' कहा जाता, और पिता जी को 'जगत्-पिता'।

जगत्-पिताको 'शिव' और जगन्माता को 'शिवा' रूप मे स्वीकार करने और देखने की वहाँ सबको शिक्षा दी जाती। ट्रेनिग दी जाती। आश्रम-जीवन का यह भी एक परम अनुशासन था और बिना इस अनुशासन मे अनुशिष्ट हुए शिव और शिवा की प्रसन्नता और विश्वास प्राप्त करना आसान न था। और यह सब कुछ इस प्रकार किया जाता कि कुछ दिन बाद यह अनुशासन निरा अनुशासन न रहकर विश्वास बन जाता! स्वभाव बन जाता!

स्वामी सोमानद जी क्षण भर चुप रहे! आँखे मूँदे मानो स्मृतियो को बटोरते हुए फिर बोले—"लेकिन हर दिल-दिमाग को अनुशासन और विश्वास की बेडियो मे नही बाँधा जा सकता। प्रबोध के दिल-दिमाग ने आखिर एक दिन इन बेडियो के विरुद्ध खुला विद्रोह कर दिया। प्रबोध भी एक बगाली युवक था, जो केवल सोलह के स्वल्प वय मे ही क्रातिकारी दल मे शामिल हुआ था। लेकिन बाद मे जब मन मे अध्यात्म की भूख जग पडी, वह इस आश्रम मे शामिल होने का लोभ सवरण न कर सका। लेकिन कुछ मास बाद ही जब उसके तीखे नेत्रो से आश्रम का रहस्य छिपा न रह सका, उसका जन्मजात विद्रोही मन वहाँ रम न सका! अनुशासन मे रह न सका! वह एक दिन आश्रम-वासियो की भरी गोष्ठी मे ही आश्रम का भडाफोड करता वहाँ से चम्पत हो चला!

"इस बम के धडाके की उमीद किसी को न थी। इस अचानक के धडाके से आश्रम मे खलबली मच गई! लेकिन माताजी भी कम कुशल न थी। बडी चतुराई से, युक्तियो, तर्को व उदाहरणो से सब के मन मे यह विश्वास उन्होने जमा ही दिया कि प्रबोधकुमार सरकारी जासूस था, और चूँकि सरकार आश्रम के आदर्श और उद्देश्य से भयभीत है, अत हमे आश्रम के जीवन मे तोड-फोड करने वाले इन जासूसो व बदमाशो से सावधान रहना चाहिये, पुत्रो! और आश्रम के पुत्रो मे उस जासूस के प्रति घृणा और क्रोध की लहर फैलते देर न लगी। गनीमत थी कि प्रबोध उनकी पकड से काफी दूर निकल चुका था!"

स्वामी जी ने गला खखासकर फिर आगे कहना शुरू किया—"लेकिन ब्रह्मचारी जी, प्रबोध जाने को तो गया, पर मेरे मन मे आशका और सदेह के बीज भी बिखेरता गया। अब तक मन की आँखो पर श्रद्धा-विश्वास का पर्दा पडा हुआ था, किन्तु प्रबोध के विद्रोह की कैंची ने कतरकर जब उस पर्दे मे छेद कर दिया, तो उस छिद्र से झाँक-झाँककर मै धीरे-धीरे सब कुछ देखने लगा। जगत्-पिता विशेष अवसरो पर ही अपने पुत्रो को दर्शन देते। अब यह आडम्बर मुझे कतई नापसन्द आने लगा। और जब मै जगत्-पिता के कभी दर्शन करता, उनके चेहरे को अक्सर रुग्ण और कातिहीन पाकर मै असमजस मे पड जाता। मै सोचने पर मजबूर हो जाता कि जो व्यक्ति स्वय रुग्ण और कातिहीन है, वह दूसरे के जीवन को भला क्या स्वस्थ और कातिवान बना सकेगा? केवल एकात सेवन के द्वारा ही तो कोई महान् नही बन जाता? अपनी सुपुष्ट लेखनी से, आकर्षक ढग से किसी वस्तु की व्याख्या और विश्लेषण करके ही तो 'अतिमानव' नही वन जाता?

"खैर! अब तो दूसरी बाते भी दिल को खटकने लगी जिन पर अब तक सोचा भी न था। आश्रम का एक यह भी नियम था कि किसी भी आश्रमवासी को निर्जा सम्पत्ति रखने का अधिकार न होगा। यदि उसके पास कोई निजी सम्पत्ति है तो अपने निजी जीवन की तरह उस निजी सम्पत्ति को भी जगत्-पिता और जगन्माता के चरणो मे उसे अर्पित करना होगा। सो, जिन धनवानो ने जितनी मात्रा मे सम्पत्ति अर्पित की थी, उन्हे आदर-सम्मान और माता-पिता का कृपा-प्रसाद भी उस मात्रा के अनुसार ही प्राप्त होता। और आश्रम पर उनका प्रभाव भी उस मात्रा के अनुसार ही था। सो, यह सब देख-दाखकर मेरे मन मे भी विद्रोह की आग, धीरे-धीरे ही सही, सुलग ही चली।"

कहते-कहते इस समय भी अतीत का वह विद्रोह-भाव क्षणभर के लिए आग बनकर उनके चेहरे पर चमक उठा।

बोले—"लेकिन कुछ मास बाद ही वहाँ एक और घटना घटी जिसमे

मै पूरा विद्रोही बनकर प्रकट हुआ । फलस्वरूप मुझे भी उसी प्रकार उस आश्रम से निर्वासित होना पडा ब्रह्मचारी जी, जिस प्रकार सुभाप वसु को गाँधी जी से विद्रोह करने के अपराध मे पहले कांग्रेस से, और बाद मे स्वदेश मे निर्वासित होकर विदेश मे 'आजाद-हिंद फौज' बनानी पडी ।" —कहकर इस बार स्वामी जी शिशु की तरह खिलखिलाकर हँस पडे ।

हँसी से हृदय स्वच्छ हो जाने के बाद वे फिर बोले—"घटना यो थी, ब्रह्मचारी जी ! आश्रम मे स्त्री-पुरुषो की कमी न थी । घी के घडे के निकट आग रखकर यह उमीद असगत ही तो है कि न घी पिघले और न अग्नि प्रज्वलित हो ? जहाँ अनेक शिव और अनेक शिवाएँ थी, वहाँ परस्पर आकर्षण अस्वाभाविक न था । और जब आश्रम के परम शिव और परम शिवा के सम्बन्ध का रहस्य भी धीरे-धीरे आश्रमवासियो के मन मे प्रकट होने लगा, तो उनके सयम के बाँध मे भी दरार पडना शुरू हो गया । गीता मे भगवान कृष्ण ने बता ही दिया है कि 'यद् यदा-चरति श्रेष्ठ तत्तदेवेतरोजन' ।[1] बात पते की है, पर खेद कि दुनिया उपदेश ही देना जानती है । उपदेश देती आई है । वह अपने पर सयम का अंकुश रखे बिना ही दूसरो को सयम का उपदेश ही देती है, आदेश ही देती है । और हम बूढे तो इस मर्ज के बुरी तरह शिकार हैं, ब्रह्मचारी जी !" —कहकर स्वामी जी पुन. ठठाकर हँस पडे । और उनके साथ ब्रह्मचारी भी हँसे बिना न रहा !

स्वामी जी ने कहा—"हाँ तो, उस आश्रम मे एक युवती थी—बडी मुखर, बडी वाचाल और बडी सुन्दर भी । जगत्-पिता की भी उस पर विशेष कृपा थी । पर जगन्माता उससे मन-ही-मन परम अप्रसन्न थी । किन्तु फिर भी उस सुन्दरी के प्रभाव और महत्व को समझकर ऊपर से प्रसन्नता का नाट्य किये बिना कैसे रह पाती ? लेकिन जहाँ खुला या छिपा विरोध है वहाँ सघर्ष भी अवश्यभावी है । एक दिन जगन्माता

---

१. बडों के आचरण की नकल छोटे भी करते हैं ।

अपने-आप पर संयम न रख, उस सुन्दरी से झगड ही पडी। सुन्दरी कोई ऐरी-गैरी नही कि चुपचाप बर्दाश्त कर जाती। सो, वह भी तनकर खडी हो गई। फिर तो वह थूकम-फजीता हुआ कि क्या बताऊँ आपसे ब्रह्मचारी जी! अनुभव के विद्यापीठ मे यह पढ चुका हूँ कि (परिस्थिति के तूफान से आडम्बर का आवरण जब उडकर बडप्पन को नग्न कर देता है, देखते ही बनता है वह नग्न रूप! देखते ही बनता है वह बडप्पन!)

"आश्रम के एक सुन्दर नवयुवक से उस सुन्दरी के अनुचित सम्बन्ध को लेकर ही जगन्माता ने उसे परास्त करने का प्रयत्न किया, पर उनका अस्त्र उन्ही को परास्त कर गया। और चूँकि आश्रम मे श्रीमद्भगवद् गीता का माहात्म्य सबसे अधिक था, अतः वाचाल सुन्दरी ने गीता का वही वाक्य जगन्माता के समक्ष पेश कर दिया जिसे मै आपके सामने अभी पेश कर चुका हूँ। जगन्माता ने एकान्त मे बुलाकर ही उससे सब कुछ कहा था, पर उस वाचाल सुन्दरी ने इसे निरा एकात न रहने दिया। आश्रम-वासियो के समक्ष सारा भंडा फोडती हुई ही वह अपने प्रेमी को लेकर उस आश्रम से निकल चली। और बाद में मै निकाला गया इस अपराध मे कि उस झगडे मे उस सुन्दरी का पक्ष लिये बिना मुझसे रहा न गया।"

कहकर स्वामी सोमानन्द लघुशका के लिये कुटिया से बाहर निकल गये। फिर वापस कमरे मे आकर बोले—"अब रात काफी बीत चली ब्रह्मचारी जी। अब सो जाना ही ठीक रहेगा। लेकिन अपने जीवन के विद्यापीठ की पूरी कथा सुनाये बिना यहाँ से टलने न दूँगा आपको। एक-दो दिन यही सही। और सलाह यह दूँगा कि यहाँ से वापस कुल्लू जाने के बजाय कुल्लू-उपत्यका के इस ओर के क्षेत्रो की भी यात्रा आप कर ले तो ठीक! क्योकि आप यहाँ विद्यापीठ चालू करना चाहते है न? अच्छा, तो अब माँ निद्रा की गोद मे!"—कहकर ब्रह्मचारी के लिये

सोने की व्यवस्था कर वे स्वय भी नीचे ही एक चटाई तकिये के सहारे लेट गये।

◇　　　◇　　　◇

दूसरे दिन सवेरे आवश्यक नित्य-क्रिया के बाद ब्रह्मचारी को साथ लिए स्वामी सोमानद जी चल पडे जगल की ओर। क्योकि कुटिया मे निराल्पिन के भग होने की सभावना थी। और उन्हे उत्सुकता थी अकेले मे ही अपनी कथा कह सुनाने की। एक बार किसी छिडे प्रसग को पूरा किये विना रह जाना शायद कोई भी पसद नही करता। एक सहृदय श्रोता के समक्ष जीवन मे पहली बार जीवन-प्रसग छेडकर और पूरा किए विरत हो जाना स्वामी सोमानद जी के लिये स्वास्थ्यकर कतई न था।

लगभग मील भर आगे पार्वती के किनारे एक सुन्दर-सुरम्य झाडी थी। स्वामी सोमानद जी अक्सर उस झाडी मे बैठकर पार्वती के सरल सगीत मे अपने हृदय के शून्य सगीत को मिलाकर समाधिस्थ हो जाते। अक्सर जीवन के पन्ने पढ-पढकर शायद दिल के फफोले भी फोडा करते। सो, आज उन्होने उसी झाडी मे बैठकर कहानी का अगला अश आरम्भ किया—

"आश्रम से निकाले जाने के बाद मेरे मन की स्थिति अत्यन्त कडवी हो चली, ब्रह्मचारी जी! लगा कि सारा ससार मिथ्या के आधार पर टिका हुआ है। मिथ्या की गाडी पर ही समाज और ससार का सारा व्यवहार चल रहा है! जो जितना महान् वह उतना ही छल, प्रपच, और धोखे से भरा हुआ! मुझे क्रोध आ रहा था अग्रेजी शिक्षा प्राप्त उन असख्य मूर्खो पर जो शिक्षित व समझदार होने का दभ करते हुए भी इन धार्मिक दभियो के प्रपच का इसी प्रकार शिकार बन जाते है। किन्तु दूसरे ही क्षण जब अपनी मूर्खता पर गौर किया मैने, वह सारा क्रोध सहानुभूति मे परिणत हो गया! मुझमे भी तो शिक्षित व समझदार

होने का कम दभ न था। फिर मै ही कैसे आ फँसा पाखड के इस जाल मे ?

"लेकिन पुन. कुछ सोचकर उस सहानुभूति के क्रोध मे बदलते देर न लगी। आखिर क्यो ये मूर्ख आश्रम के रहस्य को समझ-बूझकर भी इस पाखड के विरुद्ध विद्रोह नही कर पाते ? इस पाखड का भडाफोड नही कर देते ? लेकिन फिर मैने सोचा कि विद्रोह करने की क्षमता हर व्यक्ति मे नही होती। पाखड का भडाफोड करने का साहस हर व्यक्ति मे नही होता। अन्यथा ससार का यह सारा दभ और आडबर चकनाचूर न हो जाता ? संसार से शैतानो का नामोनिशान मिट नही जाता ? मै अपने अनुभव के आधार पर कहता हूँ ब्रह्मचारी जी, कि आडबर मे इन्सानियत कभी रह नही सकती ! कभी रह नही सकती !! चाहे वह आडबर धर्म का हो, राज्य अथवा राजनीति का हो, अथवा इन्सानियत के प्रचार के नाम पर हो, पर आडबर मे इन्सानियत नही रहती ! नही रहती !!"

स्वामी सोमानद जी के मन मे इस समय स्थिति और स्मृति के सहारे सुदूर अतीत का वह क्रोध पुन प्रकट हो पडा था। कुछ क्षण के लिये उनका हृदय पुन कटुता से भर उठा था। लेकिन उस क्रोध के शात होते ही वे एकाएक पुन व्यथा भरे स्वर मे बोले—"सामान्य मनुष्य परिस्थितियो का दास रहता आया है। चतुर-चालाक लोग परिस्थितियो का जाल बुनकर मूर्खो व निरीहो का शिकार किया करते है। इस शिकार मे उन्हे कब आनन्द नही आया करता, अपने जाल मे इन्सान को फँसे देख शैतान का दिल उसी प्रकार उछल उठता है जिस प्रकार मछुए का दिल जाल मे फँसे माछ को देखकर। और जब एक बार जाल मे माछ आ फँसी, फिर बात क्या ? यदि जाल मे से एक-दो उछलकर भाग भी निकली तो परवाह क्या ! जाल मे कुछ छेद भी हो गया तो हरज क्या ? बुद्धि व प्रतिभा की डोर रहते न जाल के बुनते देर, न मरम्मत होते देर, और न नई-नई मछलियो के फँसते देर ! और इस

प्रकार न शैतान के परिवार की वृद्धि होते देर !

मनुष्य का यह भी विचित्र स्वभाव है ब्रह्मचारी जी, कि यदि एक बार नाक कट गई, यदि नाक-कटो का गिरोह कायम हो गया, फिर तो उस नाक-कटाई की तारीफ किये बिना कोई चारा ही नही रह जाता । आश्रम ने घरबार और धन-सपत्ति सबसे उनका रिश्ता तुडा ही दिया था । और मनुष्य अपनी गलती महसूस करके भी खुले-आम उसे स्वीकार करने का साहस नही कर पाता । और अपने घर-परिवार के समक्ष तो और भी नही । अपनी कटी नाक लेकर वापस घर जाने का साहस उनमे न था । फिर तो नकटेपन की तारीफ मे ही उन्हे भलाई दीख रही थी । और हरज क्या था, जब जीवन के कठोर संघर्षो मे पडे बिना ही जीवन की समस्याएँ आसानी से सुलझाने की सुविधाएँ वहाँ मौजूद थी ? सुन्दर भोजन, सुन्दर वसन, सुन्दर आवास और सबसे अधिक वह वस्तु थी, जिसे फ्रायड आदि यौन-विज्ञानियो ने मनुष्य के समस्त छल-छदो व प्रवृत्तियो का मुख्य आधार माना है ब्रह्मचारी जी !" —कहकर वे जोर से खिलखिलाकर हँस भी पडे ।

ब्रह्मचारी भी जोर से हस पडा । और उन दोनो की सम्मिलित हंसी की ध्वनि उस झाडी को गुजाती हुई उसके बगल के रास्ते से जा रहे एक राही को भी वहाँ खीच ले आई । राही कुल्लू का ही एक मामूली किसान था । पहले वहाँ बैठे उन दोनो सतो को उसने झुककर नमस्कार किया । फिर शायद राह की थकावट और प्यास उसे याद आई । पार्वती के पानी से प्यास बुझाकर हाथ की सोटी जमीन पर रख वह झट उन दोनो के सामने डटकर बैठ गया । लेकिन फिर भी उसके बैठने मे विनम्रता थी । और उसके युवा चेहरे पर चिता और परेशानी की रेखाएँ इस समय उसकी उम्र कुछ अधिक प्रतीत करा रही थी ।

ब्रह्मचारी और स्वामी जी अपने खास प्रवाह मे थे । उस प्रवाह मे यह आकस्मिक व्याघात उन्हे अच्छा न लगा । परतु उसके परेशान चेहरे को देख उसे दुत्कारना भी उन्हे अच्छा न लगा ।

"तेरा क्या हाल है भाई ?" —स्वामी जी ने उससे पूछा ।

और उत्तर मे उसकी आँखो से आँसुओ के कुछ बूँद लुढक पडे । अपने कोट की मैली आस्तीन मे आँखे पोछकर व्यथा-विजडित स्वर मे वह बोला—"मेरी लाडी[1] को एक बदमाश भगा ले गया, गुरु जी ! इस लाडी पर मैने आठ सौ टिक्की[2] हरजा[3] भरा । मेरा सारा खरचा बरबाद गया गुरु जी ! मेरा सारा खेत रहेन चढ गया ।" —और कहकर जार-बेजार होकर रोने भी लगा ।

रोते-रोते ही फिर बोला—"आप महात्मा हो ! फकीर हो ! कुछ उपाय करो, गुरु जी ! मेरी लाडी कैसे मिलेगी मेरे को सो बताओ गुरु जी ? कुछ जोग-जतर करो गुरु जी, कि उस बदमाश का पता लग जावे । अगर लाडी न लौटावे तो मेरा हरजा ही भर देवे !"

उसकी इस परेशानी और आँसुओ पर उन्हे दर्द आने के बजाय हँसी आ गई । हाथ के इशारे से उसे शान्त रहने का आदेश दे मुस्कराते हुए वे ब्रह्मचारी से बोले—"है न यौन-विज्ञानियो का सिद्धान्त पक्का ब्रह्मचारी जी ? एक-एक कर कैसे प्रमाण जुटा दिये भगवान ने इस सिद्धान्त के समर्थन मे । वह पढा-लिखा ओहदेदार नायब तहसीलदार और यह अनपढ गरीब किसान, है न एक ही मर्ज के बीमार ब्रह्मचारी जी और आपको जानकर आश्चर्य न होना चाहिये कि उस आश्रम के जगत्-पिता भी इस मर्ज के मामूली बीमार न थे । आखिर वह जगन्माता भी किसी अन्य की पत्नी रह चुकी थी, और जगत्-पिता ने अपने एक साथी-सहयोगी की उस पत्नी को उडाकर ही उसे 'जगन्माता' के पद पर अधिष्ठित किया था ।" —कहते-कहते वे खूब जोर से जी-भरकर हँसे ।

---

१. पत्नी

२. रुपया

३. हरजाना, जो किसी की औरत भगा ले आने पर उसे देना पड़ता है ।

ब्रह्मचारी भी जोर से हँस पड़ा। पर वह अनपढ किसान हक्का-बक्का-सा कुछ लज्जित-सा उन्हे देखता बैठा रहा।

"अच्छा, पगले !" —स्वामी सोमानद ने उस किसान को हसते हुए ही आश्वासन और आदेश दिया—"तू चिन्ता न कर। अगर लाडी न भी मिले, हरजा तेरा जरूर मिल जायेगा। अभी मै जरूरी काम पर हूँ यहाँ। किसी और दिन मेरे पास तू आ तो तेरे काम पर विचार मैं करूँगा। अभी जा तू ! चिन्ता न कर ! जब हरजाना मिल जाय, तो तू भी उस रुपये से किसी दूसरे की लाडी भगा ले आकर फिर हरजा भर दे। समझा ? "अच्छा, अच्छा ! अभी जा यहा से !"

वह किसान जरा मन मारे ही वहाँ से विदा हो गया। वह एक दूर के गॉव से स्वामी जी की खोज मे आया था ज्योतिष कराने। कुटिया मे न पाकर किसी दूसरे के बताये सकेत पर यहाँ पहुँचा था, पर स्वामी जी के रुख से कुछ आशावान होते हुए भी वह खुश न हुआ। अपने गाँव की ओर वापस चल पडा। और स्वामी व ब्रह्मचारी पुन उस जीवन-पुराण से उलझ गये।

"ब्रह्मचारी जी !" —स्वामी जी ने एक सरस मजाक छेडा—"अब तो पा लिये न आपने, अपने ब्रह्मचर्य के विरुद्ध इतने जबर्दस्त प्रमाण ? तो, मेरी तो सलाह यह है कि यदि जवानी के रहते ही यह ब्रह्मचर्य का व्रत पिघल जाय तो ठीक। अन्यथा बुढापे मे पिघलने पर यह बडा अनर्थ कर छोडता है ब्रह्मचारी जी !" —और कहकर फिर वे जोर से हँस पडे।

ब्रह्मचारी भी क्षणभर अप्रतिभ रहकर, फिर जोर से हँस पडा।

"खैर ! कोई बात नही।" —स्वामी जी ने फिर कहा—"ससार के अजीब सग्रहालय मे ब्रह्मचारियो की भी जरूरत है ही ब्रह्मचारी जी ! अच्छा तो अब हम मुख्य विषय पर आये।"

स्वामी जी क्षण भर चुप रहकर मानो पुन स्मृतियो को बटोरने लगे। फिर बोले—"आश्रम से निकलकर पुन. घर वापस जाने का

साहस मुझे न हुआ। क्योंकि नाक बड़ी गहरी कट चुकी थी।" फिर एकाएक कुछ याद कर—"मै मामूली पापी नही हूँ ब्रह्मचारी जी ! भाइयो मे सबसे छोटा होने के कारण मै माँ की आँखो का तारा था, पर माँ, जब उस कुपूत के वियोग मे तडप-तड़पकर ससार से कूच कर गई, और यह जानकर भी जब वह कुपूत—"

वाक्य पूरा भी न कर सके ! हृदय मे जमी हुई ग्लानि सहसा आँसू बनकर गले मे आ पहुँची। आँसुओ को सम्हालने का प्रयत्न करते-करते भी सम्हाल न सके। उठकर चले गये पार्वती के किनारे। अपनी अलफी से आँखे ढक कुछ देर वहाँ बैठे रहे। फिर उस शीतल जल से आँखे पोछ, कुल्ला करके गला साफकर उस झाडी के अन्दर आ पहुँचे, जहाँ ब्रह्मचारी आदित्यनाथ के नेत्र भी सहानुभूति मे गीले बन चुके थे।

स्वामी जी ने गला खखासकर फिर कहना शुरू किया—"साधु भी आखिर इन्सान ही होता है। साधु-जीवन की सबसे बडी विडबना यह है कि वह अपने को इतर इन्सानो से पृथक् समझता है, पूज्य समझता है। खैर। अपनी घुमक्कडी व साधु-जीवन के इस लम्बे अरसे मे मुझे साधुओ मे केवल शैतान ही नही, इन्सान भी मिले जिनमे न सहृदयता का अभाव देखा, न छल-कपट का कोई प्रपच ही। पर उनमे इन्सानी कमजोरियाँ भी देखी, पर वे कमजोरियाँ इन्सानी होने के नाते क्षम्य थी। लेकिन वे ही कमजोरिया महानता के झूठे आवरण मे छिपाई जाकर शैतानी बने बिना नही रह पाती है। और तब वे न सह्य रह जाती है, न क्षम्य ही। पर खेद कि वे सह्य भी होती आई है और क्षम्य भी। क्योकि जनता की आँखो पर, दिल-दिमाग पर चालाकी का डाला गया पर्दा न उन्हे देखने देता है, न समझने देता है !"

इसके बाद स्वामी सोमानन्द जी बहुत कुछ सुना गये जिनमे कई बाते ब्रह्मचारी की स्वय देखी व परखी थी, और कई बिल्कुल नई भी। ब्रह्मचारी उस क्षण अपनी हँसी को न दबा सका जब स्वामी जी ने बताया कि एक बडे शहर मे एक कीर्तनिया बाबा भगवान कृष्ण के प्रेम

मे इस प्रकार व्याकुल हो जाते कि कीर्तन करते-करते ही बिल्कुल भूमि मे लुढकने लग जाते, कुछ क्षण के लिए बिल्कुल पागल बन जाते, और फिर एकाएक आवेश मे आकर किसी दर्शक की गर्दन भीड मे पकडकर उसके कपार से कपार भिडाकर वे नाचने व मचलने भी लग जाते। उनकी यह हरकत वहाँ दिनो से चालू थी, अत नगर के हर मुहल्ले व हर घर मे उनका सुयश पहुँचने से बाकी न रह गया था। लोग उन्हे पहुँचे हुए सत मानते। कुछ अतिशय श्रद्धालु लोग अपने घरो मे बुलाकर उनसे कीर्तन भी कराते। और सत जी भगवद्भक्ति के आवेश मे आकर उस घर की स्त्रियो की भी गर्दन से लिपटने से बाज नही आते।

लेकिन एक दिन जब दर्शको मे स्वामी सोमानन्द भी शामिल हो गये, और उनकी हरकत देख कुछ छीटा-कशी करने ही लगे, कि झट सत जी उछलकर स्वय उनकी ही गर्दन पकड, छाती मे चिपकाकर जोर-जोर से चिल्लाने लगे—

"मुझे मिल गया ! मिल गया ! जिसकी खोज थी वो मिल गया ! 'ना जाने केहि वेश मे नारायण मिल जायँ !' सो मिल गया ! भगवान मुझे मिल गया भाइया—" और कहकर झट स्वामी जी के चरण पकड कर बोलने लगे—"मेरे चित्त के चोर ! तू भाग तो जरा कैसे भाग निकलता है यहाँ से।"

कीर्तनिया बाबा की इस हरकत के फलस्वरूप एकाएक स्वामी सोमानद सबके आकर्षण के केन्द्र बन चले। और वे स्वय उनकी इस हरकत पर दग और अवाक् रह गये ! ज्यो-ज्यो वे बाबा की पकड से छूटने का प्रयत्न करते त्यो-त्यो वह पकड और कडी होती जाती। उस रात कीर्तनिया बाबा के वे कैदी बन ही गये। बाबा ने अकेले मे बहुत कुछ समझाया, बहुत सारा प्रलोभन भी दिया—पर वे तैयार न हो सके। बेचारे को लेने के देने पड गये। बडी कठिनाई से उस भगवानपन से पिड छुडाकर वे वहाँ से निकल सके।

इसके बाद एक ग्रौर कहानी भी खूब मजेदार रही। एक बाबा थे बिल्कुल नग-धडग। वे मौनी भी थे। उनका खाना-पीना ग्रौर नहाना-धोना किसी ने कभी देखा न था। ग्रत जन-रव के पख पर श्रद्धा उनकी उड-उडकर काफी दूर तक पहुँच जाती। काफी दूर से लोगो को वहाँ खीन्वती ले ग्राती। बाबा के निजी चेलो की सख्या चार-पाँच से ग्रधिक न थी, पर ग्रक्ल ग्रौर ग्रभिज्ञता मे वे चार-पाँच लाख से कम न थे। ग्राखिर 'एक खालसा, एक लाख गैर-खालसो के बराबर' यह सिद्धान्त वहाँ भी लागू था ही।

बाबाजी मौनी होने के कारण किसी से बोलते न थे पर जब वे किसी भक्त पर प्रसन्न हो जाते—'ढुम्-ढुम्-ढुम्, ढुमा-ढुम्-ढुम्'—ग्रपने इस स्पेशल मत्र का उच्चारण वे ग्रवश्य कर देते। यह भक्त की ग्राकाक्षा पूरी होने का शुभ लक्षण माना जाता। ग्रौर शेष काम उनके चतुर चेले स्वय पूरा कर देते।

विश्वास लोगो मे जम चुका था। फिर उनके चतुर चेलो की इस बात मे कैसे कोई भक्त ग्रविश्वास कर पाता कि बाबाजी की कुटिया के एक खास कोने मे जमीन के नीचे सोना या चाँदी गाडते ही दूनी हो जाने की करामात छिपी हुई है। लोभ ही लोगो मे श्रद्धा पैदा करता है, भक्ति भी। बाबा जी की सेवा मे भी मुख्यत. इस लोक का लोभ ही लोगो मे काम कर रहा था। सो, लोग लोभ ग्रौर विश्वास की बेडियो मे जकडे वहाँ ग्राने लगे, बाबाजी के चमत्कार की ग्राजमाइश करने लगे।

बाबा जी खरे उतरे। पहले-पहल लोग ग्राजमाइश के लिये मामूली रकम ही रखा करते। लेकिन तीसरे दिन उस रकम का दूना मिलते ही लोगो की श्रद्धा-भक्ति दुगुनी क्या चौगुनी बढ जाती! फिर तो गाँठ के भरे-पूरे लोग भी ग्राकृष्ट होने लगे। एक धनवान ने ग्रपने घर का सारा सोना बाबाजी के चरणो मे ग्रर्पित कर दिया। दुगुने की उमीद मे। पर दूसरे दिन ही जब उस कुटिया मे न बाबाजी का कोई चिह्न शेष रह गया

चतुर चेलो का, तो उस धनवान का 'हार्ट-फेल' होने से भला रह ? बेचारा वर्षो की सूदखोरी से कही वह सारा सोना इकट्ठा था ! और जब बाद मे दूसरे लोगो ने भी दुगुने वजन की ानी प्राप्त स्वर्ण-राशि की जाँच कराई तो वह सोना भी स्वय की तरह खरा साबित न हो सका। पर अब पछताये क्या होत 'या चुग गई खेत ?

पी सोमानद इस घटना के दो दिन बाद ही जाने किस अशुभ ास बस्ती मे घूमते-घामते जा पहुचे थे। लोगो का क्षोभ, क्रोध न बेचारे पर ही बरस पडा था, जिससे महीनो तक शरीर उन के लायक न रह गया था।

दिन की स्मृति मे उनके शरीर पर अब भी कई दाग कायम ‌ ब्रह्मचारी को दिखाते हुए व्यथा भरे मजाक के स्वर मे वे मानव-समाज का यही तो अभिशाप है ब्रह्मचारी जी, कि अप- चालाक हुआ, अपने अपराधो का बोझ और प्रतिशोध दूसरे के सिर फेककर स्वय बेदाग भाग निकलता है ''

दिनो मुस्लिम व हिन्दू सम्प्रदायवादियो के कारण देश का काफी जहरीला बनता जा रहा था। एक प्रसग दूसरे प्रसग घसीटता है। सो स्वामी बोले—"आज देश का साम्प्रदायिक जिन लोगो ने विषैला बना डाला है ब्रह्मचारी जी, उस विष का विस्फोट होते ही आप देखेगे कि वास्तविक अपराधी लेगे दूर अपनी जान लेकर अथवा सुदूर सुरक्षित जगह मे शा देखेगे, और उस विष की लपटो मे कीडे-पतिगो की मौत निरीह और गरीब बेचारे ! दुनिया मे यही सब होता आया जी ! बेबसो व बेवकूफो की बेबसी व बेवकूफी के आधार के प्रभुत्व और विलास का आलीशान महल खडा होता ई ! खैर !"

जी इस प्रकार बहुत कुछ कह सुनाने के बाद अन्त मे बोले—

"लेकिन खेद तो यह है कि यह सब देख-सुन लेने के बाद भी मुझ मे कोई अक्ल न आ सकी ब्रह्मचारी जी ! इसीलिये तो बताया आप से कि इस बुढापे मे जब जीवन का लेखा-जोखा करने बैठा हूँ सिवा शून्य के कुछ हाथ नही आता। पर यह शून्य भी भगवान बुद्ध का विशाल शून्य न था कि उसमे मिलकर मैं स्वय विशाल बन जाता।"—इन शब्दो को एक बार पुन दुहराते वे फिर जोर से हँस पडे।

हँसी शान्त होने पर वे मुस्कराते हुए फिर बोले—'एक नई बात बताऊँ, ब्रह्मचारी जी ! सुनकर शायद आप दाद दिये बिना न रह सके। बिल्कुल नई और बिल्कुल मौलिक। अपने जीवन को पढकर ही मैने भगवान बुद्ध के जीवन पर एक नया रिसर्च कर डाला है, सो सुन लीजिये। पी-एच० डी० की डिग्री तो न मिलेगी, क्योकि उस दुनिया से काफी दूर हो चुका हूँ, किन्तु यह आशा अवश्य है कि आप जैसे समझदार व विद्वान सज्जन शाबाशी मुझे अवश्य देगे !"—कहकर वे फिर हँसे।

"अच्छा तो सुना ही डालिये अपना वह मौलिक रिसर्च !" ब्रह्मचारी भी हँसते हुए कौतूहल भरे स्वर मे बोला—"हर समझदार का किसी मौलिक खोज पर शाबाशी देना कर्तव्य है यह मानते हुए मै भी पीछे न रहूँगा यह आप विश्वास रखे स्वामी जी !"

स्वामी जी पुन जरा हँसकर फिर बोले—"अवश्य ! अवश्य ! अच्छा तो थोडे मे ही बताये देता हूँ।" राजकुमार सिद्धार्थ वर्षो तक भटकता रहकर भी जब कुछ पा न सका, जब बिल्कुल निराश हो गया, तो बोधि-वृक्ष के नीचे उस निराशा के उदर से ही उस महान बोधि की उत्पत्ति हुई जिसके बल पर राजकुमार सिद्धार्थ बहुत शीघ्र 'भगवान् बुद्ध' का शुभ नाम हासिल करने मे सफल हो गया ! जात-बिरादरीपन की भावना हर युग मे काम करती रही है, आज भी और आज से हजारो वर्ष पहले भी। ब्राह्मणो ने सिद्धार्थ को अपने से हीन जाति का—क्षत्रिय जाति का—समझकर उसे श्रेय देना ठीक न समझा। तब भगवान् बुद्ध के

हृदय मे ब्राह्मण-समाज का द्वेषी होना अस्वाभाविक न था। तब राजाओ की भी आँखे खुली। एक तो अपनी जाति का और तिस पर अपने वर्ग का भी। क्योंकि सिद्धार्थ भूतपूर्व राजकुमार भी था। सो उन क्षत्रिय राजाओ ने अपनी जाति के उस मन की, उस भूतपूर्व राजकुमार की, इस प्रकार पूजा करनी शुरु की, उसे इस तरह बढावा देना शुरू किया, कि अन्त मे ब्राह्मणो को भी हारकर उसके सामने झुकना पडा। और निरीह प्रजा के सिर तो उसी समय झुक चले जब राजा स्वय झुक चला। और अन्त मे सिद्धार्थ गौतम भगवान् बुद्ध बनकर सारे जगत् का भगवान बन चला।

स्वामी जी ने गला खखासकर मुस्कराकर फिर कहा—"और इस तथ्य के समर्थन मे एक जबर्दस्त व मजेदार ताजा प्रमाण भी पेश कर दूँ आपके आगे। आपके ही श्रद्धालु शिष्य उस महेन्द्र ने सुनाया था मुझसे—"स्वामी जी, हम लोग जो स्वामी सत्यकेतु की इतनी खातिर व इज्जत करते थे उसमे सबसे बडे कारण थे मेरे बूढे दादा जी ! वे अक्सर हम बच्चो से कहा करते कि— 'स्वामी सत्यकेतु जी महाराज की खूब इज्जत किया करो बेटे ! वह अपनी खत्री जात का है। जिसकी अपने घर मे इज्जत न हुई भला बाहर क्या इज्जत होगी उसकी ? स्वामी सत्यकेतु जी महाराज की इज्जत सारी खत्री जात की इज्जत है बेटे ! —और खुद स्वामी सत्यकेतु से उम्र मे दस साल बडे होकर भी उनके पैरो पर माथा टेकते, और मेरे पिताजी (तहसीलदार कपूरचन्द खन्ना) से भी जबरन माथा टेकवाते। क्या आपको कभी महेन्द्र ने नही सूचना दी इस बात की ?"

"हाँ !" ब्रह्मचारी ने सिर हिलाकर स्वीकार किया—"मुझसे भी बताया था एक दिन महेन्द्र ने। तो स्वामी जी अब मै मान गया आपके रिसर्च की मौलिकता को। मै बडे आदर से माथा झुका रहा हूँ आपकी इस मौलिकता के आगे और आपके आगे भी !"—कहकर ब्रह्मचारी ने सचमुच अपना सिर जमीन तक झुका दिया।

स्वामी जी ठठाकर हँस पडे, और ब्रह्मचारी हाथ जोडकर बोला—"अब तो बहुत देर हो चली स्वामी जी ! अब तो पेट मे भूख के चूहे उछलने लग पडे। कोई दवा होनी ही चाहिए इसकी। अन्यथा ·····"

"हाँ, हाँ, हाँ !!!"—स्वामी सोमानद जी हडबडाकर उठ खडे होते हुए बोले—"सो तो सचमुच मै भूल ही चला था अभी। मै तो भक्त कबीर की इस वाणी मे पूरा विश्वास रखता हूँ ब्रह्मचारी जी कि—"ना कुछ देखा भाव-भजन मे, ना कुछ देखा पोथी मे। कहै कबीर सुनो भाई सतो, जो देखा सो रोटी मे।" अन्न ब्रह्म की ही सर्वत्र महिमा है ब्रह्मचारी जी। इसके लिए ही ससार का प्रपच और पाखड है भाई ! कहकर वे ब्रह्मचारी के साथ लबे-लबे डग भरते कुटिया की ओर चल पडे।

◇ ◇ ◇

ब्रह्मचारी आदित्य स्वामी सोमानद की कुटिया से कुल्लू-उपत्यका के प्रसिद्ध तीर्थ 'मणिकर्ण' की ओर चल पडा था। मणिकर्ण की महिमा मामूली नही, यह अनेको के मुँह से वह जान चुका था। पार्वती के किनारे, पहाड के पेट से निकलती हुई अग्नि की दहकती जल-धारा के जल से एक सैकेण्ड का अटूट सपर्क भी मृत्यु को बुलाये बिना नही रह पाता यह क्या मामूली आश्चर्य था ? और यह आश्चर्य ही उस स्थान को सदियो से तीर्थ का पद प्रदान कर चुका था।

पार्वती के किनारे-किनारे पूर्वोत्तर की ओर वह बढा जा रहा था। बीस मील मार्ग आज तै कर लेना आसान कतई न था। अत वह इतमीनान से धीरे-धीरे ही जा रहा था। और विचारो के द्वन्द्व मे उलझे होने के कारण उस जेठ की गरमी मे भी पथ की थकान मानो भूल चुका था। परन्तु स्वामी सोमानद की बाते यादकर जहाँ वह हँसे बिना नही रह पाता, वहाँ उनमे छिपी सचाई के व्यग्य से विचलित हुए बिना भी रह जाना उसके लिये सभव न था। अतिमानवता का वह आश्रम, कीर्तनिया बाबा का वह नाट्य, और मौनी-नागा बाबा की करामात के

अतिरिक्त भगवान् बुद्ध के जीवन पर स्वामी सोमानद के मौलिक रिसर्च मे जो सत्य की विहँसती ज्योति उसे दिखाई दे जाती, भला उससे कैसे वह अप्रभावित रह जाता ?

चलते-चलते ही उसके मन मे यह भाव उठ रहा था, आखिर महेन्द्र ने स्वामी सत्यकेतु के प्रति अपने व अपने सारे परिवार के आकर्षण का मूल कारण उसे भी बता ही दिया था, किन्तु उसे जानकर भी उसकी दृष्टि उस तथ्य की ओर न जा सकी जिसकी ओर स्वामी सोमानद ने अभी-अभी ही सकेत भर किया था। मनुष्य के भीतर समझ और ज्ञान का खजाना भरा होते हुए भी अक्सर वह उसे नही समझ पाता, नहीं जान पाता। क्योकि 'बिन गुरु होहि न ज्ञान'। किन्तु जब किसी जानकार व्यक्ति की उक्ति का आवेग उस खजाने के किवाड को झकझोर कर उसे खोल देता है तो बहुत-सारा रहस्य अपने आप प्रकट हो पडता है। सभ्य मनुष्य नग्नता अवश्य नापसद करता है, किन्तु इसी से आवरण के भीतर छिपी नग्नता से इनकार तो नही किया जा सकता ? और यदि कठिन यौन-रोग से ग्रसित नर-नारी चिकित्सक के समक्ष नग्न होने से इनकार कर दे तो वह रोग-नष्ट होने के बजाय बढेगा ही ! और इसी प्रकार शरीर-विज्ञान से विद्यार्थी भी सभ्यता का ख्यालकर अग-प्रत्यग के रहस्यो को जानने से विरत नही हो जाता ? हाँ, तो कोई एक ही प्रबल प्रमाण प्रमेय की सारी परम्परा को, उसके सारे आवरण व शृखलाओ को तोडता व उघाडता हुआ जब सत्य के सन्निकट पहुँच जाता है, तो भले ही उस सत्य का उद्घाटन बहुतो को नापसद आये, भले ही वह अनेक नासमझो को चिल्लपो मचाने पर मजबूर भी कर दे, किन्तु सत्य तो आखिर सत्य है। यदि एक बार भी वह सामने आ गया, तो लाख उस पर पर्दा डालने का प्रयत्न किया जाय, पर मनुष्य का स्वभाव-जन्य कौतूहल ही, उस पर्दे को पडा न रहने देगा। तथ्य की उपलब्धि की प्रबल वासना ही उसे विवश कर देगी उन आवरणो को चीर-

फाडकर फेक देने के लिये। उसमे गहरे पैठकर उसके असली रूप को देखने के लिये।

यह सोचते ही ब्रह्मचारी को दूसरे तथ्य भी याद आ गये। उसे याद आ गई प्राणिशास्त्र के आचार्य चार्ल्स डार्विन की कहानी। उन्नीसवी शती का उत्तरार्द्ध अभी आरम्भ ही हुआ था, जब उसने वर्षो की खोज और शोध के बाद 'प्राणियो का मूल' तथा 'मनुष्य का अवतार' इन दो पुस्तको की रचना कर इस तथ्य को साबित कर दिखाया कि एक ही मूल प्राण सभी प्राणियो का जनक है। और उसी मूल प्राण की उत्तरोत्तर विकासमान परम्परा मे मनुष्य की उत्पत्ति या विकास बदर से हुई है, तो कुछ सस्कारियो के दिल-दिमाग पर इतने ज़ोर का आघात लगा कि ईसाई-पादरियो ने उस सत्य के प्रचार पर हर प्रकार से पाबदी लगाने का प्रयत्न किया, पर सफलता उन्हे न मिली। सत्य का जादू आखिर सिर पर चढकर नाच ही गया। धीरे-धीरे सारे विज्ञान-जगत् ने उस सत्य को परीक्षा की कसौटी पर कसकर स्वीकार कर ही लिया। उसके समक्ष सिर झुका ही दिया! अस्तु।

"तो", ब्रह्मचारी ने सोचा—"क्या वही बात स्वामी सोमानन्द की उस खोज पर भी लागू नही हो सकती? क्या स्वामी सोमानन्द ने भी, अपनी चढी जवानी मे अपने घर-परिवार का परित्याग उस आकाक्षा के आवेश से ही नही कर डाला जिस आवेश मे आज से हज़ारो वर्ष पहले राजकुमार सिद्धार्थ ने महाप्रस्थान किया था? और बाद मे जिस निराशा के उदर से सिद्धार्थ की 'बोधि' उत्पन्न हुई, और जिस ब्राह्मण-विरोध एव जात-बिरादरीवादी गुट्ट पर सबल भावनाओ का सहारा पाकर वह धीरे-धीरे फैल चली, जगत् मे समादृत हो चली, इस सत्य व तथ्य की ओर सोमानन्द द्वारा किये गये सकेत की कैसे उपेक्षा कर दी जाय? उसे क्योकर निराधार मान लिया जाय? किसी मामूली यूनिवर्सिटी का स्नातक भी अपनी उपाधि और अध्ययन पर कम गर्व नही करता; वही

स्नातक अपने दो-तीन वर्ष के परिश्रम से ही किसी मौलिक निबन्ध के आधार पर प्राप्त अपनी पी-एच० डी०, अथवा डि० लिट० की डिग्री पर फूले बिना नही रह पाता, तो यदि स्वामी सोमानन्द ने अपने जीवन के विशाल विद्यापीठ की स्नातकता के आधार पर जिस महत्वपूर्ण मौलिक सत्य की ओर सकेत कर दिया है, उसकी कीमत किस खोजी के खोज से कम महत्वपूर्ण है ? उसका मूल्य किस अनुसन्धाता के अनुसधान से न्यून है ?"

यह निश्चय करते ही स्वामी सोमानन्द के प्रति सहानुभूति के अतिरिक्त अब उनकी विद्वत्ता और परीक्षिका बुद्धि के प्रति भी ब्रह्मचारी के हृदय मे श्रद्धा और आदर उत्पन्न हो गया। जिस प्रकार एक दीपक की लौ से अन्य दीपको के जलते और विशाल प्रकाश होते न कठिनाई होती है, न देर, उसी प्रकार स्वामी सोमानन्द के इस एक इगित से ही ब्रह्मचारी के मन मे ससार के लगभग सभी मतो व पैगम्बरो के साफल्य और सम्मान का रहस्य उसकी नजरो मे नाच गया। एक पाखड के प्रतिकार के लिए दूसरा पाखण्ड पैदा होता है। यदि ब्राह्मणवाद के पाखड के प्रतिकार के लिये बौद्धो का पाखड जोर पकड गया तो आश्चर्य क्या, अस्वाभाविकता क्या ? क्योकि करुणा और अहिंसा का प्रतिपादन तो पहले के ब्राह्मण-ग्रन्थो मे भी मौजूद था ही ! एक बुद्धिवादी के लिये यह सामान्य उपलब्धि न थी। वह तो अब मन-ही-मन स्वामी जी को गुरु भी मान बैठा। और जब गुरु मान लिया, फिर श्रद्धा-भक्ति का अभाव कैसा ?

स्वामी सोमानन्द विदा के वक्त ब्रह्मचारी के साथ पार्वती के तट पर स्थित उस झाडी के पास तक आये थे। ब्रह्मचारी उस स्थान की रमणीयता से पुन: प्रभावित होकर बोला था—

"बडा सुन्दर स्थान है स्वामी जी, यह !"

और स्वामी जी ने हँसी-हँसी मे ही कह डाला था—

"तो आरम्भ कर दीजिए अपना विद्यापीठ यहाँ पर ! प्रकृति की अजस्र

मुस्कान के आवरण मे दो बडी नदियो के सगम का पावन स्थल ! 'भरद्वाज मुनि बसहि प्रयागा' के स्थान से इस स्थान का तब कम महत्व नही रह जायगा, ब्रह्मचारी जी। तब तो किसी युग मे यहाँ भी कुम्भ के मेले शुरू हो जायेंगे, और सन्तो के अखाडे भी, और तब जनता भी पुण्य की बहती धारा को लूटने मे किसी भी लुटेरे से पीछे न रह जायगी !"—इतना कहकर वे बडे जोर से हँस पडे थे।

यह याद आते ही ब्रह्मचारी का हृदय और भी आदर से आप्लुत हो उठा। हँसी-हँसी मे ही यह वृद्ध तपस्वी कितने पते की बात बता जाया करता है, यह विचारते ही वह और भी मुग्ध हो उठा।

वह सोचने लगा—"यदि विद्यापीठ के स्थापन व सचालन का सकल्प मौजूद है ही, तो क्यो न उस स्थान पर ही श्रीगणेश किया जाय ? क्यो न इस महाविद्वान वृद्ध का सहयोग व मार्ग-दर्शन प्राप्त कर उसका सफल सचालन किया जाय ?"

ब्रह्मचारी के हृदय मे यह विश्वास जड जमा चुका था कि स्वामी सोमानन्द स्वामी सत्यकेतु नही है। दोनो मे आकाश-पाताल का अन्तर है और सभी सन्त एक जैसे नही है। और वह स्वय भी तो पूरा न सही आधा सन्त तो था ही। अपने हृदय को वह बार-बार टटोलता, कही कोई चोर तो छिपा नही ? पर कोई चोर उसे नज़र नही आता। फिर वह क्योकर ऐसा निश्चय कर ले कि सभी सन्त शैतान के सहोदर ही हैं। जिस प्रकार सभी इन्सान शैतान नही हो सकते, उसी प्रकार सभी सन्त भी नही। लेकिन अपने निज के अध्ययन के द्वारा उसे इतना दिखाई दे गया कि जब शैतान सन्त की खाल ओढकर प्रकट होता है तो वह महा-इन्सान मालूम होता है। वह अपनी महा-इन्सानियत के चकमे मे जनता को जल्द फँसा लेता है। खैर।

उसका मन इन उलझनो मे पडा ही था कि वह सडक के किनारे बसे एक गाँव मे आ गया। गाँव का नाम था 'जच्छरणी'। एक घर के बरामदे मे एक दृश्य देख उसकी विचार-मुद्रा भग हो चली। और जब

मन विचार के जाल से बाहर आ गया तो उसे राह की थकावट भी महसूस हुई, जेठ की वह गरमी भी, और फिर बडे जोर की प्यास भी। सो, उस बरामदे के सामने, कुछ दूर नीचे एक वृक्ष की सघन छाया के नीचे एक शिला-खड पर वह बैठ गया! और प्यास को दबाये कुछ देर उस दृश्य को देखता रहा! बडा आश्चर्य आ रहा था उसे।

एक पक्ति मे सात-आठ युवा, अधेड व वृद्ध नर-नारियो की परस्पर सटी हुई गोष्ठी वहाँ जमी थी। उनके सामने काठ और मिट्टी की प्यालियाँ थी, और एक काफी बडा बोतल भी। उस बोतल को उन प्यालियो मे खाली कर-करके, फिर उन प्यालियो को परस्पर एक-दूसरे के मुँह से भिडा-भिडाकर, एक घूँट के अन्दर जाते ही फिर प्याली को नीचे रख, जब वे मस्त हो, परस्पर गलबहियाँ डालकर, सामूहिक स्वर मे किसी गीत का पद छेड देते, तो उस गीत मे एक साथ जीवन और जीवन का कौतूहल आ जाता! गदे कपडो मे लिपटे उन नर-नारियो का वह राग-रग जीवन से कतई रिक्त न था। और जब एक साठ-साला बुढिया एक चालीस-साला पुरुष के ओठो मे बडे प्यार से अपनी प्याली को भिडा देती और सबके स्वर मे स्वर मिलाकर 'बालो'[1] के इश्क के तराने भी छेड देती, तो जीवन का बीभत्स भी हँसे बिना न रह पाता! खैर!

ब्रह्मचारी ने आवाज दी, और एक तीस-बत्तीस वर्ष का युवक, आखो मे लाली लिये, किंतु बडे विनय से, उसके पास आकर हाथ जोड खडा हो गया। ब्रह्मचारी द्वारा पीने का पानी मागे जाने पर उस नशे की दशा मे भी उसे कम सकोच न हुआ। क्योकि जात से चमार होकर वह कैसे किसी सत-ब्रह्मचारी का धर्म भ्रष्ट कर दे, इस भय से ही वह सकुचित हो चला। किंतु ब्रह्मचारी का आग्रह वह टाल न सका। झट गिलास माँजते हुए काफी नीचे पार्वती की धारा से पानी लाकर उसके आगे कर दिया।

---

१ पजाब के होश्यारपुर जिले के गाँवों में 'बालो का प्रेम-संगीत' हीर-राँझा के प्रेम-सगीत से कम लोकप्रिय नही है।

ब्रह्मचारी के पानी पीते ही अब एक अधेड उम्र का पुरुष भी उस गोष्ठी से निकलकर उसके पास आकर बडे आग्रह व आत्मीयता से लड-खडाती आवाज मे बोला—"आओ ! इधर बैठो स्वामी जी ! पूरे बारह रुपये की ब्राडी की बोतल ! भुन्तुर से आज ही सवेरे आई ! बडा मजा आ रहा है ! आओ, तुम भी पियो ! और बैठकर दो बाते करो ! जिंदगी के मजे लूटो स्वामी जी, मजे लूटो !"

उसकी इस उदारता पर ब्रह्मचारी अपनी हँसी को न दबा सका। बडी आत्मीयता से उस आमन्त्रण को अस्वीकार कर उससे बोलने बतियाने मे लग गया। उस पुरुष का उत्साह बढ चला और मानो आँखे भी खुल चली। उस वृक्ष के नीचे बैठ, रगभरी आँखे फाड-फाडकर लडखडाते स्वर मे वह बोलने लगा—"शराब मे, स्वामी जी, अगर खूब मजा आता है तो खूब जूता भी लगता है। तभी तो कहा है स्वामी जी कि—'गाँजा है गुलाब रग, भग है भभूतिया।' फीम है गलीज रग, शराब रग जूतिया।"

उसके मुँह से आती शराब की दुर्गंध से ब्रह्मचारी बडा विचलित हो उठा। इतना उसे मालूम हो गया कि वे सब होश्यारपुर जिले के पजाबी मोची है। वर्षों से आकर यहाँ बस गये है। लेकिन निकट बैठे रहना अब आसान न रह गया। जब वह उठकर चल पडा तो वह पुरुष झट राह रोककर खडा हो गया। बडे आग्रह से बोला—"कहाँ जा रहे हो इस धूप मे स्वामी जी ? बैठो ! बैठकर दो बाते करो।"—और कहकर उसने पुन. एक कविता पढ डाली—"सतो को मिले सत, करे दो बाता। गधे को मिले गधा, मारे दो लाता।"

ब्रह्मचारी से पुन हँसे बिना न रहा गया ! लेकिन उसकी समझ मे यह न आ सका कि वह उसे सत समझे या गदहा ! यदि सत न मानकर उससे बात करने से इनकार कर दे तो वह कही गदहा बनकर गदहेपन का ही परिचय न दे डाले ! लेकिन बहुत जल्द किसी प्रकार इस सत से पीछा छुडा वह मणिकर्ण की ओर चल पडा। लेकिन चलते-चलते भी

रह-रहकर हँसी के बवडर से उसका पेट फूले बिना न रह पाता ! इस समय ससार उसे अजीब चिडियाखाना प्रतीत हो रहा था। लेकिन साथ ही वह यह भी सोच रहा था कि आखिर ये श्रमिक किसान शहर के उन सभ्य साहेबो से अधिक हसी के योग्य तो नही जो क्लबो मे सुरा-सुदरी के रस मे मदमत्त हो इनसे कही अधिक नग्नता और बेसुरेपन का परिचय पेश करते है ? पर विशेषता यह कि क्लबो मे एक ही पथ और बिरादरी के लोग होने के कारण वह नग्नता और बेसुरापन किसी को महसूस नही हो पाता। वेदात का कथन है 'द्वितीयाद् वै भय भवति' अर्थात् भय तो दूसरे से होता है। फिर उन क्लबो की ब्रह्म-बिरादरी मे भय किससे ? शर्म और सकोच किससे ? किंतु इस गोष्ठी मे पर्दा बिल्कुल न था। अत जब वह युवक पानी लेकर सामने आया, और ब्रह्मचारी ने कुछ पूछ ही दिया तो वह नशे मे भी शर्म से गडे बिना न रह सका। इतना तो सिद्ध हो ही गया कि पर्दे के पीछे सब नगे ! अस्तु।

सडक के नीचे से दुग्ध-धारा पार्वती, चट्टानो से टकराती, अपनी मस्त रागिनी गाती चली जा रही थी, और ब्रह्मचारी अपने आपमे खोया हुआ मणिकर्ण की ओर बढा जा रहा था। कुल्लू के कई हिस्से स्वर्ग से भी सुदर है, पर इधर का यह हिस्सा रूखा-सूखा-सा था। उस क्षेत्र से गुजरती हुई पार्वती अपनी सारी सरसता और शक्ति का बगैर उपयोग कराये ही समुद्र की ओर, इसमे मिलकर व्यर्थ बनने जा रही थी, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार कोई मानव अपने मे अनन्त शक्ति छिपाये, बगैर उसका उपयोग किये ही अन्त मे मृत्यु की अनतता मे विलीन हो जाता है ! इस तथ्य पर विचारते ही ब्रह्मचारी को कम कष्ट न हुआ। स्वामी सोमानद के जीवन की व्यर्थता के साथ उसके निज के जीवन की व्यर्थता भी मानो मन की आँखो मे साकार होकर खडी हो गई।

लेकिन जब इस पहलू पर विचारते समय कीर्तनिया बाबा की वह कहानी उसे याद आ गई तो व्यथा-विजडित हृदय भी क्षण भर हास्य से उद्भासित हुए बिना न रहा ! लेकिन फिर वह गभीर बन चला। फिर

वह सोचने लगा—"सफल जीवन आखिर है क्या ?" स्वामी सोमानद ने उसे बताया था कि—"यदि 'यावत् जीवेत् सुख जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृत पिबेत्'[1] यह आदर्श ही सफल जीवन का आदर्श माना जाय, तो निश्चित रूप से इस सफल जीवन की उपलब्धि के प्रयत्न मे या तो स्वय ठग बनना पडेगा अथवा अन्य सफल ठगो का सफल चापलूस । अथवा सफल चोर-बाजारिया या चोर-बाजारियो का सफल एजेट ।"

फिर उन्होने हँसकर बताया था—"चोर-बाजारिया शब्द का अर्थ बडा व्यापक है ब्रह्मचारी जी ! इसमे पैसे का बाजार, धर्म और राजनीतिक बाजार, सारे बाजार इस प्रकार समा जाते है कि न तो सरकार की आँखे उन्हे पकड पाती है न जनता की आँखे । पर आश्चर्य तो यह है ब्रह्मचारी जी, कि समाज दिन-रात चार्वाक के आदर्श पर चलता हुआ भी चार्वाक ऋषि के नाम से नाक-भौ सिकोडता क्यो है आखिर ?" —और कहकर पुन बडे जोर से हँस पडे थे ।

स्वामी सोमानद का एक-एक वाक्य ब्रह्मचारी की नजरो मे काफी कीमती बन चुका था । उसने सोचा—"सच ही तो ? अँग्रेजो की बडी-बडी नौकरियो के लिये तरसने और प्रयत्न करने वाले क्या चार्वाक-पथी नही कहे जायेगे ? पैसे के लिये दीन, ईमान, इन्सानियत सब कुछ बेच देने वाले बडे-बडे ये सेठ क्या चार्वाक-पथी नही कहे जायेगे ? और भोग-विलास मे दिन-रात मस्त रहने वाले दुनिया के सारे राजे-महाराजे, उनके दादे-लकडदादे भला किस चार्वाक-पथी से कम है, या कम रहे है ? पर सचमुच यह क्या कम आश्चर्य है कि ये ही लोग और इन्ही लोगो के एजेट दिन-रात दुनिया को चार्वाक के नाम से आगाह भी करते है, उस ऋषि के नाम से घृणा करना भी सिखलाते है ! फिर स्वामी जी ने

---

१. जब तक जिओ, सुख से जिओ ! ऋण लेकर भी घी अवश्य पिओ !

—(चार्वाक सिद्धांत)

क्या झूठ कहा था कि ससार को, और विशेषकर सभ्य ससार को अपनी असगतिओ व अन्तर्विरोधो पर ही बटा गर्व है और गर्व रहता आया भी है ब्रह्मचारी जी !"

तो अपने आपमे उसने फिर यह प्रश्न दोहराया—"तो सफल जीवन आखिर है क्या ? क्या सफल जीवन यही है कि जिस-तिस उपाय से सुविधाओ को हथियाकर उनके बल पर प्रभुत्व व प्रख्याति की पताका पर आसीन हो जाया जाय ? अथवा "

किन्तु दूसरे ही क्षण ससार की असख्य असगतियो के मध्य से सफल जीवन के अनेक शुभ्र उदाहरण भी उसके समक्ष आ ही गये, जिनके आगे उसके मन को झुकना ही पडा। मनुष्य केवल अन्तर्विरोधो व असगतियो का ही पुंज नही है। जिन क्षमताओ के बल पर वह विचार और निर्माण के क्षेत्र मे निरतर आगे बढा जा रहा है, मानव-समाज की ऐतिहासिक प्रगति पर विचार करते हुए कैसे इस तथ्य को भुलाया जा सकेगा ? यदि उसका अपना निजी जीवन सफल न हो सका तो समाज की समस्त सफलताओ के आधार के रूप मे मानव की कुप्रवृत्तियो को ही मान लेना, या स्वीकार कर लेना आखिर सत्य तो नही ?

अन्तर्द्वन्द्वो की इस व्यथा मे बहते-बहते वह एक समय 'साट्' नामक गाँव मे आ गया। सूर्यास्त हो चुका था। रात बिताने की समस्या थी। जगह ढूँढते वह गृहस्थ-घरो की ओर बढ चला !

◇ ◇ ◇

बिल्कुल 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का समाज था वह। भारत के लगभग हर भाग के प्रतिनिधि सन्त, और जाने साधुओ के कितने सम्प्रदायो का। हर प्रात सुल्फा-चिलम चढा के विभिन्न दिशाओ को अलख जगाते वे चल देते और दो-चार घटे बाद भरी या खाली झोली लिये आ जाते वापस। उनमे कुछ लोग लोगो की श्रद्धा व उदारता का गुणगान करते और कुछ लोग उपेक्षा व तिरस्कार से आहत, गालियो की बौछार भी। लेकिन वहाँ अलग-अलग डफली नही बजती। वह भरी या खाली

झोलियाँ एक मे मिलते ही सब की साझी सम्पत्ति बन जाती। जो कुछ रूखा-सूखा होता मिलकर बनाते और मिलकर खाते। फिर चिलम चढाते हुए दीन-दुनिया की बातो मे मन बहलाते। जब-तब आपस मे शास्त्रार्थ का रग भी जमाते; परस्पर लड-झगड भी जाते, और फिर समझौता करने या क्षमा-दान मे कजूसी या अनुदारता कतई नही दिखाते। और इस प्रकार मणिकर्ण के दहकते कुड के निकट बनी कुटिया मे एक साथ सप्ताह, दो सप्ताह अथवा महीना बिताकर फिर चल देते अलग-अलग अनन्त-अज्ञात की ओर।

मणिकर्ण मे यात्री आते ही रहते हैं। आज किसी श्रद्धावान धनवान यात्री ने पडो के अतिरिक्त इन सन्तो की भी पूजा की। प्रति सन्त एक-एक चौअन्नी पेश कर उसने श्रद्धा का प्रमाण पेश किया और बदले मे पुण्य लूटा ! तेरह सन्तो की सम्मिलित चौअन्नियाँ सवा तीन रुपये बन ही गई। फिर तो पजाबी उदासी सत श्री त्रिलोचनानन्द जी ने बडे उत्साह से उन पैसो को झनझनाते हुए घोषणा कर दी—"सतो ! अगर दुनिया साली खाने को मर रही है, तो हमारा फर्ज यह है कि हम खाते-खाते ही मरे। बोलो सतो ! क्या सलाह है सब की ?"—और कहकर उन्होने हाथ मे पडे पैसो को फिर से झनझना दिया।

"अरे पूछना क्या गुरु भाई ?"—उधर से एक राजस्थानी दादूपथी सत ने टिटकारी भरी—"क्या यह मन्तर याद नही कि 'हाथ सूखा और जोगी भूखा ?' और यहाँ तो पूरा घटा भर हो गया परसाद पाये !"

और उधर से नाथपथी सत श्री सोमनाथ जी भी चुप न रहे—"बस मजा आ जाय सतो, अगर भाँग के गरमागरम पकौडे" फिर नेत्रो को नचाते व मध्यमा को अगूठे से चटकाकर—"फिर तो खूब उड़े चकाचक !" और फिर अपने पक्ष के समर्थन मे प्रमाण भी पेश करते हुए—"यह मणिकर्ण तीर्थ भगवान् शकर के क्रोध की ज्वाला से ही तो उत्पन्न हुआ सतो ! माता पार्वती के कान का मणि यहाँ गिर कर खो जाते ही शकर जी ने गुस्से मे आकर तीसरा नेत्र खोल दिया। दुनिया

साली जलने लगी। हाहाकार मच गया। भक्तों ने स्तुति की। शकर जी का क्रोध कम हुआ। माता पार्वती ने मानतलाई मे इस नदी को खीचा। और तब से पार्वती नदी यहा बहती भगवान् शकर का क्रोध शात किये आ रही है। तो सतो, हम भी आज शकर जी की विजयाबूटी का सेवन कर भगवान् का क्रोध शात करे। क्योंकि कहा भी है—'हरी मे हर बसे, भूरी मे भगवान! और जा घर विजया ना बसे, ता घर धुके मशान! सो, बोलो सतो, बम् शकर! दुश्मन के सिर पर गिरे पत्थर और ककर!"

श्री सोमनाथ जी की सलाह सब को पसद आई। आध्र और करनाटकी सत भी मौजूद थे। वे ब्रह्मचारी आदित्य के साथ बातो मे लगे होने के कारण अपनी सलाह न पेश कर सके! लेकिन बहुमत के निर्णय के अनुसार पेट के मुखिया श्री त्रिलोचनानद जी पैसे आगे बढाते हुए एक छोकडे सत को आदेश देते बोले—"ले तो गुरुभाई! एक-दो सतो को साथ लेकर चला तो जा बाजार जरा! आधा सेर तेल, तीन सेर आलू और आधा सेर वेसन! और समझे? क्या समझे? रुपये की चीनी और अठन्नी का बादाम! समझे? और आने की काली मिर्च! और समझे? नमक और लाल मिर्च मुफ्त मे। और विजया तो है ही उस सत की झोली मे। तो फिर जा तो गुरुभाई जरा जल्दी से। फिर तो यो उडे चकाचक!"—कहते हुए अपनी खुशी और उत्साह को उन्होने अगूठे से मध्यमा को चटकाकर जाहिर भी कर दिया।

सतो मे एकाएक जान-सी आ गई। विजया भी बन गई और पकौडे भी बन चले। कुटिया के बीच की धूनी को घेरकर बैठे सतो की रसनाएँ रह-रहकर गीली हो रही थी। लेकिन फिर भी वे अपने अतिशय लोभ को छिपाने के प्रयत्न मे थूक निगले जा रहे थे।

विजया का वितरण होना शुरू हुआ। सबसे पहले सोमनाथ जी के

कमडलु मे गिलास भर डाल दी गई। उसके बाद दूसरे सतो के कमडलु मे।

श्री सोमनाथ जी ने विजया मे तर्जनी को घुमाते हुए खूब जोर से यह मत्र भी पढा—"ओ३म् शकर! जोगी पीये जत्ती पीये पूत अनाडी का। घर-बारी जो पीये जिसका फूटा करम लिलारी का! बम् शकर! दुश्मन के सिर पर गिरे पत्थर और ककर!"—और कहकर क्षण मात्र मे गटागट उसे घोट भी गये।

और दूसरो ने भी उनका अनुकरण किया। सब को नशा आते देर न लगी, लेकिन नाथ जी नाखुश थे उस विजया की कमजोरी पर। गरमागरम पकौडो के निगलने के बाद भी जब नशा न आ सका, तो उदास होकर बोले—"साली बिल्कुल नपुसक ही रही गुरुभाई! जरा भी मजा न आ सका। शायद शकर भगवान् खुश न हो सके!"—कहकर मानो शिवजी को खुश करने के ख्याल से ही वे अपनी बगल झोली मे सयत्न-रक्षित सखिया का एक टुकडा निकाल उसे घिसकर चाय मे मिलाकर पी गये!

अब कुछ उन्हे भी नशा महसूस हुआ। सोमनाथ जी तो काला नाग के विष तक को पचा लेते, फिर सखिया की क्या बिसात कि उनका कुछ भी बिगाड सके। जहरीले-से-जहरीले सर्प के मस्तक को वे इस सफाई से पकड लेते कि क्या मजाल कि वह पकड से निकल भी सके। और फिर पूरे जोर से उसके मस्तक मे से जहर को निचोड किसी शीशी मे बद कर रख छोडते। फिर जब कभी पूरे नशे की आकाक्षा हुई, और सखिया वगैरह पास मे न हुई, तो चाय मे उस विष की एक बूँद मिलाते ही वह आकाक्षा उनकी पूरी हो जाती! इस प्रकार वे समुद्र से निकले हालाहल विष को पचाने वाले शकर भगवान् का 'पक्का शिष्य' अपने को मानते। पर चतुराई और कला के अभाव मे वे दुनिया से अपने को न मनवा सके। न पुजवा सके। अन्यथा मजे मे वे शकर के अवतार माने जा सकते थे! खैर!

एक तो भाँग और पकौडे का नशा ! तिस पर आज की चहचही चाँदनी रात ! और तिस पर कुटिया के किनारे से मचल-मचलकर बहती हुई पार्वती की बोलती दुग्धधार। और पार बिल्कुल, तट से आकाश की ओर उठे चट्टानो पर, हरित-भरित देवदारु बन के बीच अनत मुस्कान बिखेरती हुई प्रकृति भी ! फिर क्यो न उन सतो की दबी कामना कल्पना बनकर दिल से छलक-छलककर बाहर आये ? हवा मे उडा करे ? आकाश मे विचरा करे ?

दुनिया आखिर गोल है। और खास कर आज के वैज्ञानिक युग मे वह गोलाई और भी गतिशील है। द्वितीय विश्वयुद्ध मे सोवियत रूस की शानदार विजय सारे विश्व मे उन सबके मन-मस्तिष्क को आदोलित करने लगी जिनके स्वार्थ पर किसी-न-किसी रूप मे उस विजय का प्रभाव पडना अनिवार्य था। कुछ लोगो के मानस-क्षितिज मे उदय की अरुणाभा, आशा और आकाक्षा की रश्मियाँ बिखेरे ऊपर उठ रही थी, और कुछ लोगो के मन मे अस्तोन्मुख अरुणाई मानो क्रोध, क्षोभ निराशा और आशका बनकर बिखर रही थी !

फिर तो उन सतो ने भी नशे की अरुणाई मे अपने दिल की दबी अरुणाई मिला-मिलाकर हवा मे बिखेरना आरभ कर दिया।

"कहो तो कुछ, गुरुभाई !"—उदासी सत ने नशे के आवेश मे भी दिल के आवेग को जरा दबाकर ही कहा—"पर अपने को तो अच्छी दीखे है कम्युनिस्टो की बात ! बडा अच्छा हो सतो, अगर हिंदुस्तान मे भी कम्युनिस्ट-राज कायम हो जाय !"

"हाँ, गुरुभाई !—झट दूसरे बैरागी सत ने समर्थन किया—"इस दर-दर की ठोकरें खाने की मुसीबत से तब पिड हमारा छूट जाय !

"परन्तु,"—एक-दूसरे ने आशका जाहिर की—"तब हमारी यह आजादी तो नही रह जायगी गुरुभाई ?"

"धत् तेरी आजादी की !"—उधर से दादूपथी ने ललकार

भरी—"आज़ाद हो विचरते इसलिये है कि कही कोई ठौर-ठिकाना नही है !"

दादूपथी की इस ललकार ने उसमे गुस्सा अवश्य भर दिया, लेकिन नशे मे गुस्से को पचाकर वह फिर बोला—"परन्तु वे धर्म को जो नही मानते ?"

"धत् तेरे धरम की भी ।"—पुन उसने उसी लहजे मे ताना मारा—"धरम को मानता कौन है आखिर ? अगर मेरी बात पर वैसे विश्वास न हो सत जी, तो मणिकर्ण के पडो की करतूतो पर ही विचार कर विश्वास कर लो ।"

"ठीक तो कहा ।"—उदासी सत ने खुश होकर समर्थन करते हुए कहा—"ये सारे पडे धर्म के पक्के ठेकेदार ही तो है ? धर्म की दूकान पर ही तो रोटी चला करती है इनकी ? लेकिन देख लो कि इस पवित्र तीर्थ की क्या दुर्दशा कर रखी है इन्होने ? घर मे माँस पकाकर खायेगे और हड्डियाँ फेक जायेगे इन कुण्डो के अगल-बगल । अगर हम लोग यहाँ बैठे न हो, अगर रोके नही, तो अगल-बगल टट्टी-पेशाब करने से भी बाज न आवे और दूसरे कर्म करने से भी नही ।"

"ठीक कहा, ठीक कहा सतजी ने गुरुभाई !"—नाथ सत श्री सोमनाथजी ने भी जोर के स्वर मे समर्थन किया—"सब हरामी है साले । कर्म से शूद्र, मगर दावा यह कि साक्षात् ब्रह्मा की औलाद ब्राह्मण ही है हम । यह क्या कम अन्याय है सतो, कि अछूतो को तो इस कुड के पास फटकने भी न दिया जाय, और ये ब्राह्मण-राजपूत सारी बदतमीजियाँ यहा कर जाय ? तभी तो हमारे गुरु गोरखनाथ जी ने अपने नाथ-सम्प्रदाय का द्वार हर जात और हर मजहब वालो के लिये खोल दिया । कोई भेद-भाव न रखा । और अपने फटे कानो मे लटकते काले कुंडलो को छूकर—"कान फाड-फाड कर हमारे नाथ पीरो ने तो मुसलमानो तक को नाथ बना डाला, सतो !"—कहकर अपने सप्रदाय की उदारता के नशे मे अपने नशे को मिलाकर वे झूम उठे ।

फिर उधर से बगाल के एक वेदाती सत ने फरमाया—'वेदात से बढकर कोई उदार और व्यापक विचार आज तक ससार मे पैदा हो नही सका, सतो ! 'अहं ब्रह्मास्मि', 'एकोऽहं बहुस्या प्रजायेय ।' 'सर्व खल्विद ब्रह्म नेह नानास्ति किचन !' 'तमेव भान्तमनुभाति सर्व तस्य भासा सर्वमिद विभाति'—इत्यादि उपनिषदो के अनेक वाक्य वे नशे के जोर मे छोडकर उनकी थोडे मे व्याख्या भी करते बोले—"सतो, यह सारा जगत ही ब्रह्म है । जब उस ब्रह्म को एक से अनेक बनने की इच्छा हुई तो वह ब्रह्म ही यह सारा ससार बन गया । और जब सब ब्रह्म ही ब्रह्म है, तो जगत् के प्राणियो मे भेद-भाव कैसा ? किन्तु हमारा भारत का वेदान्त दर्शन केवल ज्ञान की गुन्थी मे ही उलझा रह गया । वेदान्त का सच्चा उद्देश्य तो आज रूस मे पूरा हो रहा है । वेदान्त का केवल ज्ञान पक्ख भारत मे रहा, उसका कर्म-पक्ख तो रूस मे अब प्रकट हुआ । कम्युनिस्ट लोग भी साम्म (म्य) वाद बोलता है, और हमारा भारतीय वेदान्त भी साम्मवाद बोलता है । साम्मवाद तो भारत मे जरूर-जरूर आने सकता है, सतो !"

बगाली सत अग्रेजी के भी जानकार थे, अत उनकी विद्वत्ता का सम्मान सभी करते । इस समय भी सब पर उनकी वाणी का असर खूब हुआ । इधर-उधर की बाते करके कुछ लोग तो नशे मे अवश हो निद्रा की गोद मे जा छिपे । किंतु एक निर्मला सत ने अपनी एकतारा सम्हाल कर ब्रह्मानद का पद अत्यत मीठे राग मे अलापना शुरू किया—

"उठ जाग मुसाफिर देख जरा वो तो कूच की नौबत बाज रही ।
सोवत-सोवत बीत गई, सारी रात गई, परभात भई,
सब सग के साथी लौट चले, तेरे नैनन नीद विराज रही !
उठ जाग... ."

पार्वती की प्रवाहमयी वाणी मे मिलकर, उन चट्टानो व सघन वनो से टकराकर बिखरता व गूंजता हुआ सगीत का वह स्वर मानो कुछ

क्षण के लिये वहाँ सचमुच जादू की वर्षा करने लगा। लेकिन कुछ देर बाद यह जादू मिट चला। सत गण अपने-अपने आसनो पर बिखर गये।

लेकिन ब्रह्मचारी आदित्य को नीद न आई। वह कुछ देर, कुटिया के ओसारे पर बैठा, अनुपम दृश्य देखने मे मग्न हो गया। पर्वत, नदी, जगल, कुए और गॉव—सब कुछ चॉदनी की सफेदी मे पुता हुआ प्रतीत हो रहा था। और उन दो कुँडो का गरम-गरम जल ताप के आवेग मे किस प्रकार आकाश मे उछल रहा था। उन उछलते जल-कणो से टकराती हुई चॉदनी ठीक उसी प्रकार एक धवल दीप्ति की सृष्टि कर रही थी जिस प्रकार लोहे से लोहा टकरा कर चिनगारियाँ पैदा करता है। और मणिकर्ण का गॉव पार्वती के दाँये तट पर पर्वत प्राचीर के आवरण मे बसा हुआ उस चाँदनी मे कितना सुन्दर दीख रहा था।

फिर उसे याद आई उन कुण्डो की उपयोगिता। मणिकर्ण गाँव के दर्जनो घर पडे इन कुण्डो पर किस प्रकार जी रहे है! यात्रियो से दान-दक्षिणा, और राजाओ से जागीर मे जमीने, और फिर चूल्हे-चौके के झझट से बहुत कुछ उन्मुक्ति भी! किस प्रकार ये पडे बर्तनो मे दाल-चावल रख, उन्हे ऊपर से ढक, निश्चित हो कुण्ड मे रख जाते है और कुण्ड की ताप कुछ देर मे ही उन्हे पकाकर तैयार कर देती है। और आटा पो-पोकर उम जल मे डालते ही किस प्रकार ऊपर उठ-उठ कर पूडियॉ सी छनने लग जाती है। प्रकृति के कोख से निकलती यह असाधारण गरमी एक साथ जीवन और मृत्यु से भरी हुई। क्योकि ब्रह्मचारी उन सतो से यह सुन चुका था कि जब यह कुटिया यहाँ बनी न थी, कु ड भी पक्का बना न था, तो आज के उस चिकने आँगन मे पत्थर के टुकडे बिखरे होते। और उन टुकडो पर पैर फिसलते ही जरा-सी असावधानी मे फिर उस कुड मे फिसलकर जाने कितने यात्री अपनी जान से हाथ धो डालते।

यह सयोग ही कहना चाहिये कि उसी समय दो कुत्ते गुर्राते और लडते हुए कुण्ड के पास आ पहुँचे। सबल कुत्ते ने दुर्बल कुत्ते पर इतने जोर का आक्रमण कर दिया कि वह सम्हल न सका ! कुण्ड के दहकते जल मे गिरते ही उसके मुख से केवल एक बार 'कॉय' की आवाज भर निकल सकी ! प्राण-पखेरू के उडते जैसे क्षण की भी देर न लगी !

ब्रह्मचारी झट दौडकर नीचे कुण्ड के पास पहुँचा। पहला कुत्ता ब्रह्मचारी की क्रुद्ध मूर्ति देखते ही भाग चुका था। लेकिन उस उबलती हुई लाश को निकालना कम आसान न था। लेकिन ब्रह्मचारी ने दूसरे सतो को बगैर जगाये ही लाठी की मदद से उस लाश को निकाल बाहर कर पार्वती की धारा मे फेक दिया। फिर वापस अपने आसन पर आकर बैठ गया। उस कुत्ते की इस प्रकार आकस्मिक मृत्यु से हृदय को जरा गहरी चोट लगी। इस समय यदि वह हमलावर कुत्ता मौजूद होता, ब्रह्मचारी बिना उसकी कचूमर निकाले शात न होता। लेकिन खेद कि वह अब मौजूद न था !

उसका आहत हृदय बार-बार उस कुत्ते को धिक्कार रहा था—"कमीने ! अपने ही भाई-बदो पर, अपनी ही जाति के एक दूसरे प्राणी पर, आक्रमण कर उसे इस प्रकार मृत्यु के मुख मे पहुँचाते तुझे जरा भी सकोच न हुआ ? तुझे जरा भी दया न आई ? छी ! छी !! छी !!!"

लेकिन दूसरे ही क्षण उसे लगा जैसे छी-छी का यह गोला उस कमीने कुत्ते पर न जाकर उसकी ही ओर लौटकर इतने जोर से फूट पडा कि मारे सकोच के उसका हृदय बिल्कुल गड गया, सिकुड गया ! बम के उस विस्फोट मे मानो जोर-जोर की आवाज मे वह बार-बार सुन रहा था—"ये कुत्ते आखिर पशु है ब्रह्मचारी ! न इनमे ज्ञान का गर्व है, न मनुष्यता का अभिमान और न सभ्यता का अहकार ही। फिर भी इनका यह व्यवहार तुम ज्ञानी और सभ्य मनुष्यो के व्यवहार से निकृष्ट तो नही ? निन्दनीय तो नही ? तुझ दम्भी मानव का खून से भरा हजारो वर्षों का लम्बा इतिहास मैं नही दुहराना चाहता ! पर द्वितीय विश्वयुद्ध

का उदाहरण तो बिल्कुल ताजा है, अभी ? जरा छाती पर हाथ रख, ठडे दिल से सोच तो ब्रह्मचारी, कि इस विशाल युद्ध मे लाखो निरपराध व निरीह मानवो की हुई हत्या, क्या उस नगण्य कुत्ते की हत्या से भी कम निन्दनीय है ? कम निकृष्ट है ? पर अफसोस ! और तुम्हारी मानव-बुद्धि और समझ का सबसे लज्जाजनक पर्यवसान यह कि इतिहास के पन्नो मे तुम इन्ही हत्यारो व हत्या की स्थिति पैदा करने वालो को बडे गर्व से याद किया करते हो ! तुम इन्ही को आदर्श पुरुष व महापुरुष का स्थान दिया करते हो ! छी, मानव छी ! छी ! छी !! छी !!!"

जाने दिल का कौन-सा देवता यह सब बोल गया, ब्रह्मचारी की समझ मे न आ सका । पर जो कुछ बोल गया उसके अक्षर-अक्षर मे जिस सत्य का व्यग्य बोल रहा था उसे समझने मे उसे जरा भी कठिनाई न हुई । रह-रहकर उसके मन मे मानो यह भी कोई कहने लगा—अपनी ही जात-बिरादर पर गुर्राने और भौकने का यह दुर्गुण कुत्ते ने मनुष्य की ही सगति से हासिल किया है ब्रह्मचारी ! क्योकि कुत्ता, मनुष्य के सम्पर्क और सगति मे आने से पहले भेडिया था यह विद्वानो का निश्चित मत है । और भेडियो मे यह दुर्गुण नही है । फिर यदि ऐसा सोचा और समझा जाय तो दोष क्या ? अपराध क्या ? सिर्फ इतना ही नही, दुर्बलो पर पूँछ तानकर टूट पडना, और सबलो के समक्ष दुम दबा, और दाँत निपोडकर भाग निकलना भी शायद उसने सभ्य मनुष्यो से ही सीखा है आदित्य ! और अतिरिक्त इसके मुट्ठी भर भात अथवा एक टुकडा रोटी पर ही अपनी दुम हिला-हिला अपनी पूरी वफादारी पेश करने, अपना दीन-ईमान बेचने और दूसरो पर गुर्राने का गुण भी तो तुम मानवो ने ही उसे दिया है ब्रह्मचारी ?"

ब्रह्मचारी के लिए तानेजनी के इन तीरो को बर्दास्त कर सकना बहुत कठिन बन गया । उत्तरोत्तर उसके मन मे घृणा व वितृष्णा का बवण्डर उठ रहा था । मन मिचला रहा था । उस तुच्छ घटना को भूलने के प्रयास मे मानो स्वास्थ्य के लिये ही वहाँ से उठकर कुछ दूर, बिल्कुल

पार्वती के किनारे एक शिला-खण्ड पर जा बैठा।

कुछ देर तक वह तट के चट्टानो से टकराती और बीच के शिला-खडो पर लुढकती व उछलती पार्वती की विक्षुब्ध धारा को चादनी मे नहाते देखता रहा! लेकिन मन को कुछ देर के लिये भी कसकर बाँध रखना आसान नही होता। वह कुत्ता-काड अब तक स्मृति-पट से बहुत-कुछ मिट चुका था, पर उसके मिटते ही झट दूसरी घटना साकार हो उठी थी। वह थी उन साधुओ के वार्तालाप की घटना। ब्रह्मचारी के समक्ष मानो साधुओ का बिल्कुल नया रूप प्रकट हुआ। साम्यवाद के प्रति उन की छिपी सहानुभूति किस प्रकार नशे मे एकाएक उबल और उघड पडी थी! मुफ्तखोरी व भिखमगी के जीवन के प्रति उन्हे भी कम घृणा न थी। और घृणा इसलिये थी कि इस मुफ्तखोरी मे शान और सम्मान न था। यदि दर-दर ठोकरे खाये बिना ही, हाथ फैलाये बिना ही मुफ्त की सारी चीजे इनके सामने आ जाती तो यह अपमान और वितृष्णा का भाव उनके दिल मे कभी नही आ पाता। क्योकि समाज के महान् मुफ्तखोरो के मन मे ऐसा भाव कभी पैदा नही हो पाता। ब्रह्मचारी के मन मे इन क्षुद्र मुफ्तखोरो के लिये सहानुभूति उत्पन्न हो गई। उसने सोचा कि समाज और सरकार यदि सबके लिये सम्मानजनक जीवन का साधन और अवसर प्रदान नही कर पाती, तो इन मुफ्तखोरो का अपराध क्या? और इस मुफ्तखोरी व भिखमगी के प्रति व्यर्थ का क्षोभ व वितृष्णा प्रकट करने से लाभ क्या? यदि यह मुफ्तखोरी सचमुच निंद्य और जघन्य है तो समाज का शायद ही कोई बडा व्यक्ति निन्द्य और जघन्य होने के अभियोग से बचा रह सके। पर बडे लोगो के हाथ मे अक्ल की लाठी, धर्म और कानून की लाठी होने के कारण वे इस अभियोग से बचे रह जाते है। और इस प्रकार वे इस कहावत को चरितार्थ करते रहते है—'जिसकी लाठी उसकी भैस।' यदि यह लाठी उनके हाथ न हो तो स्वय उन्ही के द्वारा निर्मित नियम और कानून दूनी और चौगुनी शक्ति के साथ स्वय उन्ही पर बरस पडे! उन्ही को घोर

अपराधी साबित कर डाले ! खैर ! परतु इन संत मुफ्तखोरो का एक गहरा अपराध ब्रह्मचारी की नजरो से छिपा न रह सका ! वह अपराध था इस मुफ्तखोरी के अपमान को चुपचाप बर्दाश्त कर लेना । बिल्कुल अकर्मण्य और कायर बनकर इस परिस्थिति को स्वीकार किये रहना ।

अब ब्रह्मचारी की दृष्टि कुछ और आगे बढी । उसे स्पष्ट दिखाई दे गया कि इन साधुओ मे भी वचको व वचितो का, निहित-स्वार्थियो व निरीहो का, शोषको व शोषितो का एक बडा वर्ग-भेद अवश्य मौजूद है । और यह स्पष्ट होते ही उसे वर्षो पहले की एक घटना याद आ गई ।

घटना बनारस की थी । गुजरात के एक साधु-सम्प्रदाय के आचार्य का विवाह बनारस के एक शैव-सम्प्रदाय के महत की कन्या से हो रहा था । यद्यपि उस आचार्य और महंत के सम्प्रदाय मे पूरब-पच्छिम का रिश्ता-नाता था, पर गद्दी-नशीन और धनवान होने की समानता तो थी ही । पर सबसे बडा आश्चर्य यह कि जब कि गुजरात के उस साधु-सप्रदाय के आचार्यो को बाकायदा ब्याह कर, जीवन के समस्त उपभोग भोगने की पूरी आजादी और इजाजत थी, उस सप्रदाय के हजारो शिष्य-साधुओ को इसके लिये न इजाजत थी, न आजादी थी ! उनके लिये अनिवार्य नियम था आजीवन ब्रह्मचारी बने रहने का । पर इन्ही ब्रह्मचारियो की बदौलत उस सम्प्रदाय की शान और सारी ठाठ-बाट थी । इन्ही की बदौलत उस आचार्य के पास करोडो की सम्पत्ति सचित हो सकी थी ।

अब ब्रह्मचारी आदित्य को वह बात भी याद आ गई जब इसी सम्प्रदाय के एक युवक ब्रह्मचारी ने बडी व्यथा और वितृष्णा से अकेले मे बताया था उसे—"मै उस समय निरा बारह वर्ष का बच्चा था ब्रह्मचारी जी, जब इस सम्प्रदाय की साधु-सेना मे मैं भरती किया गया । पर भरती करने का ढग कितने धोखे और दगे से परिपूर्ण था । लेकिन जब एक बार अपनी नाक कट गई तो दूसरो को नकटा बनाने मे कम मजा नही आता । क्योकि इसमे अपना दल और बल जो बढता है ? अपने सत्यानाश का असतोष दूसरो के सत्यानाश को देख-देखकर मिटा जो

करता है ? और तिस पर एक और बात यह कि ''

कहते-कहते ही उसके चेहरे पर शर्म की सुर्खी उभर आई । लेकिन झट सम्भलकर वह साहस करके बोल गया—"कितनी बेईमानी और शैतानी से भरा यह नियम है हमारे सम्प्रदाय का, कि आचार्य तो विवाह कर निर्धोक जिदगी के मजे लूटे, और शिष्यो को झूठ-मूठ के नियम मे बाँधकर उन उपभोगो मे वचित रखे ? हमारा सम्प्रदाय कोई अधिक पुराना नही, ब्रह्मचारी जी । यही कोई सो-डेढ सौ वर्ष पहले यू पी-पजाब की तरफ का कोई एक परम धूर्त, साधु बनकर जा पहुँचा गुजरात के भोले भाले लोगो मे । धूर्तो मे अक्ल का अभाव क्या भला ? और जब अक्ल का अभाव नही तो एक नये धर्म का जाल बुनने और फैलाते मे देर क्या भला ? वह क्या कम क्रोध की बात कि उस धूर्त ने एक परम सुन्दरी गुजराती युवती से विवाह कर अपनी गद्दी और विवाह का अधिकार केवल अपनी सतानो तक ही सीमित रखा, और शेष शिष्यो को दे मारा ब्रह्मचर्य और सयम का अधिकार ! तो मै साफ-माफ बता दूं आपसे, कि दूसरे भी तो आखिर उसी हाड-मास के बने मनुष्य है जिससे कि हमारे परम पूज्य परम आराध्य १००८ श्री आचार्य महोदय महाराज ! सो, मनुष्य की वासनाएं परितृप्ति चाहती ही है । और खासकर तब, जब आदर्श पुरुष स्वय एक उदाहरण बनकर उन वासनाओ को उत्तेजित कर रहा हो ? अतः इन शिष्य-ब्रह्मचारियो की वासना की परितृप्ति का उपाय कुछ होना ही चाहिये था । सो, अपने आचार्य महोदय के साथ वे युवक व प्रौढ ब्रह्मचारी, गाँवो मे भोले-भाले सुन्दर बच्चो के आगे जिस प्रकार अपने जादू का जाल फैलाते है, उसका नमूना सुन लीजिये जरा—'बालको ! गृहस्थ का जीवन तो साक्षात् नरक का जीवन है । यदि मानव-तन धारण कर गुरु और प्रभु के चरणो मे, गुरु और प्रभु के भजन मे अपने को न लगा दिया तो यह मनुष्य का जन्म ही वृथा । फिर तो उसी लख-चौरासी मे भरमते रहकर नरक मे सडते रहो ! बिगडते रहो !'

"इस प्रकार के उपदेशो का उन बाल-मनो पर बड़ा जल्द प्रसर होता है श्रीमान् जी ! ससार-सागर से तरने और मुक्त होने के लोभ मे बहुत जल्द इन पाखडियो के जाल मे वे जा फँसते है। और इस जाल मे फँसकर एक अनोखे नये नरक मे सडने और बिगड़ने के बाद न वे घर के रह जाते है, न घाट के ! फिर तो सिवा इस बिरादरी के बड़प्पन के विज्ञापन का साधन बन जाने के दूसरा कोई चारा ही नही रह जाता उनके लिए ! और सम्प्रदाय के लिए तो एक पथ दो काज ! पहले से पक्के ब्रह्मचारियो की वासना-पूर्ति के नये-नये साधन जुटते गये और दुकान की बढती भी होती गई।"

लेकिन अत मे उस ब्रह्मचारी ने गुस्से मे आकर मुट्ठी बाँधकर कहा भी था—"परन्तु मै इस जाल को आखिर काटकर रहूँगा ब्रह्मचारी जी ! जब नाक आखिर कट ही गई तो इस नकटेपन का लाभ न उठाने की मूर्खता मै नही कर सकता ! आचार्य महोदय से पढाई-लिखाई के लिए जो कुछ खर्च मिला करता है अभी उसे क्यो भावावेश मे आकर परित्याग दूँ ? यह तो और भी बडी मूर्खता होगी ! आचार्य महोदय सोच रहे होगे लडका पढ-लिख विद्वान् बनकर सम्प्रदाय का सम्मान बढायेगा, सम्प्रदाय के विज्ञापन का एक सबल साधन बनेगा ! किन्तु मै तो विद्वान् बनकर आचार्य महोदय को धत्ते दिखाऊँगा, धत्ते !"—कहते-कहते वह आवेश मे आकर उस समय भी अँगूठो के प्रदर्शन से बाज न आ सका।

ब्रह्मचारी आदित्यनाथ को उस सम्प्रदाय के उस नियम मे बहुत कुछ वही बात दिखाई दी जैसी कि किसी राजनीतिक दल के कुछ गिने-चुने लोग छल-प्रपच से सत्ता पर अधिकार जमा फिर अपने और अपने दल या वर्ग के स्वार्थ को मुख्य रूप से दृष्टि मे रखकर ही सारे नियम-कानूनो का निर्माण किया करते है। उस सम्प्रदाय के सस्थापक आचार्य ने धर्म की आड मे अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को मुख्यता देकर अपने और अपनी सतानो के लिए गृहस्थ-जीवन के सुख-भोग का विधान बनाया,

और शिष्यो के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य का ! और आचार्य की गद्दी के अधिकार को सीमित कर दिया केवल अपनी सतानो मे ।

इसी प्रसग मे ब्रह्मचारी को याद आ गई पजाब मे फैले एक गुरुपन्थी सम्प्रदाय की बात । उस सम्प्रदाय के धार्मिक और राजनीतिक इतिहास को पढकर उसे स्पष्ट प्रतीत हुआ था कि जब तीसरे गुरु के समय उस सम्प्रदाय की आर्थिक आय काफी बढ चली, प्रभाव काफी बढ चला, तो झट एक नियम बनाकर गुरु-गद्दी को गुरु-सतानो मे ही सीमित कर दिया गया । इस गुरु-पन्थ का प्रभाव उत्तरोत्तर बढता गया और आय भी उत्तरोत्तर बढती गई ! और तब इस गुरु-गद्दी को हथियाने के लिए स्वय गुरु-पुत्रो मे जो-जो कुत्सित षड्यन्त्र और जालसाजियाँ चलने लग पडी उन्हे पढकर ब्रह्मचारी के तो मारे घृणा से रोगटे खडे हो उठे थे !

पर्यटक होने के नाते जगह-जगह अनेक साधु-सन्तो के मुख से अनेक अन्य सम्प्रदायो के सम्बन्ध मे भी वह बहुत कुछ सुन चुका था । एक घुमक्कड नागा साधू ने उसे 'चोला-मार्ग' और 'बीज-मार्ग' नामक अद्भुत सम्प्रदायो के सम्बन्ध मे कुछ ऐसी बीभत्स बाते बताई थी जिन्हे सुनकर ब्रह्मचारी को मितली-सी हो आई थी ! 'गोप्या कुलवधूरिव' इस वामाचारी सिद्धान्त के अनुसार इन सम्प्रदायो की गतिविधियाँ सिवा अन्तरग सदस्यो के दूसरो से बिल्कुल गुप्त रखी जाती । चोला-मार्ग के अन्तरग सदस्य अपने निश्चित अड्डे पर निश्चित समय पर एकत्र होते । अड्डा किसी गुप्त-भवन मे होता । और उस गुप्त-भवन के गुप्त द्वार पर एक द्वारपाल खडा रहता । चोला-मार्ग की स्त्री-सदस्याएँ अड्डे मे पहले प्रवेश करती, और प्रवेश के समय अपनी-अपनी चोली उतारकर द्वारपाल के हवाले कर देती । इसके बाद आती पुरुष-सदस्यो के प्रवेश की पारी । वे प्रवेश के समय आँखे मूँदकर चोलियो के उस ढेर मे से किसी भी चोली को उठाकर आगे चल देते । जिस महिला की चोली जिस पुरुष के हाथ जा पडती, वह उस रात उसी पुरुष के साथ मद्य-मास-भक्षण एव

रमरण-विहार की अधिकारिणी मानी जाती !

पर बीज-मार्ग के सम्बन्ध की बात तो और भी बीभत्स थी ! किसी गुप्त-भवन मे एक भजन-मडप होता। और मडप के मध्य बीज-मार्ग के आचार्य एव आचार्यानी की पलग मच्छरदानी से ढकी रहती। आचार्यानी का स्थान ग्रहण करती अपनी पारी के अनुसार भक्त-मण्डल की कोई महिला। मडप के चारो ओर बैठे भक्त नर-नारियो का भजन-कीर्तन आरम्भ हो जाता, और उसके साथ ही मच्छरदानी की आड मे उस पलंग पर आचार्य और आचार्यानी की केलि-क्रीडा भी आरम्भ हो जाती ! फिर रस-बोध के चरम क्षरण मे आचार्य महोदय अपने पवित्र वीर्य को आचार्यानी के पवित्र गर्भाशय मे पडने से रोक झट उसे बाहर एक पवित्र प्याली मे गिरा छोडते ! और फिर उस पवित्र वीर्य को पचामृत मे मिलाकर उन भक्त नर-नारियो मे वितरित किया जाता ! और वे भक्त नर-नारी, पचामृत के सहयोग से अपने गुरु के उस पवित्र वीर्य का कुछ अश अपने गले से नीचे उतारकर गुरु के साथ तादात्म्य अनुभव करते हुए अपने को आचार्य की ही तरह जीवन-मुक्त माना करते ! क्योंकि अपने गुरु को वे जीवन-मुक्त ही माना किया करते !

इसी प्रकार भगवान् कृष्ण को आधार बनाकर समाज मे प्रचलित अन्य अनेक सम्प्रदायो की बाते भी उसे याद आ गईं। महाभारत मे भगवान् कृष्ण के सोलह सहस्र पत्नियो के होने की बात एव श्रीमद्भागवत मे गोपागनाओ के साथ उनके रास-विहार की बात भी ! ब्रह्मचारी विक्षुब्ध हो मन-ही-मन बोलने लगा—"इन धार्मिक ग्रथो मे भगवान् कृष्ण के इन अनैतिक अनाचारो के स्पष्ट उल्लेख से ही तो समाज के धूर्त अनाचारियो को आधार और सहारा मिलता है धर्म की आड मे अनाचार के अड्डो को स्थापित और सचालित करने का ? फिर समाज को क्या लाभ इन धर्मो से ? क्या लाभ इन धर्म-ग्रन्थो से ? और क्या लाभ ऐसे भगवानो से ? ···हाय रे मानव ! अपनी वासना एव स्वार्थ

की परिपूर्ति के लिए सदियो से तू कितने छल-छन्दो और छल-पन्थो का निर्माण करता आ रहा है ! और तेरे इन्ही छल-छन्दमय प्रयासो को विद्वान्-वृन्द कहते आये है मानव-सभ्यता की प्रगति और विकास !

हाय रे मानव ! तू कितना मूर्ख है ! और साथ ही कितना मक्कार !"

रात काफी बीत चली थी ! ब्रह्मचारी अब जाकर अपने आसन पर लेट गया ।

तृतीय खण्ड

ब्रह्मचारी आदित्य अब कुल्लू उपत्यका के एक अनोखे अचल मे जा पहुँचा था। चारो ओर की आकाश-चुम्बी चोटियो से घिरा हुआ एक छोटा-सा गाँव, दस-ग्यारह हजार फुट की ऊँचाई पर बसा हुआ, अपने-आप मे एक अचल, एक देश, एक प्रदेश! स्वतन्त्र भाषा, स्वतन्त्र वेश-भूषा, स्वतत्र रीति-रिवाज और स्वतत्र शासन-व्यवस्था जिसे अचलीय स्वातत्र्य कहा जा सकता है। अत वह गाँव कुल्लू उपत्यका मे होते हुए भी उपत्यका मे कतई अलग था! कतई स्वतत्र! मानो स्वय प्रकृति ही उसे ऊँची-ऊँची चोटियो के परकोटे से घेरकर उसके इस अचलीय स्वातत्र्य की सदियो से रक्षा करती आ रही हो!

उस गाँव मे, उस अचल मे आदित्यनाथ के प्रवेश का आज यद्यपि तीसरा दिन था, किन्तु जब आज सवेरे उसकी नीद खुली तो बीच के दूसरे दिन का उसका ख्याल बिल्कुल खो चुका था! उसे तो केवल प्रथम दिन की परिस्थिति का ही अभी ख्याल था। केवल इतना याद आ रहा था कि थकावट से चूर होकर वह सध्या को मदिर की धर्मशाला के बाहरी चौडे चौखट पर धोती मात्र ओढे और झोले को तकिया बनाकर लेट गया था। पर नीद कब आई उसे पता न चला। और यह भी अभी याद आ रहा था कि धर्मशाला का कमरा बिल्कुल राख के ढेर से पटा पडा था। अतिशय थकावट के कारण स्वय उसे साफकर कमरे के भीतर

सोने के लिए थोडी जगह बनाने की शक्ति भी जैसे खो चुकी थी । अत उसे कमरे के बाहरी चौडे चौखट पर ही सो जाना पडा था । और यह भी अभी याद आ रहा था कि उस अतिशय ऊँचाई की ठड मे रात काटने के लिए एक कबल अथवा पट्टू की तलाश मे दो-चार घरो के द्वार भी उसने खटखटाये थे, पर निराश होना पडा था । किसी ने रात भर के लिए भी कबल या पट्टू देने की दया या उदारता दिखाई नही थी ।

लेकिन इस क्षण सुबह-सुबह नीद खुलने और लेटे-लेटे ही चारो ओर दृष्टि दौडाने पर उस सध्या का वातावरण बिल्कुल बदला दिखाई दिया ! स्थान बिल्कुल बदला दिखाई दिया ! और दिखाई दिया केवल एक कमरा जिसमे घर-गृहस्थी की कुछ चीजे बिखरी पडी थी, पर कोई आदमी वहाँ न था । और जिस बिस्तरे पर वह सोया पडा था, वह बिस्तरा भी उसका अपना न था ! जिस कबल को वह ओढे हुए पडा था वह भी उसका अपना न था ! बिस्तरे के बिल्कुल बगल मे, और कमरे के ठीक बीच मे मिट्टी के चार-पाँच अगुल ऊँचे चबूतरे पर अलाव की धीमी-धीमी आग सुलगती दीख रही थी, और उस पर लोहे का एक तिपाया या चौपाया चूल्हा रखा हुआ था । और कमरे के एक कोने म काठ की एक छोटी सदूक धरी रखी थी । और अलाव के पास फूल की दो चम-चमाती थालियाँ, पीतल की छोटी-बडी दो हडियाँ, और लोहे की कडाही और कलछी और एक तवा तथा काँसे का एक टोटीदार लोटा और ताँबे का एक लम्बा घडा जिसके सिरे का कान गोलाकार मुडा हुआ था । काँसे की पेदी वाला एक हुक्का, और मिट्टी की एक चिलम, और लोहे का एक चिमटा भी ! और दीवार के एक किनारे एक अलगनी पर फटे-पुराने और मैले-कुचैले दो-चार सूती और ऊनी कपडे भी लटक रहे थे !

लेकिन यह हुआ कैसे ? वह यहाँ आया कैसे ? कब आया ? स्मृति पर बारम्बार जोर डालने पर भी उसे इस घर मे प्रवेश का समय याद नही आ रहा था । फिर जिस प्रकार किसी स्वप्न को देखते समय उस स्वप्न मे घटी घटनाओ की सत्यता की परीक्षा का विचार भी हमारे

अवचेतन मन मे उठ आता है, उसी प्रकार ब्रह्मचारी आदित्य के मन मे भी इस क्षण इस वातावरण और स्थान की वास्तविकता के सम्बन्ध मे उठे सदेह ने बार-बार कहना आरम्भ किया —"यह स्वप्न तो नही ? स्वप्न तो नहीं ?" और तब इस सदेहाकुर पर जैसे प्रहार करते हुए उस कमरे की निचली मजिल से अचानक किसी शिशु के चीखने और माँ के पुचकारने की आवाज़ बार-बार उसके कानो को छूने लगी। लेकिन शायद यह भी स्वप्न की करामात हो ! स्वप्न में भी दैनिक जीवन की छोटी-बडी घटनाएँ घटित होती प्रतीत होती ही है।

कमरे के दो ओर के चौडे दरवाजे खुले थे। उत्तर मे स्पीती-तिब्बत की सीमा पर हिम-मडित गिरि-शिखरो की शृ खला पूर्व-पश्चिम की ओर स्पष्टतया फैली दिखाई दे रही थी। लग रहा था जैसे श्वेत चादर को ओढे हुए दिगन्त का विराट, आकाश मे एकाकार हो सो रहा हो ! और पूरब की ओर 'रसोल' की गगनचुम्बी 'जोत' के पीछे से निकलते सूरज की बहुरगी रक्तिम किरणे ओस-कण-सिक्त देवदारु के घने काननो पर, और गाँव के हरे-भरे खेतो के गेहूँ के बालो पर बिखर-बिखरकर कुछ इस प्रकार चमक रही हो जैसे हरी पृष्ठ-सतह पर धीमी-धीमी बिजली की बिखरती बहुरगी रश्मियाँ ! और गाँव के दक्षिण-पूर्वी किनारे इन्ही सूर्य-रश्मियों की प्रभा से दीप्त देवदारु-तरुओ की कतारे भी उसी प्रकार चमकती-सी दिखाई दे रही थी !

इन दृश्यो को देखते हुए ब्रह्मचारी आदित्य अब तक उठकर बिछौने पर बैठ चुका था। फिर उसी समय गाँव के किनारे के देवदारु-तरुओ में मे उडकर 'की-क्यूँ' सी आवाज को कई बार दुहराते वृक्षान्तर पर जाते 'मुनाल' पछी की लम्बी पूँछ और परम सुन्दर रूप उसे दिखाई दिया ! नीले, काले, भूरे जाने कितने रगो की कूचियाँ फेर-फेरकर विधाता ने इस पक्षी के परो का निर्माण किया था ! लग रहा था जैसे मोर की जाति का ही एक विकसित सुन्दरतम लघु रूप हो यह मुनाल !

किन्तु इन सब स्पष्ट दृश्यो को देखते हुए भी आदित्य का मन अभी

शका-ग्रस्त बना ही रहा ! इस कमरे मे उसका प्रवेश 'क्यो, कब और कैसे हो सका' यह प्रश्न अब भी समस्या ही बना रहा ! यद्यपि अद्वैत वेदान्त का विद्वान् होने के नाते समस्त जगत् को, समस्त दृश्यमान् पदार्थो को मिथ्या, भ्रम मानते एव स्वप्नवत् समझने और देखने के उपदेश उसे कम याद न थे, किन्तु न तो वह जगत् को मिथ्या, भ्रान्त और स्वप्न माना करता, न जगत् के दृश्यमान् पदार्थो को ! और न इस क्षण इन समस्त दृश्यमान दृश्यो और पदार्थो को ही उसका मन स्वप्न का एक निरा इन्द्रजाल मानने को तैयार था !

फिर यह है क्या ? वह क्यो, कब और कैसे इस कमरे मे प्रविष्ट हुआ ? यह प्रश्न उससे बार-बार समाधान चाह रहा था। और तब उसी क्षण जैसे स्वय उस प्रश्न के समाधान के रूप मे निचली मजिलो की सीढियो से धीरे-धीरे ऊपर चढती साठ-बासठ की उम्र की एक वृद्धा एक दरवाजे से उस कमरे मे प्रविष्ट हुई ! लेकिन उसके कदम सहसा ठिठककर चौखट से पास रुक गये। ब्रह्मचारी आदित्य को बिछौने पर उस प्रकार बैठे देख शायद उसे कम आश्चर्य न हुआ ! और आदित्य की आँखे भी उस बुढिया को देखते ही फटी-फटी-सी रह गई ।

बुढिया के बदन मे सफेद ऊन का एक मैला-कुचैला लम्बा जामा उसके घुटनो तक लटक रहा था। और उसी रग का मैला-कुचैला तग पायजामा उसके टखनो तक ढके हुए था। और सिर के गगा-जमुनी बालो के अधिकाश को ढके एक अत्यन्त गदी ऊनी टोपी थी जिसके दोनो छोर कन-पट्टियो को ढाँकते कधो के ऊपर तक लटक रहे थे। और चेहरे पर झुर्रियो की सघन रेखाएँ, और गालो की पिचकी-उभरी हड्डियाँ, और आँखो की धँसी पुतलियाँ जैसे स्पष्ट जता रही थी कि जीवन की ज्योति अपनी प्रभाहीन सध्या के अधेरे मे प्रविष्ट हो चुकी है ! उसमे सदा के लिए खोकर निश्शेष होने जा रही है !

लेकिन उन छोटी-छोटी धँसी आँखो मे अचानक जैसे जीवन की, जीवन की खुशी की एक ज्योति जलकर उसके झुर्री भरे चेहरे पर चमक

उठी ! और आँखो की पुतलियो मे जैसे खुशी की ही ज्योति क्षण भर बाद ही अश्रु-कणो मे बदल चली ! जैसे चाँद की रोशनी मे कोई विकृत वस्तु अचानक सुन्दर बनकर चमकने लग पडी हो।

ब्रह्मचारी आदित्य के लिए यह बुढिया नई न थी। उसकी आँखो की वह चमक नई न थी। उस वृद्धा के साथ ही तो मणिकर्ण से 'मलाणा' नामक इस गाँव मे वह आया था। आ सका था। लेकिन बुढिया के आमन्त्रण के बावजूद उसके घर न जाकर उसने मन्दिर की धर्मशाला मे, मन्दिर का ही अतिथि बनने का निश्चय किया। कम्बल या पट्टू की तलाश मे मन्दिर के आस-पास के दो-चार घरो के द्वार खटखटाकर निराश होकर भी वह बुढिया के घर तनिक दूर होने के कारण न जा सका। लेकिन उस कमरे के दहलीज पर उस वृद्धा को खडी देख एकाएक उसने सोचा, शायद यही उसका घर है। वही इस घर की मालकिन है। किन्तु वह स्वय इस घर मे कब, कैसे और क्यो प्रविष्ट हुआ, इस क्षण भी इस सदिग्ध प्रश्न का कोई समाधान न हो सका।

लेकिन दूसरे ही क्षण वह वृद्धा ब्रह्मचारी के बिछौने की ओर बढकर उसके निकट बैठ अचानक फुफकार छोड रोते हुए जैसे इस प्रश्न का समाधान करते अति विह्वल स्वर मे बोलने लगी—"बाबा ! बाबा !! अब तू बच गया बाबा ! देवता मेरी विन्ती मान गया ! देवता का दया हो गया ! तेरा हाल देख मेरे को विश्वास न था बाबा, कि तू बच सकेगा ! तू फिर जी उठेगा ! हमारा 'जमल भगवान्' बडा दयालु, बडा, बडा दयालु बाबा ! मै अभी मन्दिर से ही लौट के आ रही हूँ बाबा ! जमल भगवान् को बडा मनाया ! बडा मनाया ! हाथ जोडकर विनती की—"हे जमलू देवता ! तू बडा दयालु ! बडा दयालु ! मेरे बाबा को बचा दे ! जरूर से बचा दे ! तब मै तेरे को बकरा भी दूँ, और भेडू भी ! सो, देवता मान गया बाबा ! अब तू जरूर से बच गया।"—कह कर बुढिया ने झट ब्रह्मचारी के पैर पकड और फिर माथा छूकर मानो मातृ-हृदय के निश्चल शुभाशीष के कवच से उसके नख से सिख तक को

सुरक्षित कर दिया !

ब्रह्मचारी का भ्रम अब भग हुआ। मन्दिर की धर्मशाला से इस घर मे प्रवेश का कारण अब स्पष्ट हो गया। लेकिन यह जानकर कि वह मृत्यु के मुख मे प्रविष्ट होकर वापस आया है, सहसा जैसे स्वय वह मृत्यु अपने जबडो को फैलाये बिल्कुल सामने खडी दिखाई दी। अनजाने मे घटित सर्पदश का विष महसूस नही होता, किन्तु किसी अन्य द्वारा उस दश की स्मृति करा देने पर वही विस्मृत विष बडे जोर से नसो मे फैलता हुआ महसूस होने लगता है। अक्सर प्राण तक ले छोडता है। बुढिया ने ब्रह्मचारी को इस तथ्य की याद दिला दी कि मृत्यु के जबडो के दाँत उस पर गड चुके थे। फिर तो उस मृत्यु-दश का जहर जैसे एकाएक उसकी नसो मे फैलता महसूस हुआ। उसे बडे जोर की बेचैनी महसूस हुई। वह बिछौने पर बैठा न रह सका। झट बेहोश हो बिछौने पर लुढक पडा।

अब फिर बुढिया के काटो तो खून नही ! आश्चर्य-चकित और विस्मय-विजडित हो क्षण भर फटी-फैली आँखो से देखती रहने के बाद उसने झट बिछौने पर जाकर ब्रह्मचारी के सिर को अपनी गोद मे थाम लिया। सिर से अपनी मैली टोपी उतार उसके मुँह पर हवा करती पुन· व्याकुल-विह्वल स्वर मे अपने 'जमलू देवता' को बार-बार मनाने लगी। मिन्नते करने लगी। वह गाँव आज बीसवी सदी के इस उत्तरार्द्ध मे भी आदिम सभ्यता—जगली और बर्बर—की स्थिति से आगे नही बढ सका। आदिम सभ्यता की सरलता और निश्छलता मे करुणा भी अपार और क्रूरता भी। बुढिया का हृदय अपार करुणा से उद्वेलित हो चला था। वह किसी भी कीमत पर अपने गाँव के अतिथि इस परदेसी को बचा लेना चाहती थी !

ब्रह्मचारी आदित्य यो भी कुछ दिनो से अस्वस्थ-सा रहा करता था। तिस पर उस रात मे दस-ग्यारह हजार फुट की ऊँचाई की ठड मे बिना पर्याप्त वस्त्र के खुले मे ही सो पडने के कारण एकाएक निमोनिया का

आक्रमण उस पर हो चला ! उसे पता भी न चला कि वह कब उस चौडे चौखट से लुढककर भीतर कमरे की राख मे जा पड़ा। दूसरे दिन सुबह बेहोशी की दशा मे कराहते हुए उस धूल और राख मे लथपथ, मृतप्राय हो वह पडा था। गाँव मे यह खबर जैसे बिजली की तरह अचानक फैल गई। एकाएक वहाँ भीड जम चली। लोग गुर, पुजारी और कर्मिष्ठ[1] के उद्देश्य से क्या-कुछ सुनाते किकर्तव्य-विमूढ हो खडे रहे।

उसी समय वह बुढिया भी उस भीड मे आ पहुँची। परदेसी को उस दशा मे पडा देख वह एक साथ जैसे करुणा, क्रोध और शोक से विक्षुब्ध हो भीड को ललकारते हुए बोली—"पापियो ! देवता का जरा भी डर नही ! परदेसी का यह हाल, और तुम लोग भीड जमाके तमाशा देख रहे हो। छी !"

इतना कहकर बुढिया ने आगे बढकर हाथ से परदेसी की नाडी, कपार, पेट और पेडू छूकर उनमे प्राण का स्पन्दन महसूस किया और झट अपने एकमात्र पुत्र 'खुड्डू' और भीड मे खडी अपनी पुत्री 'बुद्धी' को आदेश देती हुई वह बोली—"उठाकर ले चलो बाबा को अपने घर ! इस गाँव का लोग बडा पापी ! बडा पापी ! अगर जानती कि परदेसी की यहाँ कोई पूछ न करेगा तो अपने ही घर इसे जरूर से न ले जाती।"

इस प्रकार खुड्डू और बुद्धी की मदद से बुढिया उस परदेमी को बडे यत्न से उठाये अपने घर ले आई। किन्तु इस क्षण खुड्डू और बुद्धी घर मे मौजूद न थे। दोनो भाई-बहिन माँ के आदेश पर मुँह-अन्धेरे ही आज

---

१ 'मलाणा' गाँव की शासन-व्यवस्था मे गुर, पुजारी और कर्मिष्ठ का प्रमुख स्थान है। सारे गाँव की ओर से 'कर्मिष्ठ' पर अतिथि-अभ्यागतो की देख-भाल व सेवा-सत्कार की जिम्मेदारी होती है।

पास की एक 'जोत'[1] पर एक विशेष 'जड़ी-बूटी' की तलाश मे गये थे, ताकि ब्रह्मचारी के निमोनिया का अचूक इलाज किया जा सके ! पर उनके लौटकर वापस आने मे अभी काफी देर थी। और खुड्‌ की पत्नी 'खोणो' गाँव के अन्य नर-नारियो के साथ अपनी जीविका के निमित्त पाँच-छ मील दूर किसी 'जोत' पर जडी-बूटियो के सग्रह के निमित्त दो-तीन रोज पहले ही जा चुकी थी।

लेकिन दुबारा बेहोशी के बाद ब्रह्मचारी का होश भी अब धीरे-धीरे वापस आने लगा। उसकी आँखे भी खुली। और उन खुली आँखो मे प्राणो को वापस आया देख जैसे स्वय बुढिया के ही प्राण वापस आ गये। उस की आँखो मे पुन: खुशी के आँसू चमक उठे। उन आँसुओ के कुछ बूँद ब्रह्मचारी के चेहरे पर भी आ गिरे। मानो स्वय माँ का हृदय उनमे मिलकर आशीष और शुभेच्छा के रूप मे ब्रह्मचारी के चेहरे पर बिखर गया।

अपनी गोद मे रखे उस चेहरे पर वात्सल्य भरे नेत्रो को गडाकर दो-तीन बार ओठ बजा, पुचकार भरे स्वर मे वह यो बोली ज्यो कोई माँ अपने व्यथाक्रात शिशु को आश्वस्त कर रही हो—"तू फिकर न कर बाबा ! ये तेरा अपना घर ! अपना घर ! तू अच्छा हो जायेगा। जरूर से अच्छा हो जायेगा ! हमारा देवता बडा दयालु ! बडा दयालु बाबा !"

ब्रह्मचारी ने लेटे-लेटे ही बुढिया की आँखो मे देखा। उसके चेहरे को देखा ! उसकी गीली-गीली आँखो की भीगी-भीगी पलको मे मूर्तिमान मातृत्व को देखा। बाहर के नेत्र माँ और सतान के सम्बन्ध के नियामक नही होते। बाह्य नेत्रो मे हृदय को उतारे बिना उस सम्बन्ध का सौदर्य दिखाई नही देता। इस क्षण ब्रह्मचारी के नेत्रो मे उसका हृदय बडे वेग

---

१ पहाड़ की ऊँची शृंखला या भुज-दड को प्रदेश-भेद से जोत, धुरा, घाटा, डाँडा और भंज्याड आदि नामों से पुकारते हैं, जहां से आर-पार जाने का मार्ग भी निकलता हो।

से उतर आया। बुढिया के उस झुर्री भरे गन्दे चेहरे मे, और धसी-धसी छोटी आँखो मे, और ऊबड-खाबड अस्थियो वाले गन्दे गालो और बुढापे की निर्धूम अग्नि मे झुलसे ओठो के भीतर गन्दे दाँतो की रेखाओ मे मातृत्व के जैसे अनुपम सौदर्य की छवि उसे पूरे रूप मे दिखाई दी। यह छवि जैसे व्यवधानो की समस्त सकीर्णताओ से परे सीमाहीन आकाश की ऊँचाई पर आसीन हो उसे झाँक रही हो! यह केवल करुणा की करामात नही हो सकती! करुणा मे दूरी होती है, पर माँ के स्नेह मे कोई दूरी नही होती! कोई बाधा-व्यवधान नही होता! और बिना मातृत्व के सहयोग के किसी करुणा मे भी इतना सामीप्य और माधुर्य नही आ सकता!

ब्रह्मचारी स्वभावत. बडा भावुक था। मातृत्व के इस स्नेहिल आघात मे उसकी अवरुद्ध और शिथिल भावुकता अब अचानक यो उमड चली ज्यो ग्रीष्म की गरमी के आघात से पहाडो के पिघलते बरफ की जल-राशि से पहाडी नदियाँ एकाएक उमडकर अत्यधिक सवेग और सशब्द बन चलती है। उस सवेग भावुकता ने जैसे गले से निकलने के प्रयास मे उसमे बडे जोर की एक हिचकी ला दी। और फिर मानो झट उस रास्ते से मुडकर आँखो की राह बडे वेग से बाहर निकल चली। ब्रह्मचारी अश्रु गद्गद् स्वर मे बोल उठा—"माँ! माँ!! तू मेरी माँ!!! तू मेरी अपनी माँ!!!"

बुढिया का हृदय किसी याचित मातृत्व का भूखा न था। क्योकि उसके एक पुत्र भी था, और पाँच पुत्रियाँ भी! किन्तु दिन-रात मातृत्व से सजीवित और सुपुष्ट उसका हृदय भला कैसे इस सम्बोधन से अप्रभावित रह जाता! इस परदेसी अनाथ को अकस्मात् किसी कठिन रोग के भयानक जबडे मे फँसे देख आखिर उसका वह सुपुष्ट मातृत्व ही तो अत्यत व्याकुल हो उसे उस जबडे से निकालने के प्रयास मे जुट पडा था! पहले केवल करुणा आगे बढी थी। लेकिन बाद मे सामीप्य की सुश्रूषा और तत्परता उत्तरोत्तर उस करुणा को मातृत्व मे बदलने लगी थी! लेकिन

उत्तरोत्तर माँ बनकर उस परदेसी की सेवा मे लगी हुई भी उसे खुलकर 'बेटा' कहने का वह साहस न कर सकी थी ! आमतौर पर साधु-सन्तो को सबोधित करने के 'बाबा' इस शब्द से ही उसे सबोधित कर सकी थी ! किन्तु जब परदेसी ने स्वय उसे 'माँ' कहकर उसके व्यापक मातृत्व की महिमा को अपने माथे से लगा लिया तो द्विधा-बाधा और दूरी की वह दुर्बल दीवार क्षणमात्र मे ढहकर धूलिसात् हो चली, अब उसका कोई चिह्न भी कही शेष न रह गया !

सभ्यता-शिष्टाचार के उलझावो से रहित जगली जीवन की सरलता मे पैदा हुई और पली उस वृद्धा का सरल हृदय इस सबोधन से अचानक यो उद्वेलित हो उठा ज्यो किसी गिरि-शिखर के सहसा टूटकर किसी हिम सरोवर मे गिरने से बडे जोर का ज्वार उठ आता है ! वह झट झुककर ब्रह्मचारी के सिर को अपनी छाती मे छिपाते सहसा जोर से यो रो पडी ज्यो वर्षों से बिछुडी भूली सतान को अकस्मात् अपने अक मे पाकर कोई माँ सहसा 'हूक' मारकर रो पडती है । और फिर उसके दाढी भरे चेहरे को झट चूमकर भावना-विह्वल स्वर मे रोती-रोती वह बोलने भी लगी—"बेटा ! मेरे छै बच्चे ! अब सातवाँ तू ! तू यही रह बेटा ! अपनी बुढिया माँ के साथ अब यही रह ! यही रह !! अब कही मत जा बेटा ! कही मत जा !!..."

बुढिया, आदित्यनाथ को बेहोशी की दशा मे अपने घर ले आकर उसकी परिचर्या मे लगी-लगी ही करुणा और ममता से भरे हृदय से बार-बार बोला करती थी—"हाय भगवान् ! इस परदेसी की माँ बेचारी क्या सोच रही होगी । वह कैसे जी रही होगी । मै तो माँ हूँ भगवान् ! माँ के दिल को खूब जानती हूँ । खूब पहचानती हूँ ! इस अभागे की उस अभागी माँ पर दया कर भगवान् ! इस अभागे की जान बकसदे जमल भगवान् !"

इसके बाद उसका करुणा-विगलित सदिग्ध हृदय दूसरी दिशा मे भी सोचने लग पडा था—"शायद इस अभागे की माँ है ही नही ! इसीलिए

इस अभागे का कोई घर-द्वार भी नही। नही तो यह क्यो इस तरह मारा-मारा फिरा करता? क्यो इस तरह जगह-जगह की धूल फाँका करता?" और तब अत्यधिक करुणा से पसीज कर अपनी मैली आस्तीन मे आँखे पोछ वह पुन बोलने लग पडी—"हाय भगवान्! तू दुनिया मे किसी से भी उसकी माँ को न छीन! किसी को भी उसकी माँ से अलग न कर! तू इतना निरदई न बन भगवान्!··"

मानव-समाज की आदिम सभ्यता मे समाज पर माताओ का सर्वोच्च अधिकार शायद हृदय की इसी व्यापक ममता और करुणा से प्रसूत हुआ था! और जब आदित्यनाथ ने इस सरल, शुभ्र और विशाल मातृत्व के चरणो मे अपने को समर्पित कर दिया तो मानो उस मातृत्व की जिम्मेदारी भी अचानक बढ चली! आदित्यनाथ का सारा जीवन और जीवन का सारा भविष्य मानो एकाएक उस वृद्धा के समक्ष खडा हो गया!

परदेसी को अपने पास ही रखने के कुछ क्षण पहले के अपने वचन को याद कर उसे जीवन की भावी दुश्चिन्ताओ से उसे मुक्त करने के विचार से वह फिर बोली—"तू चिन्ता न कर बेटा। गुजारा जरूर से हो जावेगा!" और फिर उस छोटी घाटी की विभिन्न दिशाओ की ओर अगुलियो से सकेत करते हुए—"यहाँ जमीन! वहाँ जमीन! वहाँ जमीन!· तू चिन्ता न कर बेटा! गुजारा जरूर से हो जावेगा!"

और उसी क्षण खुड्ड और बुद्धि 'जोत' से ब्रह्मचारी की चिकित्सा मे अपेक्षित जडी-बूटी का सग्रह कर वहाँ आ पहुँचे! बुढिया खुश हो इस बार मातृत्व के द्विगुणित आवेग से दवा तैयार करने मे जुट पडी!

◇ ◇ ◇

ब्रह्मचारी आदित्यनाथ के मलाणा गाँव मे पहुँचने की कहानी यो है—

ब्रह्मचारी आदित्य कुल्लू मे रहते हुए 'मलाणा' गाँव के सम्बन्ध मे अनेक बार अनेक अनोखी बाते सुन चुका था। इस बीसवी सदी के मध्याश मे हजारो वर्ष पहले की सभ्यता को उस गाँव मे जीवित रूप मे

देखने की आकाक्षा उसकी प्रबल हो चली थी ! नृतत्त्व और समाज-शास्त्र की पोथियो मे आदिम सभ्यता के सम्बन्ध मे पढी हुई बातो को जीवन्त रूप मे उस गॉव मे देखने का उसका प्रलोभन यद्यपि काफी तगडा हो चला था, पर मार्ग के बीहड और जनशून्य होने की कठिनाई भी कम तगडी न थी । और तिसपर मलाणा घाटी को चारो ओर से घेरकर खडे गगनचुम्बी शिखरो से गुजरने वाले मार्गों पर अक्टूबर से मई तक हिमपात के कारण उनके अवरुद्ध हो जाने की कठिनाई ! पर अब जून के आरम्भ होते ही घाटी के मार्ग खुल जाते थे । मलाणा के लोग आस-पास की जोतो से जडी-बूटियाँ उखाडकर कुल्लू उपत्यका की 'जरी' और 'भुन्तर' की मडियो मे बेचने के निमित्त आने-जाने लग पडे थे । और उपत्यका के अन्य भागो के तीर्थों एव मेलो मे भी !

मणिकर्ण मे रहते समय 'पार्वती' की दूधिया सबल धारा ने ब्रह्मचारी के मन को मोह लिया था । इतनी सुन्दर नदी के उद्गम-स्थल तक पहुँचने की आकाक्षा उसमे जोर मारने लग पडी थी । अत. वह मणिकर्ण से पूर्वोत्तर दिशा मे पुलगा, और पुलगा से आगे खीर-गगा और खीर-गगा से आगे 'मानतलाई' तक पहुँचकर मानतलाई से पार्वती के निकलने का जीवन्त और प्रत्यक्ष दृश्य वह स्वय आँखो से देखना चाह रहा था ! लेकिन अचानक मणिकर्ण तीर्थ मे दो ऐसे यात्री उसे दिखाई दिये जिनकी वेश-भूषा और रग-ढग का मेल कुल्लू के निवासियो से न था । आकृति भी बहुत कुछ भिन्न थी । कुल्लू के निवासियो के चेहरो पर 'खस' एव 'वैदिक' आर्यों के खालिस या मिले-जुले रक्तो का ही प्राधान्य दिखाई देता, पर उन दो यात्रियो के चेहरो पर खस और किराती रक्त का समानुपात अथवा किराती रक्त की तनिक मुख्यता-सी दिखाई दे रही थी । और कुल्लू के अन्य निवासियो के पहिनावे से जामा और पायजामा मे बहुत कुछ साम्य होते हुए भी सिर की टोपी बिल्कुल भिन्न थी ! और उन दोनो के आपसी वार्तालाप की बोली तो कतई भिन्न ! ब्रह्मचारी अब तक कुल्लू की बोली से बहुत कुछ परिचित हो चुका होने के कारण इस भिन्नता को

स्पष्ट अनुभव कर रहा था। स्पष्ट लग रहा था जैसे उन दोनो की बोली कुल्लू की आर्य-परिवारी बोली से भिन्न किसी अनार्य परिवार की बोली हो।

ब्रह्मचारी के मन मे कौतूहल जाग उठा। उसने उन यात्रियो से पूछ दिया—"कहाँ घर है तुम्हारा ?"

"मलाणे !"—झट स्पष्ट जवाब मिला।

"किधर है मलाणा ?"

यात्रियो मे एक बुढिया थी और एक सुन्दर नवयुवक ! उस बुढिया ने झट दक्षिण-पश्चिम के कोने की दिशा मे ऊँचे पहाडो की ओर अँगुलियो को दौडाकर अपरिष्कृत मुस्कान मे ओठो को फैला, गदे दाँतो को दिखाते कामचलाऊ हिन्दी मे ब्रह्मचारी के इस प्रश्न का जवाब दिया—"उद्दर है बाबा ! बडा दूर ! बडा दूर ! बडा ऊँचा पहाड !"

"कितनी दूर है यहाँ से ?"

और इस प्रश्न के जवाब मे भी बुढिया ने अपने उसी जगली लहजे मे कहा—"दूर-दार तो मालूम नही बाबा ! तीन-चार तमाकू का रास्ता है इद्दर से !" और फिर दक्षिण की ओर अँगुलियो को दौडाकर—"और उद्दर 'जरी' से होकर तो और भी दूर ! और भी दूर बाबा ! आज 'भत्' (खाना) खाके चलो तो दूसरे दिन शाम को पहुँचो !" फिर तर्जनी को तान और आँखे फैलाकर उसी लहजे मे मुस्काते हुए—"एक 'बीसी' तमाकू का रास्ता ! बडा दूर ! बडा दूर बाबा !"

बुढिया अभी गेहूँ का मोटा-मोटा टिक्कड हथेलियो से पो-पोकर अतिशय ताप मे उछलते जल-कुण्ड मे डालती जा रही थी। और वे मोटी-मोटी रोटियाँ उस कुण्ड मे यो छन-छनकर उबलती जा रही थी ज्यो कडाही के गरम-गरम घी मे डाली हुई पूडियाँ ! उस कुण्ड के इस माहात्म्य के कारण ही तो मणिकर्ण कुल्लू उपत्यका का सर्वश्रेष्ठ तीर्थ बना हुआ है !

बुढिया द्वारा दिये जवाब को स्पष्ट करने के विचार से मणिकर्ण के एक पडे ने ब्रह्मचारी से कहा—"ये जगली लोग कोस और मील को

नही जानते ब्रह्मचारी जी ! रास्ता चलते-चलते जहाँ थककर बैठ तमाकू पीने लग जायँ वही इनका कोस और मील पूरा होता है !''—कहते-कहते वह हँस भी पडा। फिर पश्चिम-दक्षिण के ऊँचे पहाडो की ओर तर्जनी दौडाते हुए बोला—"उन्ही पहाडो के उस पार है मलाणा ! आठ-नौ मील होगा यहाँ से। पर रास्ता बडा कठिन है ! 'रसोल' की जोत की तीन-चार मील की चढाई और फिर उतनी ही उतराई, और फिर मलाणा नदी को पार करके दो मील ऊँचाई चढकर मलाणा गाँव मे पहुँचना होता है। बडी हिम्मत का काम है इस रास्ते मे जाना ! पर ये जगली लोग तो चार-पाँच बार के तमाकू मे ही इस रास्ते को पारकर यहाँ तक पहुँच जाते है ! किसी अनजान अकेले-दुकेले यात्री के लिए तो राह भूलकर जगल मे भटक जाने का खतरा भी है और जगलो मे बाघ-भालुओ की कोई कमी नही !"

गला खखारकर दूसरे रास्ते की व्याख्या करते दक्षिण की ओर तर्जनी दौडाकर वह फिर बोला—"इधर 'जरी' से तो आ ही रहे है आप ! जरी तक सात मील का रास्ता बिल्कुल आसान है। फिर जरी से उत्तर-पश्चिम की ओर जगलो के बीच से एक पगडण्डी मलाणे की ओर जाती है। सुबह चलो और शाम को पहुंच जाओ ! तेरह-चौदह मील की दूरी होगी लगभग ! वह रास्ता बहुत कुछ आसान तो है, पर अन्त मे करीब तीन मील की खडी चढाई बडी जानलेवा है ब्रह्मचारी जी !" फिर सुदूर पश्चिम-दक्षिण की ओर तर्जनी को तीर की तरह दौडाते हुए—"उस पार से एक दूसरा रास्ता भी है। 'नग्गर' से। वो भी तेरह-चौदह मील से कम दूर नही। नग्गर से, 'चन्द्रखणी' शिखर तक पूरब-उत्तर की ओर लगातार लगभग दस मील तक साँस फुलाते, ऊपर चढने, फिर चन्द्रखणी से लगभग चार मील की कडी उतराई उतरते मलाणे पहुँचो।' आप क्या मलाणे जाना चाहते है ब्रह्मचारी जी ?"

"हाँ ! इच्छा तो थी जाने की !"

"फिर तो हाथ सूखा कि जोगी भूखा ! रमता जोगी और बहता

पानी ही स्वच्छ रहता है। फिर तो रम जाइए कुछ दिन वहा भी! ये लोग अतिथि-अभ्यागतो की अच्छी खातिर करते है। अभी इनका साथ रहेगा तो राह भूलने की कठिनाई भी नही रहेगी। कभी-कभार बाहर से साहब लोग ही वहाँ आ जाते है। कुलियो और राह दिखाने वालो की एक फौज लेकर! आपको तो मुफ्त मे राह दिखाने वाले मिल गये! हो आइए! मौका अच्छा है!"

पडे की इस टिटकारी ने ब्रह्मचारी की मनोदिशा को मानतलाई की ओर से एकाएक मलाणे की ओर मोड दिया। पडे ने उस बुढिया से सिफारिश की, और ब्रह्मचारी ने भी साथ ले चलने का अनुरोध किया। बुढिया झट राजी हो चली! मणिकर्ण के श्री लक्ष्मीनारायण, श्री मुरलीधर और श्री नयनादेवी के मध्ययुगीन विशाल मन्दिरो के दर्शन करके बुढिया वायदे के अनुसार तप्त कुड पर वापस आकर अपने पीले गदे दाँतो मे मुस्काते हुए ब्रह्मचारी से बोली—"तो बाबा! तू चलेगा मलाणे? तो चल हमारे साथ!"

बाबा झट उन दोनो के साथ हो लिया। दिन के लगभग बारह बज रहे थे। छह-सात हजार फुट की उस ऊँचाई पर भी जेठ की दुपहरी कम कठोर न थी। चलते-चलते जैसे अन्दर के प्राण पसीना बन-बनकर उनके बदन से बिखर रहे थे। पहाडो की ऊबड-खाबड, ऊँची-नीची और टेढी-मेढी पगडडी, मानो पग-पग पर उनके दम यो खीचे जा रही थी ज्यो निर्जन बीहड मे पडा हुआ कोई अजगर अपनी साँसो के सहारे जीव-जन्तुओ को उत्तरोत्तर अपनी ओर खीचते उन्हे मुँह का ग्रास बना छोडता है। मलाणा के वे दोनो नर-नारी 'जरी' के बाजार मे जडी-बूटियाँ बेच उनकी कीमत से फिर मकई, मडुआ, गेहूँ और चावल खरीद लगभग पौन-पौन मन की बोरियाँ पीठ पर लादे आगे चल रहे थे। जरी से मणिकर्ण उन्हे आना पडा था किसी मन्नत को पूरी करने की खातिर। चलते-चलते वे रह-रहकर पीठ के बोझ को बगल की किसी निकली चट्टान से टिका तनिक खडे हो अपनी साँसो को सतुलित करने

का प्रयास करते। और कपार से अविरल बहते स्वेद-बिन्दुओ को अपनी मैली आस्तीनो मे पोछ-पोछकर विश्राम करने लग जाते। देवदारु जगलो से छन-छनकर आती हुई हवा का श्रमहारी सम्पर्क पसीने को कुछ क्षणो मे सुखाकर जैसे पुन उनमे प्राण भर देता!

अब वे 'छलाल' नामक छोटे गॉव मे जा पहुँचे। अधिकतर काठ की पाटियो की दीवार और फर्श वाले छोटे-छोटे दुमजिले घर थे जिनके स्लेटो से छाये आडे-तिरछे छप्पर दूर से, सुहावने दीखते हुए भी निकट भद्दे और ऊबड-खाबड लग रहे थे। और पहाड की ढाल पर बसे होने के कारण वे सीढियो की तरह एक-दूसरे पर चढे-से प्रतीत हो रहे थे। गाँव के किनारे पहाड के पेट से निकलकर स्वच्छ जल का एक चश्मा बह रहा था। और चश्मे के पास अखरोट का एक विशाल छायादार वृक्ष था, और अगल-बगल जगली खुमानियो के कई छोटे-छोटे पेड। और चश्मे के पानी को नाली मे बाँधकर तनिक नीचे वेग से बहने को छोड दिया गया था ताकि उसके सहारे नीचे एक झोपडी मे चलती पनचक्की को निरन्तर बल मिलता रहे। उस क्षण भी चलती पनचक्की की घर्र-घर्र आवाज लगातार सुनाई दे रही थी।

चश्मे के किनारे अखरोट की छाया मे पीठ के बोझ को उतारकर रखते हुए बुढिया अपने झुर्रीभरे थके चेहरे को मुस्कान से खिलाकर दाये हाथ को बार-बार हिला ब्रह्मचारी से स्नेह भरे स्वर मे बोली—
"बाबा! बैठी ले! आराम करी ले! रास्ता बडा खराब! बडा खराब!"

और ब्रह्मचारी भी मुस्काते हुए उस सस्नेह आदेश को स्वीकार कर उन दोनो की बगल मे एक शिला-खड पर बैठ गया। बुढिया के बेटे खुड्डू ने अपने जामे की जेब से तमाकू की गदी पोटली निकाली, मिट्टी की चिलम, और एक चीथडा, और एक छोटा-सा सफेद चकमक पत्थर और पाच-छह इच लबी लोहे की एक पतली नुकीली छड। गीली तमाकू मे सूखे तमाकू का चूरा मिलाकर पहले उसने चिलम भरी। फिर पत्थर के

टुकडे से चीथडे को भिडाकर उस पर लोहे की छड से प्रहार करते ही आग की चिनगारी फूटकर यो चमक उठी ज्यो आकाश मे अचानक बिजली चमक उठी हो ।

उस चिनगारी ने चीथडे को पकड लिया । और जलते चीथडे को चिलम पर रखकर चिलम की पैदी से मुँह भिडा, गाल फुना-फुलाकर वह लगातार दो-तीन मिनट यो दम खीचता रहा, ज्यो लुहार की धौकनी दम खीचती है । और देखते-ही-देखते उसके सुन्दर तरुण मुख से धुएँ का फौव्वारा अब यो छूटने लगा ज्यो नया कोयला डाले जाने पर रेल के इजन की चिमनी छूटने लगती है ।

धुएँ के कई भरपूर कश ले लेने के बाद खुड्डू ने गालो को खूब चिपकाकर खूब जोर का एक अन्तिम कश खीच दोनो ओठो को गोल बना आकाश की ओर 'सीऽऽऽ' करते धुएँ का जबर्दस्त फौव्वारा छोड चिलम को ब्रह्मचारी की ओर बढा दिया । पर ब्रह्मचारी ने तमाकू से परहेज का हवाला देते चिलम लेने से इनकार कर दिया ।

खुड्डू ने सहसा लाल हुई बडी-बडी आँखो की काली पुतलियाँ आश्चर्य से फैलाते हुए पूछा—"तू चिलम नही पीता बाबा ? साधू तो जरूर से चिलम पीता है !"

"सभी साधू नही पीता ! मै ब्रह्मचारी साधू हूँ !"—आदित्यनाथ ने तनिक हँसकर जवाब दिया ।

खुड्डू पुन चिलम के कश लेने लगा । और खुड्डू की माँ अपनी कमर से लपेटे मैले कपडे मे से गेहूँ का एक टिक्कड निकाल ब्रह्मचारी की ओर बढाते अकृत्रिम मुस्कान में गदे दाँतो को चमकाते सस्नेह स्वर मे बोली—"लेइ ले ! खाइ ले बाबा ! सुच्चा है !"

और ब्रह्मचारी ने इस स्नेहोपहार को भी अस्वीकार करते मुस्काते हुए कहा—"अभी तो मणिकर्णं से खाके चला हूँ माई ! भूख अभी नही है !"

बुढिया ने बगैर किसी शिकवा-शिकायत के उस टिक्कड को अपनी

कमर-पेटी मे सम्हाल लिया। खुड्डू जलती चिलम को अपनी माँ के हाथ थमा झट उठकर खुमानी के पेडो के नीचे जा पहुँचा। छोटे-छोटे पके पीले फल डालो से लटक रहे थे। गाँव के कई बच्चे पत्थर मार-मारकर फलो को गिराकर और लूट-लूटकर उनके स्वाद ले रहे थे। खुड्डू ने भी बच्चा बनकर पत्थर मारने शुरू किये। पाँच-सात मिनट मे ही अपने जामे के अगले पल्ले मे करीब आधा सेर पके फल बटोरे वह माँ के पास पहुँचा। अपनी 'कणाश' बोली मे माँ ने उसे कुछ आदेश दिया। और खुड्डू ने फलो से भरे पल्ले को ब्रह्मचारी के आगे करते सस्नेह आग्रह किया—"लेइ ले बाबा! खाइले!" और बाबा ने उनमे से पाँच-सात फल लेकर उनके आग्रह का सम्मान कर दिया! कुछ फल बुढिया ने खाये और कुछ खुड्डू ने। और शेष फलो को घर की सौगात के लिए कमर-पेटी मे सम्हाल लिया!

अब पीठ पर अपने बोझो को सम्हाल वे उठ खडे हुए! बुढिया दाये हाथ की अगुलियो को नचाते हुए फिर बोली—"चल बाबा! चल! रास्ता बडा खराब! चढाई बडा खराब!"

अब आदित्यनाथ उनके पीछे-पीछे उत्तरोत्तर आकाश की ओर चढती पगडडी पर चलने लगा! 'रसोल' नामक जोत तक की तीन-चार मील की चढाई कम जानलेवा न थी। पग-पग पर साँस फूल रही थी। अगल-बगल के विविध वृक्षो की घनी-घनी छाया सूरज की गरम-गरम किरणो से उनका बचाव अवश्य करती, पर छाया की शीतलता भी साँसो की तीव्र गति को सतुलित रखने मे समर्थ न थी। और कही-कही इस छाया के आवरण के हटते ही सूर्य-किरणे जैसे दूने वेग से टूट-टूटकर पसीनो के रूप मे उनके प्राण खीचने लग जाती! फिर छाया का सपर्क होते ही वे कुछ देर बैठ विश्राम करने और चिलम पीने लग जाते। जैसे जीवन के कठोर सघर्ष मे इन्सान रुक-रुककर विश्राम करते चलता है। और जीवन के आकस्मिक सुख-सौरभ की तरह बीच-बीच मे 'कुजा' (जगली गुलाब) की सफेद-सफेद फूलो से लदी कँटीली झाडियाँ अपनी

भीनी-भीनी खुशबू का अयाचित उपहार उन पर लुटा देती। मानो इस तथ्य की याद दिला देती कि जीवन की कँटीली झाडियो मे सुगन्ध भी है! सौदर्य भी है।

इन पहाडो मे ग्रीष्म ऋतु जैसे वसत को बन्दी किये अपनी प्रभुता पर मुस्का रही थी। मार्ग की चट्टानो पर उगी झाडियो मे तरह-तरह के फूल खिलकर सोरभ भरी मुस्कान लुटाये जा रहे थे। मुनाले आर पहाडी बुलबुल आदि पक्षियो के स्वर जैसे बन्दी वसत की स्तुति मे अचानक मुखर हो जाते। और उन स्वरो का जैसे साथ देते हुए झिल्लियो की झकार अचानक यो शुरू हो जाती ज्यो शहनाई के स्वरो मे तूती बोल उठी हो। फिर देवदारु तरुओ की मनभावन हरियाली शुरू हो जाती। लेकिन उन तरुओ के नीचे गिर-गिरकर ढेर हुए पत्तो पर चलने मे पग-पग पर फिसल कर गिरने का खतरा मौजूद था। उन दोनो मलाणा-वासियो के पैरो मे घास की चप्पल होने के कारण देवदारु के सूखे पत्तो पर क्या, बरफ पर चलने मे भी उनके पैरो का फिसलने से बचाव करती। पर ब्रह्मचारी के पैरो मे चमड़े की चप्पल होने के कारण वह कई बार फिसलने से बाल-बाल ही बचा। अत देवदारु की मन-भावन छाया के बावजूद उसके गिरे पत्ते जैसे परम संकट बन पैरो से उलझ रहे थे।

जगह-जगह विश्राम करते कुछ घटे बाद वे रमोल की 'जोत' पर जा पहुँचे। अतिशय ऊँचाई के कारण वृक्षो की दुनिया पहले ही समाप्त हो चुकी थी। अब थी केवल पिघले बरफो के नीचे से सद्य उगी हरी-हरी घासो की बिछी दरी पर जडी-बूटियो के रग-बिरगे फूलो की मनोहारी मुस्कान की सुषमा और मिली-जुली सुगध राशि का छन-छन-कर उडता और बिखरता हुआ सौरभ और सौदर्य!

अकस्मात् आदित्यनाथ का मन उस सौरभ और सौदर्य मे प्रफुल्ल यो झूल उठा ज्यो अगूरी शराब के मीठे नशे मे किसी शराबी का मन झूम उठता है। और सारी दुश्चिन्ता और थकान पल मात्र मे मिट

चलती है। जोत की ढलवान तनिक मैदानी थी। और कटु-कठोर चट्टानो के बजाय गीली-गीली मिट्टी पर हरी-हरी घासो की जैसे अत्यन्त कोमल कालीन बिछी हुई हो! वे उस कालीन पर लेटकर विश्राम करने लग पडे और जडी-बूटियो से खेलती हुई धीमी-धीमी हवा जैसे उनकी नस-नस मे सौरभ-सुधा का सचार करने लग पडी।

उस जोत से मलाणा गाँव की, और नीचे बहती मलाणा नदी की छवि स्पष्ट दिखाई दे रही थी। मलाणा गाँव की छवि बहुत कुछ यो दिखाई दे रही थी ज्यो पहाडो के नैसर्गिक किले बन्दी के बीच जैसे स्वय प्रकृति ने ही एक नगर का निर्माण कर दिया हो! और नगर से लगभग दो मील नीचे बहती नदी जैसे नगर की प्रकृति-निर्मित दुर्लंघ्य परिखा हो। पर्वतो के सकरे दर्रे से सघोष और सवेग गुजरती और टकराती उस नदी की सफेद धारा इस जोत से कुछ यो दीख रही थी ज्यो पाताल को फोडकर निकला हुआ कोई विशाल श्वेत अजगर सघर्ष के नशे मे अचानक तीव्र बनकर हुँकारते और फुफकारते हुए किसी शत्रु के पीछे दौडा जा रहा हो। क्योकि उसकी सरोष हुंकार की आवाज़ इस जोत पर भी बडे वेग से सुनाई दे रही थी।

खुड्डू उस जोत पर पहुँचते ही अपने गाँव की छवि की झाँकी मात्र से पुलकित हो उस ओर तर्जनी को दौडाते गर्वोच्छ्वासित स्वर मे ब्रह्मचारी से बोल उठा—"वो! वो देख! उद्धर देख बाबा! वो हमारा गाँव! वो मलाणा।" और फिर एकाएक नदी के पार के सीढी-नुमा ढलानी खेतो की ओर सकेत करते हुए—"और वो, वो देख, वो! वो हमारा खेत! वो हमारा 'दोध्रा'!"

'दोध्रा' का मतलब यानी दूसरा घर अर्थात् खेत की झोपडी। गाँव से दो-तीन मील की दूरी पर फैले खेतो मे किसानो की छोटी-छोटी कई मौसमी झोपडियाँ खडी थी। और उन खेतो के पास के पहाडो पर चरते भेड-बकरो के झुड कुछ यो दिखाई दे रहे थे ज्यो काले और सफेद रंग के पत्थर के असख्य खिले फूल जैसे जीवित बनकर चट्टानो पर चहल-

कदमी किये जा रहे हो ! और उन खेतो मे काम पर लगी हँसती-खेलती और गाती महिलाएँ कुछ यो दिखाई दे रही थी ज्यो धरती की गोद मे धरती के बच्चे मचल रहे हो। माँ की छाती से जीवन-रस को बटोरने के प्रयास मे वे लगे हो !

अब पगडडी मानो पाताल की ओर उतर चली। और सूरज पहाडो के उस पार से झाँकने लगा। जोत पर कुछ नाश्ता-पानी करके वे नीचे की ओर उतर चले। चलते-चलते बुढिया ब्रह्मचारी से बोलने लगी—"बाबा ! खाने वाला मुँह तो बढ गया, मगर खेत न बढा। बडा तकलीफ ! मलाणे मे खाने का बडा तकलीफ ! जोत पर अगर जड़ी-बूटी न होवे तो मलाणे का लोग भूख से मर जावे ! मर जावे बाबा !"

ब्रह्मचारी उनके कटोर जीवन की कुछ-कुछ झाँकी अब तक ले चुका था। मीलो दूर जरी के बाजार मे जडी-बूटी बेचकर वे दोनो माँ-बेटे पीठ पर पेट के सरजाम का कठोर बोझ लादे अभी दुर्गम पथ के मीलो का चक्कर लगाते अपने गाँव वापस जा रहे थे। लेकिन इस कठोर जिन्दगी के बावजूद उनके हृदय की स्निग्धता, सरलता और उदारता पर वह मुग्ध हो उठा था। बुढिया के मुख से सक्षेप मे ,उसके जीवन की कष्ट-गाथा सुनकर दुखी हृदय से चुप रह जाने के सिवा और चारा क्या था ?

दाये-बाये चक्कर काटती मानो पाताल-गगा को चूमने के प्रयास मे पगडडी उन्हे नीचे की ओर जैसे जबरन घसीटे लिये जा रही थी। नीचे के जबर्दस्त आकर्षण को जैसे पीठ के बोझ ने और भी जोरदार बना दिया था। जैसे पैरो के जोडो मे वह सारा बोझ शरीर की समस्त रक्त-राशि के साथ उतरकर उन्हे उत्तरोत्तर नीचे ठेल रहा हो। लेकिन अपने को सतुलित रखने के सघर्ष मे जोडो मे उन आघातो की पीडा को जैसे भूले, सतुलित पगो से वे उस भयानक ऊबड-खाबड पथ पर बढे जा रहे थे। जोडो का दर्द अवश्य था, पर ऊँचाई पर चढते समय के निरन्तर साँस फूलने के प्राणान्तकारी कष्ट से वे मुक्त हो चुके थे। जैसे जीवन की पगडडी कष्ट से सर्वथा मुक्त नही होती !

मलाणा नदी के किनारे वे आ पहुँचे। पर्वत की कठोर दीवारो के बीच से बहती वह नदी निकट से और भी भयानक लग रही थी। सफेद-सफेद फेनो को उगलती और दीवारो के बन्धन मे रह-रहकर उछलती और गरजती हुई वह नदी कुछ यो लग रही थी ज्यो शत्रु की बेडियो मे बँधा कोई क्रान्तिकारी कैदी उस बन्धन-व्यवधान को तोडने के प्रयास मे अपनी समस्त शक्ति को लगाये 'इनकलाब' के गगन-भेदी नारो से आकाश को कँपाये जा रहा हो!

सूरज पश्चिम के पहाडो के पीछे बिल्कुल जा छिपा था। नदी के दोनो बगल की ऊँची दीवारो के अवरोध मे दिन की बची-खुची रोशनी भी जैसे अन्धेर मे बदल चली थी। और उन्ही दीवारो के अवरोध मे चतुर्दिक के दृश्य भी ओझल हो चले थे। नदी पर स्थित लकडी के काम-चलाऊ पुल पर सम्हल-सम्हलकर पैरो को रखते वे मिनटो मे उस पार जा पहुँचे। और अपने गाव और अपनी घाटी की सीमा मे प्रविष्ट होने की खुशी जैसे दोनो माँ-पुत्र के चेहरो पर चमक उठी। अब उनके कदमो मे भी जैसे वह खुशी प्रविष्ट हो चली। अब दिन की गरमी भी समाप्त हो चली थी। गाँव तक पहुँचने की लगभग दो मील की बडी चढाई भी जैसे उनके लिए अब आसान बन चली।

पगडडी के किनारे के खेतो मे गेहूँ की फसल अब पकने की ओर बढी जा रही थी। उस फसल की ओर सकेत करते बुढिया ब्रह्मचारी से बोल रही थी—"साल भर मे यही एक फसल बाबा! इस सावन मे बीजो और दूसरे सावन मे काटो! बडा तकलीफ! मलाणे मे बडा तकलीफ बाबा!"

खेतो मे खडी तरुणिया तनिक कौतूहल भरी आँखो से इस तरुण, दढियल और सफेद-पोश ब्रह्मचारी को देख अपनी 'कणाश' बोली मे बुढिया से कुछ पूछ भी देती। जाने क्या-कुछ कहकर बुढिया उनका समाधान कर देती! खेतो मे खेलते हुए बच्चे ब्रह्मचारी की ओर बदरो की तरह मुँह बनाकर फिर आपस मे खिलखिला पडते।

गाव अब फर्लांग भर दूर रह गया। गाँव के मकान ऊपर मे नीचे तक खालिश लकडी के बने अधिकतर चौमजिले थे। कुल्लू के मकानो से वे स्पष्टत शानदार लग रहे थे। पगडडी के किनारे एक देवदारु की छाया मे पहुँचते ही बुढिया ने ब्रह्मचारी को आदेश दिया—"बाबा! तेरा जूता चमडे का! हमारा देवता बुरा मानता है। अपने जूते को तू इसी पेड पर लटकाइ दे! फिर चल गाव मे!"

इस आदेश पर ब्रह्मचारी को कम आश्चर्य न हुआ! और उसके आश्चर्य को दूर करते वृद्ध ने झट स्पष्ट किया—"बाबा! हमारे गाँव मे सिरफ भेडू और बकरी का चमडा ही जा सकता है! देवता का हुकुम है। चमडे का जूता कोई नही पहनता। तू लटका दे इस जूते को! नीचे मे रखने मे कुत्ता-सियार उठा ले जायगा! यहाँ का आदमी किसी दूसरे की चीज को नही छूना चाहे सोना-चाँदी जमीन पर फेक दो!" —और इतना कहकर उसने स्वय ब्रह्मचारी के चप्पलो को पेड की एक टहनी से लटका दिया!

वे गाँव मे प्रविष्ट हुए। गाँव के बीच मे जमलू एवं अन्य सहयोगी देवताओ के कई बडे मन्दिर खडे थे। और मदिर का आँगन काफी चौडा और चौरस था। आँगन के एक किनारे काफी बडी धर्मशाला थी। ब्रह्मचारी ने कुल्लू-उपत्यका मे इतनी बडी धर्मशाला और ऐसे मन्दिरो वाला ऐसा गाँव अभी देखा न था।

अँधेरा-सा हो चुका था। बुढिया ने आडबर-हीन निष्कपट स्वर मे ब्रह्मचारी से कहा—"मेरा घर उस किनारे बाबा! अगर तू मेरे घर रहना चाहे चल मेरे साथ! अगर देवता के पास रहना चाहे जा उस धरमसाला मे! दाना-पानी का इतजाम यहाँ हो जावेगा!"

और ब्रह्मचारी, मन्दिर की धर्मशाला मे रहना ही बहतर समझकर धर्मशाला की ओर बढ चला। और बुढिया चल पडी अपने पुत्र के साथ अपने घर की ओर।

◇ ◇ ◇

बुढिया के प्यार भरे उपचार एव जगली जडी-बूटियो की चिकित्सा ने ब्रह्मचारी आदित्य को बहुत जल्द चगा कर दिया। मातृ-स्नेह का यह अनुपम सपर्क अनुभव करने का जैसे उसके जीवन का प्रथम अवसर था। अपनी जन्म देने वाली माँ से वह बचपन मे ही हाथ धो चुका था। और मातृ-स्नेह से वचित होने के कारण ही शायद उसे घर से निकलकर इस विरक्त साधु-जीवन को अपनाना पडा था। मानो उसी मातृ-स्नेह की तलाश मे अब तक दर-दर की खाक छानते उसने अचानक अनायास इस आदिम युगीन जगली जगत् मे उसे प्राप्त कर लिया! मानो यह सबसे बडी उपलब्धि हो उसके जीवन की! निश्छल सरल स्नेह के आदान-प्रदान से विहीन मानव-जीवन का मूल्य क्या? अत शरीरत काफी स्वस्थ हो जाने के बावजूद इस स्नेह-बन्धन के घेरे से निकल चलने को उसका मन तैयार नही हो पाता!

उसके स्वास्थ्य को उत्तरोत्तर सुपुष्ट बनाने की उत्सुकता मे वह वृद्धा उस जगली जगत् मे उपलब्ध होने वाले विभिन्न पुष्टिकारक खाद्य-पदार्थ जुटाकर अपने हाथ से तैयार करती। भोजन के वक्त स्वय उसके सामने बैठ सस्नेह आग्रह से उसे बार-बार परोसा दे-देकर पुचकारा करती—"जरा और खाइ ले बेटा! जरा और! तेरे मुँह पर अब भी खूब खून न उठ सका! जरा और खाइ ले! जरा और!...."

ब्रह्मचारी इस स्नेह के अतिशय से जब-तब मन-ही-मन तनिक खीझ भी जाता। पर दूसरे ही क्षण कृतज्ञता के उच्छ्वासो से आन्दोलित हुए बिना भी न रह पाता! कब मिला था जीवन मे ऐसा स्नेह उसे? और स्नेह से बढकर कौन-सी वस्तु मूल्यवान होती है इस मानव-जीवन मे? जगली जीवन की निष्कपटता से प्रसूत उस स्नेह मे शिष्टाचारिक कृत्रिमता की कुरूपता का लेश भी उसे महसूस न हो पाता! और तब मन-ही-मन मानव-सभ्यता के जटिलता भरे विकास पर और उसके शिष्टाचारिक छल-छन्द पर उसका मन घृणा से घूर्णित भी हो जाता। हजारो वर्ष पहले के आदिम मानव समाज की सरल शुभ्र सभ्यता जैसे स्वय

उसके मन मे उभर कर आधुनिक मतिशील सभ्य समाज पर व्यग भरे तीखे तीरो की बौछार करने लग जाती ! और तब एकाएक स्वामी सत्यकेतु, वीरेन्द्र वर्मा, प० हीराचन्द्र और अमीरचन्द्र एव लाला रामनाथ वकील आदि सैकडो सभ्य सफेद-पोश उसकी नजरो मे उभर आते ! और अपनी किशोरावस्था के स्वस्थ-सरल रक्त से प्रफुल्ल मुखमण्डल पर सहृदयता की छवि लिये महेन्द्र भी आँखो मे आ प्रकट होता ! और तब उसका हृदय बार-बार बोलने लग जाता—"मनुष्य कितना सुन्दर है ! और साथ ही कितना कुरूप ! सरलता मे ही जैसे मानव का सौंदर्य हो, और उसकी सभ्यता एव ज्ञान के आडम्बर मे जैसे कुरूपता, कुरूपता का गदापन और दुर्गन्ध !"

ब्रह्मचारी को खाने-पीने के लिए बकरी और गाय का दूध और घी, मक्खन मिलता, और घर मे पाली हुई मधुमक्खियो का ताजा-ताजा शहद ! इन चीजो के अपने घर मे न होने पर बुढिया गाँव के दूसरे घर से खरीद ले आती। कुल्लू के अन्य स्थानो मे द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद हर वस्तु की तरह इन चीजो की कीमत भी अत्यन्त बढ जाने के बावजूद मलाणा गाँव की सीमा मे सनातनी मोल-भाव बदस्तूर कायम था। केवल दो आने मे पूरे छह छटाक घी, और छह छटाक शहद, और छह छटाक ऊन प्राप्त करना जमलू भगवान् के कानून द्वारा स्थिर और उचित ठहराया गया था ! मानो भगवान् के कानून के डडे के डर से उस गाँव मे मुद्रा-स्फीति प्रवेश का साहस न कर पा रही थी ! और मुद्रा-स्फीति के जनक बनियो की दुर्गन्ध उस गाँव मे न थी।

बुढिया आदित्यनाथ के चेहरे पर उत्तरोत्तर खिलती रक्ताभा को देख-देख कुछ यो खुश हो रही थी ज्यो किसी बिरवे को प्रतिदिन सीचने वाले का मन खुश होता है उसकी दिनो-दिन बढती हरियाली और वृद्धि को देख-देखकर। अपनी धर्म-माता के आग्रह पर आदित्यनाथ ने अपनी लम्बी दाढी-मूँछे कटा डाली थी। क्योकि सरसो के तेल से एक दिन स्वय ही अपने हाथो उसके बदन की मालिश करते समय

बुढिया ने मुस्काते हुए कहा था—"अब तू दाढी-मूँछ कटाइले बेटा ! अब तो तू साधु नही !" और फिर अपनी स्नेहिल छाती को हथेली मे दो-तीन बार ठोकते हुए—"अब तो तू मेरा बेटा ! मेरा बेटा !" और बुढिया के आदेश एव ब्रह्मचारी की सहमति पर उसी समय खुद्दू ने कैंची से उसके सिर के लम्बे बाल और लम्बी दाढी-मूँछे काट भी डाली थी। क्योकि गाँव मे कोई पेशेवर नाई न था। आपस मे वे खुद ही एक-दूसरे के बाल काटा करते।

बालो के कटते ही आदित्य का चेहरा जैसे एकाएक बदल चला ! जैसे एकाएक उसकी उम्र मे दस-पाच साल कम हो चले ! और तिस पर नव-स्वास्थ्य का अरुणाभ सौंदर्य ! मानो ग्रीष्म की गरमी मे झुलसा कोई पौधा वर्षा की सरसता मे भीग-भीगकर लहलहाने लग पडा हो ! खूब आकर्षक और अभिराम बन चला हो ! और जिस प्रकार खिला हुआ फूल और नव-पल्लवो मे लहलहाते पेड-पौधे हर व्यक्ति की आँखे बरबस खीचते है, उसी प्रकार ब्रह्मचारी का नव-स्वास्थ्य और तारुण्य का लहलहाता सौंदर्य भी सबका ध्यान अब खीचने लगा। गाँव की तरुणियो के नेत्र भी अब तटस्थ न रह सके ! ब्रह्मचारी को देखते ही उनके ओठो पर जादूभरी मुसकान की आभा खिले बगैर न रह पाती। ब्रह्मचारी को लक्ष्य बना वे आपस मे ठिठोलिया करने मे भी बाज न आती !

मलाणे का नारी-सौंदर्य यो भी लाजवाब ! तिस पर ये जादूभरे इशारे ! लेकिन ब्रह्मचारी इन इशारो का जवाब कुछ न दे पाता ! किंतु उसके हृदय मे अचानक उभरी उत्तेजना अवश्य एक खरोंचा उसे मार-मार जाया करती ! सोई हुई आकाक्षा जैसे एकाएक सुगबुगाने लग जाती ! हर प्रतिभावानो की तरह उसमे भी वासना की कमी न थी। पर प्रतिभावानो की ही तरह उसमे उस वासना को दबाने की क्षमता और सामर्थ्य भी मौजूद थी। और सबसे अधिक, अर्थ की धुरी पर चलने वाले समाज मे अर्थोपार्जन की रुचि एव कौशल के अभाव ने उसे उस ओर से विरक्त होने पर मजबूर कर दिया था।

लेकिन अब तो उसका मानो पुनर्जन्म हो चला था ! और बुढिया भी उसे अपने पास बाँध रखने के विचार से अक्सर उससे आग्रह किया करती थी, "तू अब ब्याह कर बेटा, ब्याह। तेरे लिए बहू मै खुद ढूँढ दूँ ! खूब अच्छी ! खूब सुन्दर ! तू ब्याह अब जरूर से कर बेटा !" और ब्रह्मचारी जवाब मे जैसे हृदय के उभरे सकोच को बाहर फेंकते हुए केवल तनिक जोर से हँस देता। और बुढिया अपने झुर्रीभरे चेहरे पर मानो मातृत्व के स्नेहिल अधिकार की आभा चमकाकर मुस्काते हुए उसे मीठी फटकार जता देती—"मूरख ! अब तू बाबा थोडे ही रह गया जो ब्याह करने मे कोई शरम ? कोई लाज ? अब तो तू मेरा बेटा ! मेरा बेटा !" इस प्रकार के प्रेरणा भरे आघातो से उसके हृदय मे सोया हुआ काम-पशु जैसे धीरे-धीरे चेतना की ओर अग्रसर होने लगा।

मलाणे मे सभ्यता का विकास अभी प्रथम अवस्था से आगे नही बढ सका। स्त्री अगो मे सकोच का अधिकार भी अभी जननेन्द्रिय से आगे नही जा सका ! तरुणियो की सुपुष्ट एव कसी-उभरी छातियाँ तक जैसे सकोच की कैद से मुक्त हो। स्नानादिक साफ-सफाई के अभाव मे भी चमकीले गेहुँआ रग वाले कसे-तने स्वस्थ शरीर मे खुली-खिली वे छातियाँ कुछ यो लगा करती ज्यो पालिश किये हुए शिला-फलक पर पत्थर के दो खूबसूरत और सजीव फूल खिल उठे हो ! ब्रह्मचारी अपने सकोच-सस्कार के कारण उन फूलो को देखने मे कम सकोच अनुभव न करता। पर जैसे जगल मे खिले फूलो का सौदर्य और सुगध जगल के पशु महसूस नही कर पाते, उसी प्रकार उस जगली समाज के लोगो मे भी जैसे उन फूलो के महत्व और मूल्य का अकन केवल भावी शिशुओ को दूध पिलाने तक ही सीमित था ! अथवा वे उभरती और उभरी हुई छातियाँ तारुण्य के प्रमाण-पत्र के रूप मे प्रकट हो उस स्त्री की केवल सभोग योग्यता को जता देती। पर यौवन के उस खुले प्रमाण-पत्र को निरखने मे जैसे वासना को जगाने की क्षमता न थी वहाँ !

कहते है कि जापान जैसे सभ्य देश की तरुणियाँ तक पुरुषो के समक्ष

बिल्कुल नगी हो नहाने-धोने मे सकोच अनुभव नही करती। पर यह भी कहा जाता है कि उस समय उनके नग्न अगो की ओर पुरुषो का घूर-घूरकर देखना अच्छा नही माना जाता। सो, जब कभी मलाणा की तरुणियो की उभरी-नगी छातियो पर ब्रह्मचारी के सतृष्ण नेत्र निबद्ध हो जाया करते तो उन तरुणियो मे अचानक तनिक लज्जा अथवा झेप का भाव भी पैदा हो जाता। वे उन्हे जामे के पल्लो मे छिपाने का प्रयास भी करने लग जाती। क्योकि आखिर लज्जा और पर्दे का प्रादुर्भाव हुआ ही है मनुष्य की इन्ही प्रवृत्तियो के आधार पर! और इसी लज्जा एव पर्दे के आधार पर आरभ हो चला सभ्यता का उत्तरोत्तर विकास!

मलाणे मे विवाह-बधन मे कोई दृढता नही है। विवाह कोई समस्या नही है। और न ही सभ्यता के उलझावो से उत्पन्न यौन-जीवन की जटिलता है और न फ्रायडीय मनोविश्लेषण की जटिलता के प्रवेश का अवकाश या अवसर! केवल रोटी का सघर्ष और केवल जीने का। यौन-जीवन का आकर्षण और उन्माद भी अचानक यो प्रकट होता है जैसे जडीभूत हिम-नदी से कोई नदी या नाला! किसीके इश्क मे घुल-घुलकर मरने और हाय-तोबा मचाने की समस्या वहाँ है ही नही। अतः ब्रह्मचारी के लिए वहाँ पत्नी मिलने की कोई कठोर समस्या न थी। पर रोटी का सघर्ष और उस सघर्ष पर आधारित जीवित रहने की समस्या कम कठोर न थी! क्या अपने को उस जीवन मे वह खपा भी सकेगा? क्या रोटी के सघर्ष के उस परम कठोर जीवन को अपना भी सकेगा? दाम्पत्य जीवन की आकाक्षा पैदा होते ही वह इन प्रश्नो पर विचार करने लग जाता।

ब्रह्मचारी अब अक्सर खुड्ड के 'दोग्रे' भी जाया करता। खुड्ड के खेतो मे जब-तब शारीरिक श्रम द्वारा अपनी योग्यता और क्षमता को परखने का वह प्रयास भी किया करता। लेकिन उसके उस श्रम-प्रयास पर पडोस मे अपने-अपने खेतो मे कार्यलग्न स्त्रियाँ और विशेषकर

तरुणियाँ ठठा-ठठाकर हँसा करती। उसका मजाक उडाया करती। लेकिन फिर भी वह परीक्षा के इस प्रयास मे हल्के ढग से लगा ही रहता।

एक दिन एक सुन्दरी तरुणी ने हँसकर मुस्कराते हुए ब्रह्मचारी से मजाक भी किया—"बाबा! पहले तू ब्याह कर! फिर खेती! एक ऐसी औरत से ब्याह कर तू, जो तेरा खेत भी सम्हाले, और तेरे को भी! तेरे को भी कमाके बैठा-बैठा खिलाया करे!"

और तब एक दूसरी तरुणी भी ठुमकते हुए हँसकर उस प्रथम तरुणी की ओर तर्जनी करके बोल उठी—"बाबा! तू इसी से ब्याह कर! अभी उमर एक 'बीसी' भी नही हुई, मगर दो-दो मरद को देख चुकी। अब तीसरा भी कर चुकी है। अब तू इसका चौथा बन जा बाबा! चौथा! कमाके खूब खिलावेगी तेरे को! बीस रुपिया ही तो हरजा देना पडेगा। सो, अभी करज लेके बाद मे जडी-बूटी बेच के चुका देना। इसके मरद का खुसामद करना तो हरजा बीस रुपिया से ज्यादा देना न पडेगा!"

वह प्रथम तरुणी शायद तनिक लज्जित हो अपने खेत की ओर दूसरी तरुणी को लिये हुए भाग चली। और तनिक फिर-फिरकर ब्रह्मचारी को मुस्काते ओठो और कनखियो से देखती भी गई। मानो वह जान-बूझकर जादू के तीर छोडती गई हो। मानो वह स्वय स्पष्ट रूप से यह जताती गई हो कि यदि तू मुझसे ब्याह कर ले तो खेतो मे न तुझे मेहनत करने की जरूरत और न रोटी के सघर्ष मे पडने की। और मलाणे की यह प्रथा भी उसे मालूम हो चुकी थी कि एक पुरुष को छोड़ किसी नये पुरुष को अपनाने पर हरजाना केवल बीस रुपये देना पड़ता है। केवल बीस रुपये पूर्व-पति को देकर ही, यदि वह राज़ी हो जाय, मामला खत्म हो जाता है। जबकि कुल्लू के गाँवो मे हरजाने की यही रकम पूर्व-पति के मनचाहे दावे के अनुसार हजार-दो हजार रुपये तक पहुँच जाती है।

इस प्रकार वे दोनो तरुणिया जैसे मजाक-मजाक मे ही ब्रह्मचारी के

मन मे खलबली-सी मचाकर अपने खेतो की ओर बढ चली ।

◇ ◇ ◇

ब्रह्मचारी और दिनो की तरह आज रात भी चूल्हे के किनारे बकरी के ऊन की खुरदरी दरी पर झोली का तकिया बनाये लेटा पडा था । और उस कमरे मे ही एक किनारे काठ की नगी फरश पर बुढिया सोई पडी थी, और बुढिया की सबसे छोटी कन्या बुद्धी, क्वाँरी और तरुणी । दूसरी कन्याएँ मलाणे के ही विभिन्न मुहल्लो मे ब्याही जाकर अपने-अपने घरो मे जा चुकी थी । और खुड्ड अपनी तरुणी पत्नी के साथ बाहर कमरे के बरामदे मे, काठ की नगी फरश पर सोया पडा था । बुढिया और बुद्धी जरी के बाजार मे जडी-बूटी बेचकर खाने का सामान अनाज, तेल और नमक-मिर्च आदि खरीदे बोझ से चूर-चूर हो आज ही सन्ध्या को वापस वहा पहुँची थी । और आज ही खुड्ड भी अपनी पत्नी के साथ जोत से बनककडी, कड्ड, पतीस और गुग्गुड आदि जडी-बूटियाँ सग्रह करके वापस लौटा था । दिनभर की हड्डी तोड मेहनत के बाद सारा परिवार इस क्षण नीद मे बेखबर हो खर्राटे ले रहा था । कुछ देर खर्राटो की वह सम्मिलित ध्वनि गूँज-गूँजकर ब्रह्मचारी की विचार-मुद्रा मे बाधा डालती रही, फिर उत्तरोत्तर धीमी पडती-पडती निद्रा की गहराई मे विलीन भी हो चली ।

लेकिन ब्रह्मचारी को अब भी नीद न आ सकी । उन तरुणियो का वह मजाक और खुला सकेत जैसे मन से चिपटकर उसमे रह-रहकर खरोंचे मारने लगा । उसमे मधुर आकाक्षाओ की सृष्टि करने लगा । उन तरुणियो के भागकर चल देने और जादूभरी मुस्कान के साथ मुड-मुडकर कनखियो से देखने का वह दृश्य रह-रहकर उसके मन को गुदगुदाने लगा । इस गुदगुदी मे आज उसे बडी मिठास महसूस हो रही थी । इस मिठास को जैसे जीवन मे वह पहली बार महसूस कर रहा था । और यह भी उसके जीवन की शायद पहली घटना थी कि किसी सुन्दरी तरुणी ने स्वय उससे ब्याह का प्रस्ताव-सा किया था । हाँ, इस क्षण अपने साथ कुछ दिन पहले कुल्लू की एक दूसरी घटना की याद भी अचानक ताज़ी

हो उठी। पर उस घटना की सरसता के बावजूद ऐसी मीठी गुदगुदी उसमे उस समय पैदा न हो सकी थी। क्योकि उस समय दाम्पत्य-जीवन की कोई आकाक्षा उसके मन मे जागी ही न थी।

किन्तु इस क्षण वही सरस घटना उसकी स्मृति मे सिलसिलेवार प्रविष्ट हो उसके मन को बडे वेग से गुदगुदाने लग पडी। उस समय वह कुल्लू उपत्यका के दर्शनीय एव विशिष्ट स्थानो की यात्रा करते 'मनाली' और 'विशिष्ट' की ओर से ब्यास नदी के बाये 'जगत्सुख' गॉव के रास्ते कुल्लू कस्बे की ओर वापस जा रहा था। मनाली से नगर तक दस-बारह मील के दृश्य तो जैसे स्वर्ग को धरती पर उतारे दे रहे थे। स्थान-स्थान पर बाई ओर के उत्तुग हिम-शिखरो से निकलकर देवदारु के सघन बनो से विचरते और निकलते तीव्र झरनो एव नदियों के दृश्य स्मृति-पट पर पुन उभर उठे। जैसे आकाश-गगा की सेना जय-घोषो के साथ ब्यास नदी को दबोचने जा रही हो! जगह-जगह छोटे-छोटे नाले भी सर्प-गति से चलते और मचलते दिखाई दे रहे थे। और इन सब पर जैसे लुट रही थी देवदारु के जगलो की मीठी-मीठी मुस्कान! वास्तव मे प्रकृति बड़ी रमणीय बनी हुई थी।

और पगडडी की दाई ओर, ब्यास के किनारे की तरफ, मानव के श्रम से उत्पन्न दृश्य भी कम मनोहर न थे। ब्यास के किनारे को छूते हुए चौरस ढलानी खेत, और खेतो मे जगह-जगह धान की हरी-हरी पौदे। जैसे हरी दरियाँ बिछी हुई हो। पगडडी के दाये-बाये जगह-जगह बसे गॉव, और ढलानो पर बने उनके सीढीनुमा घरो का कतारे। गाँव के मन्दिर और गॉव की बावडियाँ। सेव, खुमानी और नाशपाती के बाग और बगीचे! और जगह-जगह गैर-आबाद खेतो मे सिर पर लाल-लाल 'थिप्पू' (विशेष प्रकार की रूमाल) बाँधे पॉच-सात तरुणियो के समूह द्वारा एक ताल से फावडो को सिर के ऊपर उठाने और फिर एक ताल से ही उन्हे धरती पर बजाने का दृश्य तो कुछ यो लग रहा था ज्यो एक रग की वर्दी पहने फौजो की कोई खास कवायद हो रही हो,

अथवा उन तरुणियो के उस गतिबद्ध सामूहिक श्रम मे जैसे अनायास अपने-आप कृषि-नृत्य का सर्वाधिक मनोहारी रूप मुखरित हो रहा हो !

इन प्राकृतिक और मानवीय दृश्यो को आँखो से पी-पीकर, उस ऊबड-खाबड और ऊँची-नीची पगडडी से चलते हुए भी ब्रह्मचारी को रच मात्र भी थकान महसूस न हो रही थी । कही-कही से, खेतो अथवा जगलो से गीतो की आवाज़े भी जब-तब आया करती । पगडडी के पास की एक ढलवान पर चरवाहिनो की एक टोली कितने मधुर स्वर मे गाये जा रही थी—

"एइ देशे न बेशणा, चल घर बे जाणा !
बाला देशे न बेशणा, चल उज्जीबे जाणा !"

कुल्लू की भाषा से परिचित हो चुके होने के कारण इन पदो का तात्पर्य भी ब्रह्मचारी की समझ मे आ चुका था । प्रेमिका अपने प्रेमी से कह रही है—"प्यारे, चलो अपने घर चले । इस देश मे मै नही रहती ! इस नीचे के (मैदानी) देश मे हमे नही रहना चाहिए । चलो, हम ऊपर की ओर चले !" शायद कोई पहाडी तरुणी किसी तरुण के साथ नीचे भाग आई थी । लेकिन बाद मे उसे अपने (ऊँचे के) पहाडी प्रदेश की याद सताने लगी थी । अतः अपने प्रेमी से अनुरोध कर रही थी फिर अपने पहाडी गाँव को वापस चल देने का । अथवा परस्पर प्रेम के धरातल को नीचे होते महसूस करके वह पुनः प्रेमाकाश की ओर बढने के निमित्त अपने प्रेमी से अनुरोध कर रही थी ।

इस क्षण इस गीत की याद ने ब्रह्मचारी के मन को बडे ज़ोर से झकझोर डाला । और उसी क्षण गाँव के एक मुहल्ले से उस नीरव निशीथ मे किसी तरुणी के गाने का एकाकी स्वर भी जैसे सारी मिठास को लपेटे छन-छनकर ब्रह्मचारी के कानो मे पहुँचने लगा । जिस प्रकार कोयल की आवाज अर्थ-तात्पर्य के बिना भी बडी मीठी लगती है, उसी प्रकार इस क्षण उस तरुणी के सगीत का मीठा-मीठा स्वर अर्थ-तात्पर्य

के बिना भी गहन रजनी के निस्तब्ध वातावरण मे ब्रह्मचारी को कम मधुर न लगा।

कुछ क्षण इस सगीत की माधुरी मे खोये रहने के बाद उसके स्मृति-मच पर कुल्लू उपत्यका की उसी यात्रा की एक दूसरी सरस घटना भी प्रकट हो पडी। 'जगत्सुख' गाँव के निकट की वह घटना थी। धान की 'रूणी' (रोपनी) का 'जुआर'[1] खेतो मे आरम्भ हो चुका था। और पगडडी के किनारे के एक खेत मे अभी-अभी एक 'जुआर' पूरा होने जा रहा था। पुरुष श्रमिक हल और हेगा चलाकर खेत को रोपने योग्य बना निश्चिन्त हो अखरोट की छाया मे बैठकर पहले से ही 'चाकटी'[2] और चिलम-तमाकू पीते हुए ढोल-शहनाई बजाने और नाचने-गाने मे मशगूल हो चले थे। और स्त्रियाँ खेत की रोपनी का अपना काम पूरा करके जल्द-से-जल्द उस आनन्द-गोष्ठी मे सम्मिलित होने को उतावली हो चली थी।

ब्रह्मचारी कुछ देर अखरोट की उस छाया मे बैठ उनके जुआर-जीवन को देखने लगा था। और देखते-देखते वे स्त्रियाँ भी 'रूणी' को निबटाकर अपने हाथो मे धान के बीज-पौदो का एक-एक गुच्छा लिये उस छाया मे आ पहुँची। और अपने श्रेष्ठ-जनो के आगे झुककर उनके पैर छू-छूकर एक-एक पौद जैसे बतौर उपहार अथवा रोपनी पूरा करने के प्रमाण के रूप मे उन्हे पेश करती गई। और उस उपहार को ग्रहण

---

१. कुल्लू के गाँवो मे 'जुआर' नाम से एक सनातनी सहकारी प्रथा है जिसके अनुसार गाँव के किसी एक किसान के खेत में उस गाँव के सारे किसान मिलकर काम करते हैं, बिना मजदूरी के।

२. 'चाकटी' दूधिया रग की एक शराब-सी होती है जो चावल को पका और सड़ाकर जंगली जड़ी-बूटियो के योग से बनाई जाती है। हिमालय के विभिन्न प्रदेशों में इसी नाम से यह शराब खूब प्रचलित है।

करते हुए पुरुषो ने उनके थिप्पू-बँधे सिरो पर जुडी हथेलियो को हिला-हिलाकर आशीर्वाद दिया—"सदो सुहागन रश्रो ! फूलो फलो !" और वृद्धा अथवा रिश्ते मे बडी स्त्रियाँ उन पोदो को पेश करते समय प्रणाम करने के बजाय स्वय आशीर्वाद देती—"सदो राजी रश्रो !" लेकिन युवा-युवतियो के इस आदान-प्रदान की स्वीकृति रूप मे केवल उनके ओठो पर यौवन-सुलभ मुस्कान की रेखाएँ यो प्रस्फुटित हो जाती ज्यो चाँद मे बिजली चमक उठी हो ।

इस प्रक्रिया को कुल्लू की बोली मे 'द्रुब' कहते है, अर्थात् दुर्वा-दूब देने का मागलिक पवित्र कार्य । और इस प्रक्रिया के समाप्त होते ही एक दूसरी प्रक्रिया सहसा शुरू हो चली जिसे कुल्लू की बोली मे 'सोगीरणा' कहते है । विशेषकर तरुणियाँ और प्रौढाएँ पास के नाले और खेत से कीचड उठा-उठाकर खिलखिला-खिलखिलाकर एक-दूसरी पर फेकने लगी । कुछ क्षण बाद ही वे छाया मे बैठे युवको और अधेडो पर ही टूट पडी । एकाएक जैसे खलबली मच गई । जैसे अचानक उस खेत मे होली का कीचड-फेकू उन्माद जाग उठा ! उन स्त्रियो के सामूहिक प्रहार से बचने के प्रयास मे युवको ने इधर-उधर भागना शुरू कर दिया । और कुछ उन स्त्रियो मे उलझकर कीचड का जवाब कीचड से ही देने लग पडे । इस सरस युद्ध के सामूहिक अट्टहास और किलकारी की चोटे खा-खाकर खुला आकाश गूँजने लग पडा । कीचड से पुते कतिपय सुन्दर चेहरे अब यो बन चले ज्यो चाँद पर अनेक गहरे धब्बे पुत चुके हो ।

लेकिन ब्रह्मचारी वहाँ बैठा न रह सका । उन तरुणियो के सकेतमय शरारत-भरे चेहरो को जैसे वह भाँप चुका था । किन्तु कुछ दूर आगे बढते ही एक दूसरे खेत मे भी 'सोगीरणा' की यही शरारत चालू उसे दिखाई दी । लेकिन शरारत बहुत कुछ धीमी पड चुकी थी । क्योकि कुछ तरुणियाँ पास के बहते नाले मे अपने गोरे-गोरे चेहरे साफ करने मे लग चुकी थी । अत वह बहुत कुछ आश्वस्त हो आगे बढा जा रहा था ।

किन्तु एकाएक पीछे से उसकी पीठ पर कीचड का एक बडा लौंदा खूब जोर से आ पडा। इस अतर्कित-अचानक आघात से हक्का-बक्का हो उसने ज्यो ही मुडकर देखा तो पन्द्रह-सोलह की एक गोरी सुन्दर तरुणी जैसे लक्ष्य-बेध मे सफलता की खुशी मे खिलखिलाकर तिरछी नजरो से ताकती और वेग से भागती दिखाई दी।

इस तरुणी को क्षणभर पहले ही वह देख चुका था। उसके गोरे गालो और अरुणाभ ओठो पर मचलती मुस्कराहट और तनिक तिरछी आँखो से अपनी ओर देखती रहने और अगो को तनिक तिरछे लचकाये कुछ कर छोडने के उसके छिपे प्रयास का आभास उसे अवश्य मिल चुका था। लेकिन पीठ-पीछे छिपे हाथ के कीचड को वह देख न सका था। जैसे ब्रह्मचारी को दूर से ही आते देख वह सम्हलकर खडी हो चुकी हो! लेकिन वह तरुणी चूँकि पानी से चेहरा अपना धो चुकी थी, अत. उसके द्वारा शरारत की आशका ब्रह्मचारी के मन मे उठ न सकी थी। और उसी क्षण एक पुरुष ने ब्रह्मचारी को दिलासा देते कहा था—"तू बुरा मत मान बाबा! ये म्हारे देस का रवाज है!"

किन्तु इस क्षण वही दृश्य अत्यत सजीव और मधुर बनकर उसकी स्मृति मे रग भरने लगा। ब्रह्मचारी मन-ही-मन बोलने लगा—"अहा! कैसा था उस समय उसके अगो का लचक-भरा विन्यास और चेहरे की भाव-भगिमा! यौवन के तेज से दमकते गोरे चेहरे को मुस्कान के जादू मे लपेटकर, और अगो को लचकाकर जब दाये हाथ से कीचड के उस लौंदे को फेका था उसने, कैसा मनोमुग्धकारी था वह दृश्य!"

उसकी सखियो ने पुकारा था उसे 'कम्मो'! कम्मो शायद कमला का प्यारवाची नाम था। इस क्षण वह नाम भी ब्रह्मचारी की स्मृति मे उभर उठा। अब वासना और आकाक्षा के उठे उन्माद मे वह मन-ही-मन बोलने लगा—"यदि उस कम्मो को तू पा सके आदित्य! यदि कम्मो को तू पा सके!" कालिदास ने कहा है—"कामार्ता हि प्रकृति-कृपणाश्चेतनाचेतनेषु।" वासना-व्याकुल यक्ष ने अचेतन बादलो से क्या-

कुछ कह-कहकर कालिदास को 'मेघदूत' जैसे काव्य की रचना का मसाला दिया था। लेकिन ब्रह्मचारी आदित्य अभी उसी वासना से व्याकुल हो केवल अपने चेतन मन से बातें कर रहा था।

पर कम्मो को पा सकना आसान न था। वह काफी दूर थी उससे। क्या पता, कम्मो ब्याही थी या क्वाँरी ? क्वाँरी होने पर उसके पिता को भरपूर पैसे—हजार-पाँच सौ रुपये दिये बिना राजी-खुशी उसे पाना कतई कठिन था। और ब्याही होने पर उसे भगाने पर उसके पूर्व-पति को बतौर हरजाने के मनचाही रकम देने की समस्या थी! और क्या पता कि वह कम्मो ब्रह्मचारी को पतिरूप मे स्वीकार करने को तैयार भी हो सके ?

इस प्रकार के पागलपन भरे उपहासजनक अन्तर्द्वन्द्वो से कुछ क्षण मन बहलाने के बाद पुनः उसके मानस-मच पर मलाणे की वह तरुणी आ खडी हुई जिसने आज ही उससे हँसी-मजाक मे बहुत कुछ कह दिया था। सौन्दर्य और सलोनेपन मे वह भी तो कम्मो से कम न थी! और तिस पर रोटी के सघर्ष से उसे मुक्त कर देने का प्रस्ताव और आश्वासन भी! साधु-जीवन के अब तक के मुफ्तखोरी भरे सस्कार मे यह प्रस्ताव उसे कम आकर्षक न लगा। लेकिन दूसरे ही क्षण उसे यह भी याद आ गया कि वह अब तक दो पुरुषो को छोडकर तीसरे को पकड चुकी है! फिर इस डाल-डाल और पात-पात का स्वाद लेने वाली तरुणी का विश्वास क्या ? भरोसा क्या ? वह किसी भी समय आदित्यनाथ को भी छोड फिर किसी अन्य पुरुष को उसी प्रकार पकड सकती है जिस प्रकार अपने दो पूर्व-पतियो को छोड आज तीसरे से उलझ चुकी है। और उसे भी छोडने को सोचने लगी है।

आदित्यनाथ का मन अब अचानक घृणा और विरुचि से भर उठा। यौन-जीवन की इस उन्मुक्तता के प्रति उसके मन मे एक आक्रोश, एक जुगुप्सा पैदा हो चली। यह वही जुगुप्सा थी जिसने किसी दिन ऋषि श्वेतकेतु के मन मे पैदा होकर विवाह के शिथिल बधन को दृढ बन्धन मे

बदलने को प्रेरित किया था। ऋषि श्वेतकेतु किसी दिन स्वय अपनी माँ की यौन-उन्मुक्तता से आहत हुआ था, और अभी ब्रह्मचारी आदित्य अपनी कल्पित पत्नी की उन्मुक्तता से!

अब उसने एकाएक मन-ही-मन श्वेतकेतु के लहजे मे ही सकल्प किया—"मुझे मलाणे मे रहना चाहिए! अवश्य रहना चाहिए! और किसी पवित्र तरुणी के साथ गृहस्थ-जीवन मे बँधकर यहाँ नव-शिक्षा और नव-सस्कृति का बीजारोपण अवश्य करना चाहिए। इनके जीवन को सभ्यता के सौदर्य की ओर अग्रसर अवश्य करना चाहिए। परती जमीन को पहले कृषि-योग्य बनाने मे अपार श्रम अवश्य करना पडता है, पर इस तैयार परती जमीन मे बीज बडे जोर से लगते है। फसल काफी अच्छी होती है।"

यह सकल्प करते ही उसके मानसिक क्षितिज पर एक नया प्रकाश जैसे फूटता हुआ दिखाई दिया। अरुणोदय की जैसे स्पष्ट आभा दिखाई देने लगी। मानो मलाणे की यह छोटी घाटी नव-सभ्यता के निर्माण और विकास के निमित्त उसके लिए एक नई प्रयोगशाला बनती दिखाई दी। मन मे एक अह उभर आया। कुल्लू मे स्वामी सत्यकेतु की प्रवचना और पचडे मे पडकर, असफल और अपमानित होकर स्वय अपने प्रयत्न से कुल्लू-उपत्यका मे कुछ कर दिखाने की जो आन उसके मन मे पैदा हो चली थी, उसे पूरा करने के लिए मलाणा की घाटी जैसे बिल्कुल उपयुक्त भूमि दिखाई दी। प्रयोगशाला आखिर होनी ही चाहिए किसी सुरक्षित एकान्त स्थल मे। भौगोलिक दृष्टि से कुल्लू की उपत्यका मे होते हुए भी यह घाटी कुल्लू से अलग है। पर्वत के ऊँचे प्राचीरो से सुरक्षित! और न यहाँ प० हीराचद्र, अमीरचन्द्र और वकील रामनाथ जैसे बाधक तत्व उसे दिखाई दिये।

अचानक उसका मन आशा के उल्लास मे उद्दीप्त हो उठा। वह मन-ही-मन बोल उठा—"अहा! हिमवान के ऐसे एकात अचलो मे बैठ कर ही तो अतीत के ऋषियो ने भविष्य को देखा था। भावी सभ्यता के

निर्माण का स्वप्न देखा था। ऐसे स्थानो मे ही तो तत्व का निरीक्षण और परीक्षण करके अपने उपलब्ध ज्ञान के प्रकाश से सारे विश्व को आलोकित किया था। तो क्या, मैं भी किसी दिन कम से कम कुल्लू की उपत्यका को अपने ज्ञान और प्रयास के प्रकाश से आलोकित नही कर सकता ? वे, ऋषि-मुनि भी तो आखिर मानव थे ? और मै भी आखिर वही मानव हूँ ? उन्ही की सन्तान ! उन्ही के ज्ञान और प्रयास का एक उत्तराधिकारी !"

उसके मन मे जैसे भावी ऋषित्व की आशा और अहकार उभर आया। और साथ ही अपने भावी दाम्पत्य-जीवन के समर्थन की ओर भी उसका मन अग्रसर हो चला। वह सोचने लगा—"प्राचीन युग के ऋषि-महर्षि भी त्यागी और तपस्वी थे, पर साथ ही गृहस्थ-जीवन मे रहा करते थे। शायद ही कोई विरक्त ब्रह्मचारी होता उनमे ! क्योकि उन ऋषियो ने यह अच्छी तरह सोच और समझ लिया था कि हर वस्तु की एक सीमा होती है। जीवन भर का ब्रह्मचर्य अस्वाभाविक है। अप्राकृतिक है। झूठ-मूठ कोई मानव जीवन भर ब्रह्मचर्य का ढोग रचे रहता है जबकि उसका मन वासनाओ से उन्मुक्त नही रहा करता। गुप्त काम की वासना। काचन और कीर्ति की वासना। इस कारण ही तो ऋषियो ने हर व्यक्ति के लिए ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और सन्यास जीवन की इन चार क्रमिक अवस्थाओ की व्यवस्था की थी।"

अब उसके मन मे एकाएक स्वामी सोमानन्द जी उभर आये। और उनके जीवन के वे सारे अनुभव भी जिन्हे स्वय उन्होने बडे आग्रह से ब्रह्मचारी को सुनाया था। और फिर हँसी-हँसी मे ही उनका वह कहा वाक्य भी याद आ गया—"हाँ, तो आपने अब पा लिये न अपने ब्रह्मचर्य के विरुद्ध इतने जबर्दस्त प्रमाण ? तो मेरी तो यह सलाह है कि यदि जवानी के रहते ही ब्रह्मचर्य का यह व्रत पिघल जाय तो ठीक। अन्यथा बुढापे मे पिघलने पर यह बडा अनर्थ कर छोडता है ब्रह्मचारी जी !" स्वामी सोमानन्द जी के प्रति उसके मन मे बडी श्रद्धा उमड आई। बडी

सहानुभूति ! जाने कितने बडे दर्द और पीडा को दिल मे छिपाये यह वृद्ध तपस्वी जीवन से निराश हो आज एकात मे अकर्मण्य बना बैठा है। और जैसे तरुण ब्रह्मचारी के प्रति वात्सल्य की भावना से आन्दोलित होकर ही उसने मजाक-भरे सकेत के द्वारा गृह-जीवन मे प्रविष्ट हो जाने की सलाह भी उसे दी थी।

साधु-सतो के जीवन के अनेक पहलुओ का वह स्वय भी खूब अध्ययन कर चुका था। अभी ताजा-ताजा स्वामी सत्यकेतु के जीवन को उसने कितने निकट और गहराई से देखा था ! पैंसठ-छियासठ की उम्र मे भी न काम-वासना मिट सकी थी, न कीर्ति और कॉचन की वासना ! लेकिन ऊपर से व्याख्यान-मचो पर ब्रह्मचर्य के और त्याग के और सत्य के नारो का कितना उद्घोप ! साधु का वेश स्वभावत त्याग और तपस्या का प्रतीक होता है। इस वेश मे किसी व्यक्ति को देख लोग स्वभावत सोचा करते है—"यह त्यागी है, तपस्वी है। वासनाओ से, इच्छा-आकाक्षाओ से परे है।" पर कितना मिथ्या और भ्रामक है लोगो का यह विश्वास ! ऊपर से त्याग-त्याग का नारा लगाते हुए भी भीतर से कितनी गहरीं वासना और आकाक्षाएँ छिपी होती है इन त्यागियो मे ! और अपनी वासनाओ और आकाक्षाओ की परिपूर्ति के लिए पाखड और धोखे-धडी के छोटे-बडे जाल बुन-बुनकर जाने कितने भोले-भालो को फँसाकर उनका सत्यानाश कर छोडते है ये बदमाश !"

इन तथ्यो पर सोचते ही आदित्यनाथ के मन मे वर्तमान समाज के उस रूप के प्रति भी घोर घृणा जाग उठी जिसके पाखडमय आडम्बर की आड मे इन बदमाशो को खुलकर खेलने का मौका मिला करता है। और समाज के इसी घृणित रूप के कारण इन हरामखोरो की सख्या भी आज लाखो तक पहुँच चुकी है। लेकिन साथ ही उसके दिल मे उन लाखो वचित साधुओ के लिए एक सदय सहानुभूति भी उमड आई जो केवल पेट की खातिर दर-दर की खाक छानने को मजबूर बने हुए है। गृहस्थो की ही तरह साधुओ के भी मुख्यत दो वर्ग है—एक वचको का,

दूसरा वचितो का। और गृहस्थो का वचक-वर्ग साधुओ के वचक-का ही सम्मान करता है। क्योकि वर्ग-भावना वहाँ भी है। संस्कृत ह पुरानी कहावत निस्सार तो नही—"स्ववर्गे परमा प्रीति ।" और ाकर्ण मे एकत्र उन वचित साधुओ के मन मे 'साम्यवाद' के प्रति हमदर्दी के उद्‌गार भी उसे याद आ गये। आखिर वे उद्‌गार ? क्योकि वे वचित है। अपने वर्तमान जीवन से असतुष्ट है ! और ्यवादी शासन मे उन्हे अपने उद्धार की आशा दिखाई देती है।

वह फिर सोचने लगा—"शायद पचास-साठ लाख के लगभग वचित ु होगे इस देश मे, इस भारत मे। इनका जीवन देश और समाज वृथा भार के सिवा और है ही क्या ? लेकिन इन मुफ्तखोरो और हिलो मे सगठित होकर उसी साम्यवादी व्यवस्था के लिए काम करने सूझ-बूझ नही। साहस नही। लेकिन साधुओ की इतनी बडी त बनने और फैलने मे वह कौन-सा मूल प्रेरक तत्त्व था आरम्भ मे; आवश्यकता थी इसे बनने और फैलने की ?" और मन मे इस प्रश्न उदित होते ही उसके मानस-मच पर अचानक भगवान बुद्ध की ध्याना-थ आकृति प्रकट हो पडी। उसे झट यह विश्वास हो चला कि विभिन्न ादायो के साधुओ के इस विशाल समुदाय के निर्माण और फैलाव के र अपराध की मुख्य जिम्मेदारी है भगवान् गौतम बुद्ध पर।

"भगवान् बुद्ध !"—वह मन ही मन बोल उठा—"यह सच है कि करोडो का पूज्य है, आराध्य है ! पर तूने समाज के प्रति जो एक तक अपराध कर डाला, आँखें खुलने पर समाज तुझे कभी क्षमा नही र सकेगा भगवान् ! अपनी महत्वाकाक्षा की पूर्ति के लिए, अपने मत व्यापक प्रचार के लिए तूने भिक्षु-सघ की स्थापना कर दी ! और द मे अन्य सप्रदायो के सचालको ने भी तुझसे प्रेरणा लेकर अपनी-पनी जमातो की स्थापना की। पर जिस करुणा और अहिंसा की भावना व्यवहार के व्यापक प्रचार के निमित्त तूने भिक्षु-सघ की स्थापना क्या वह तेरा विशाल उद्देश्य रचमात्र भी सफल हो सका ? बौद्ध

देशो मे भी, बौद्ध-समाजो मे भी क्या वही क्रूरता, कुटिलता और क्षुद्रता व्यापक रूप से मौजूद नही, जो अन्य देशो और समाजो मे भी व्यापक रूप से पाई जा रही है ? नही तो, तेरे अनुयायी होकर भी जापानियो ने क्यो सहधर्मी चीनियो के खून से इतिहास के पन्ने रग डाले ? और क्यो, तेरा परम अनुयायी होते हुए भी लका अथवा सिहल का वह छोटा द्वीप अपने अक मे तेरे ही लाखो भारतीयो की स्थिति तक बर्दाश्त करने को तैयार नही ? बल्कि तेरे बौद्ध भिक्षुओ की सेना ही वहाँ भारतीयों के निवास के विरुद्ध घृणा-प्रचार का नेतृत्व कर रही है ! तेरी अनुयायिता के बावजूद मानव-मानव के मन मे ऐसी घोर घृणा क्यो ? दुर्भावना क्यो ? · नही भगवान् ! तेरा आदर्श और उद्देश्य रचमात्र भी सफल न हो सका ! ससार के अन्य सभी असफल पैगम्बरो की ही तरह भले ही तेरे नाम की भी बडे व्यापक पैमाने पर पूजा हो रही है, पर सत्यतः सब व्यर्थ और निरर्थ !"

प्रसगात उसे याद आ गई एक ईमानदार बौद्ध विद्वान् की लेखनी जिसने बडी निर्भीकता और सचाई से प्राचीन काल से अब तक बौद्ध भिक्षुओ तथा अन्य साधुओ मे फैले गुप्त व्यभिचारो पर प्रकाश डाला था। और फिर उसे याद आ गये एक जैन युवक के वे शब्द जब वह क्षुब्ध होकर बोल रहा था—"बिना गृहस्थाश्रम धर्म मे प्रवेश किये एकाएक साधु या साध्वी बन जाने को मै बडा बुरा मानता हूँ ब्रह्मचारी जी ! हमारे जैनियो मे यह प्रथा है कि बचपन या जवानी मे लडकियाँ दीक्षा देकर 'साध्वी' बना ली जाती है। तब से पुरुषो से उनका मिलना-जुलना बन्द हो जाता है। पर वे जवानी की वासना को दबा सकने मे समर्थ नही हो पाती। मै नही समझ पाता कि हमारे घरो मे हमारी स्त्रियो से काम-क्रीडा तक की बाते पूछ-पूछकर वे अपनी वासना को दबाती हैं, या उत्तेजित किया करती है।"

उस जैन युवक द्वारा इस रहस्योद्घाटन के कुछ दिन बाद ही स्वयं ब्रह्मचारी को इस रहस्य से साक्षात्कार भी हो गया। वह कुछ दिन एक

युवती जैन साध्वी को हिन्दी और सस्कृत पढाने जाया करता। उस साध्वी के सिर के बाल यद्यपि कटे थे, पर चेहरे पर लावण्य की आभा जैसे ज्यो-की-त्यो मौजूद थी। वह किसी बडे जैनी सेठ की कन्या थी। उस साध्वी-जीवन मे भी उसकी बडी-बडी खिची आँखो पर सुनहले फ्रेम का लगा चश्मा उस लावण्य मे एक आभा भरा करता। एकान्त मे एक तरुण को अपने निकट पाकर उस तरुणी साध्वी की वासना उभरे बगैर न रह पाती। तरह-तरह के नाज-नखरो व भाव-भगियो से ब्रह्मचारी के मन मे भी वासना जाग्रत करने का प्रयास किया करती। पर ब्रह्मचारी पत्थर बना रहा। जब वह पिघल न सका तो साध्वी को उससे पढने मे आनन्द भी कम आने लगा। और अत मे कोई बहाना बना इस पत्थर ब्रह्मचारी को उसे जवाब ही दे देना पडा।

सो यह सब सोच-साचकर इस समय ब्रह्मचारी के मुख से निकल ही पडा—"धन्यो गृहस्थाश्रम !"

◇ ◇ ◇

आषाढ अब समाप्त होने जा रहा था। अतिशय ऊँचाई की ठड मे अब कही गेहूँ की फसल तैयार हो सकी थी। फसल काटी जा रही थी, और अगली फसल के बीज बोने के लिए खेत भी तैयार किये जा रहे थे। सावन-भादो मे बीजने पर कही अगले आषाढ-सावन मे वह फसल तैयार होगी। सात-आठ मास तक बरफ के नीचे दबी पडी रहने के बाद कही मई मे सूरज की रोशनी पाकर उन पौदो मे सजीवता आ पाती है।

ब्रह्मचारी आदित्य ने भी फसल बटोरने मे खुड्डू के परिवार का हाथ बटाया। लेकिन जब ब्रह्मचारी ने मलाणे में स्थायी निवास का निर्णय कर लिया तो नये खेत की समस्या भी सामने आई। पहले की थोडी जमीन से जब खुड्डू के परिवार का निर्वाह भी नही हो पाता, तो आदित्य के भावी परिवार के गुजारे का बोझ उस पर कैसे डाला जा सकता था ? मलाणे की घाटी मे परती जमीन की कमी न थी, पर पहाडी

ढलवानो को खोदकर नये खेत बनाने का काम पहाड और पहाडी जीवन से भी जैसे ज्यादा कठोर था। मैदानी इलाको के लोगो के लिए उस कठोरता की कल्पना भी कर सकना कम कठोर नही।

लेकिन जीने की चाह भी कम कठोर और कम प्रबल नही होती। और जहाँ चाह है वहाँ राह भी। अन्यथा इन दुर्गम दुर्दम्य घाटियो मे मनुष्य का चिह्न भी नही पाया जाता। सो, यदि आदित्य को वहाँ रहना है, तो जीवित रहने के लिए उस पहाड को खोदकर जीने का आधार तैयार करना ही होगा। कथा-पुराण अथवा पुरोहिताई की भी कोई गुजायश वहाँ न थी। और खेत का सावन-भादो तक तैयार हो जाना जरूरी था ताकि अगले साल की फसल के बीज उसमे इस साल ही बीजे जा सके। और सबसे अधिक आदित्यनाथ की धर्म-माता कही अधिक उत्सुक हो चली थी जल्द-से-जल्द उस गाँव की जमीन मे ब्रह्मचारी को भी हकदार बना देने के लिए। पर सारे गाँव और गाँव की सारी जमीन पर जमल भगवान् का अधिकार होने के कारण बिना भगवान् की रजामदी के न कोई उस हक को हासिल कर सकता था, न नागरिकता के अधिकार को। अतः पहले इस हक को हासिल करना आवश्यक था।

सो, जमल भगवान् से इस हक को हासिल करने के लिए अपनी धर्म-माता की प्रेरणा और आदेश के अनुसार आदित्यनाथ को मदिर के आँगन मे स्थापित एक शिला-फलक पर जाकर बैठ जाना पडा। यह प्रार्थी का चबूतरा था। और जिस किसी व्यक्ति को देवता के दरबार मे किसी विशेष उद्देश्य के साथ उपस्थित होना होता उसे उसी चबूतरे पर बैठ जाना पडता। उस शिला-फलक पर चुपचाप बैठ जाना ही पर्याप्त होता। क्योकि उस राह से गुजरते नागरिक गाँव के चौकीदारो तक झट खबर पहुँचा देते, और चौकीदार ढोल की चोट पर गाँव के लोगो और पचायत के सदस्यो को इस बात की सूचना देने लग जाते।

गाँव के 'चुग' अर्थात् मुहल्ले चार है, और चारो चुगो के 'पगुरदार'

अर्थात् चौकीदार भी चार ! बुढिया ने उन चारो चौकीदारो तक जल्द से जल्द खबर पहुँचाने की व्यवस्था कर दी थी। फलस्वरूप चारो चुगो मे लगभग एक साथ ही ढोल की चोट पर खूब जोर से—"द्रोय घटके ! द्रोय घटके !!"—की आवाजे गूँजने लग पडी। यह वाक्य सस्कृत के 'द्रोहो घटित' इस वाक्य का शायद बिगडा हुआ रूप हो, अर्थात् देवता के विधान के विरुद्ध द्रोह घटित हुआ। किन्तु जिस प्रकार कोई शब्द किसी विशेष अर्थ मे रूढ हो जाता है, उसी प्रकार उपर्युक्त दोनो शब्द रूढ हो चले थे देवता के दरबार मे किसी व्यक्ति द्वारा की गई विशेष 'प्रार्थना' के अर्थ मे।

डेढ-दो घन्टे रात बीत चुकी होने के कारण लोग अपने घरो मे वापस आकर भोजनादि से निबट चुके थे। 'द्रोय घटके ! द्रोय घटके !' की आवाज ने उन लोगो मे कौतूहल पैदा कर दिया जिन्हे पहले से उस प्रार्थना की जानकारी न थी। और बच्चो का कौतूहल इस कारण बढ चला कि उनके लिए जैसे किसी नये तमाशे अथवा नाटक का अभिनय आरम्भ होने जा रहा हो। देवता की अदालत की आवाज़ होने के कारण किसी बालिग व्यक्ति ने साहस न था उस सूचना की उपेक्षा कर देने का। सभी नर-नारी अपने घरो से निकलकर मन्दिर के विशाल आँगन की ओर चल पडे। और चूँकि मन्दिर गाव के ठीक मध्य मे अवस्थित था, अत किसी भी मुहल्ले से वहा तक पहुँचने की दूरी फर्लांग भर से अधिक न थी। और गाव के कुल १४१ घरो की जन-सख्या चार-पाँच सौ से अधिक न होने के कारण आँगन मे सबके बैठने का स्थान भी पर्याप्त था। यद्यपि हर घर के एक-एक प्रतिनिधि का ही उपस्थित होना अनिवार्य था, पर औरो के मन मे था गाँव मे आए एक परदेशी द्वारा पेश प्रार्थना पर विचार एव निर्णय को प्रत्यक्ष देखने और सुनने का कौतूहल।

आषाढ की चाँदनी मे सारी घाटी नहा-नहाकर दूधिया बन चली थी। उत्तर के हिम-मण्डित शिखरो की शृंखला यो दिखाई दे रही थी ज्यो क्षीर-सागर का जमा हुआ किनारा आकाश को चूम रहा हो।

आकाश भी जैसे जमकर उसमे खो चुका हो। और दूसरी ओर की चोटियो पर देवदारु एव अन्य वृक्षो की घनी वन-पंक्तियो की घनी हरियाली जैसे चाँदनी मे नहा-नहाकर बिल्कुल काली बन चली हो।

गाँव की उस सनातनी पचायत के दो अग है—ज्येष्ठांग और कनिष्ठाग। आधुनिक पार्लमेट के दो सदनो की तरह ! ज्येष्ठाग के ग्यारह सदस्य होते है—गुर, पुजारी और कर्मिष्ठ, ये तीन स्थायी, और शेष आठ हर मुहल्ले से दो-दो, समय-समय पर निर्वाचित, अत अस्थायी। गुर, पुजारी और कर्मिष्ठ स्वय देवता के प्रतिनिधि माने जाते हैं, और शेष आठ जनता के। ज्येष्ठाग के इन ग्यारह सदस्यो के बैठने का स्थान ऊँचा था, पत्थर की चौडी-चौडी पाटियो का एक बडा-सा चबूतरा! कनिष्ठाग मे हर घर के प्रतिनिधि होते है, जिनके बैठने का स्थान था चबूतरे के पास ही ऑगन के किनारे पत्थर की पाटियो का बना एक काफी लबा बेच !

सारा गाँव जैसे आँगन मे समा गया। पर गॉव के दो अछूत-घरों के सदस्य भीड से अलग-थलग ऑगन के एक किनारे उकडू हो यो बैठे हुए थे ज्यो नदी की लहरो से फेके हुए तिनके प्रवाह से दूर किनारे पर जा पडे हो। मलाणे के लोग जनेऊ न पहनते हुए भी अपने को राजपूत माना करते है। अत कुल्लू उपत्यका के अन्य गाँवो के सवर्णो की तरह वे भी अछूतो की छाया से दूर-दूर रहते है। और धोखे मे उनसे छू जाने पर बतौर दड के एक भेड़ या बकरा जमल भगवान् को दरबार मे अदा करना पडता है ! सो, इस दड के भय से हर सवर्ण नर-नारी उन अछूतो की छाया तक से बच-बचकर उस ऑगन मे प्रविष्ट हो रहे थे। लेकिन देवता अथवा जनता का कोई भी शुभ कार्य इन अछूतो द्वारा ढोल बजाये बिना आरम्भ नही किया जाता! घर-गृहस्थी के लिए बरतन और गहने बनाने से लेकर खेतो के हल और फाल इनके बनाये बगैर नही बन पाते !

इस क्षण भी एक अछूत गले मे ढोल बाँधे भीड से दूर खडा था।

और अपने दोनो हाथो मे थामे लकडियो से ढोल पर उसके कसकर तीन-चार चोटे देते ही जैसे भीड मे सजीवता की एक लहर-सी दौड पडी। अदालत की कार्यवाही आरभ होने की सूचना का बिगुल जैसे बज उठा—"ढम् ढम्-ढमाक्! ढमाक्! ढमाक्! ढम्-ढम्-ढम्-ढम्-ढम्...!" प्रार्थी के छोटे चबूतरे पर बैठा हुआ आदित्यनाथ भी सावधान हो उठा, और ज्येष्ठाग के बडे चबूतरे पर बैठे वे चुने हुए ग्यारह सदस्य, और लबे पेच पर बैठे कनिष्ठाग के सदस्य भी!

देवता का प्रधान प्रतिनिधि था गुर, अधेड उम्र का, सिर पर लबे-लबे बाल, मूँछे बडी-बडी, पर दाढी सफाचट! पहिनावा अन्य नागरिको की ही तरह, पर लबे बाल और लंबी मूँछे गुरपन का मुख्य चिह्न! ढोल की चोट पडते ही उसके अग यो काँपने लगे ज्यो हल्की हवा के सपर्क से पेड-पौधो के पत्ते। अर्थात् जमल भगवान् का अश उस पर उतर आया! क्षण भर बाद ही देवता के दो अन्य प्रतिनिधियो—पुजारी और कर्मिष्ठ—के अग भी उसी अदब-अदा से काँपने लग पडे। और सामने रखे जल-पात्र से जल के छीटे वे चारो ओर बिखेरने लग पडे। जैसे देवता का आशीर्वाद बरस रहा हो!

ढोल का बजना अचानक बद हुआ, और जल के छीटो का बिखेरना भी। लेकिन गुर ने अपने अगो को उसी प्रकार कँपाते हुए विशेष अदब और अदा से 'कणाश' बोली मे समस्त सभा को संबोधित करते हुए बोलना आरभ किया—"मलाणे पर जमलू देवता का राज है। जमलू देवता की दया है। सब जमलू की प्रजा हैं। जमलू शरणागत-पाल है। समदर्शी है। यह उसी का प्रताप है कि मलाणे मे कोई भूखा-नगा नही है। भीख माँगने वाला नही है। अमीर और गरीब नही है। किसी का कोई नौकर नही है। किसी का कोई मालिक नही है। क्योकि सबका मालिक एक है। और वह मालिक है जमलू देवता, जो किसी मे भी भेद-भाव नही करता। सब मेहनत की रोटी खाते है। और जो जैसी मेहनत करता है, वैसा ही पाता है। जमलू के गाँव से

कोई अतिथि-अभ्यागत भूखा नहीं लौटता। और भूखा लौटने पर जमलू किसी को क्षमा नहीं करता। वह अपराधी को दड देकर रहता है। उसकी दया जितनी बडी है, उतना ही बडा क्रोध भी। वह रोटी माँगने पर रोटी देता है। शरण माँगने पर शरण देता है। जमलू का न्याय अटल है। उसका धर्म अटल है। और वह आज की पुकार भी सुनने को तैयार है। अपनी अरज पेश कर, पेश कर, क्या चाहता है ?"—कहकर अधिकार भरे नेत्रो से उसने छोटे चबूतरे पर बैठे वादी की ओर देखा।

ढोल पर पुनः चोट पडी—"ढम्-ढम्-ढमाक् ! ढमाक्। ढमाक् ढम्-ढम्-ढम्-ढम् !" और मिनट दो मिनट तक एक ताल से बजकर पुनः तीन-चार बडी चोटो के साथ वह खामोश भी हो पडी। और अपनी धर्म-माता के इशारे पर आदित्यनाथ हाथ जोडे खडा हो गया। और उसकी धर्म-माता जैसे उसका वकील बन हाथ जोड खडी होकर विनय भरे स्वर मे देवता से बोली—"मलाणे मे किसी दिन सिर्फ कजली-बिजरी बन था, और सिर्फ जमल भगवान् का यहाँ बास था ! स्पीती के मुलुक से किसी दिन दो भाई इस कजली-बिजरी बन मे पहुँचे। जमल भगवान् ने बडी दया करके उन्हे यहाँ बसने का हुकुम दिया और जगह-जमीन भी दी। उसी तरह यह परदेसी, जो मेरा धरम का बेटा बन चुका है, जमल भगवान् से यहाँ बसने का हुकुम माँग रहा है, जगह-जमीन माँग रहा है। जमल भगवान् बडा दयालु ! बड़ा धर्मिष्ठ ! परदेसी यहाँ आते ही मौत के मुँह मे जा फँसा था। सो, जिस तरह जमल भगवान् ने मेरी बिनती सुनकर उसे मौत के मुँह से उबार लिया, उसी तरह मेरी दूसरी बिनती मानकर इसे अपनी शरण मे हमेशा रहने और बसने और गुजारे के लायक जगह-जमीन भी देने का हुकुम बकसे ! जमल भगवान् बडा दयालु ! बडा धर्मिष्ठ !"—इतना कहकर बुढिया नीचे बैठ गई, और उसके इशारे पर ब्रह्मचारी भी बैठ गया।

पुनः ढोल पर चोट पड़ी, और पुनः गुर, पुजारी और कर्मिष्ठ के

अग काँपने लग पडे। गुर ने पुनः जल के छीटे डालने शुरू किये। इसका तात्पर्य था सभासद् अब इस मामले मे अपना-अपना मत प्रकट करे! और तब शेष सभासदो ने ताँबे की एक छोटी तश्तरी मे रखे चावल के दानो मे से पारी-पारी से कुछ दाने उठाकर एक दूसरी तश्तरी मे रख दिये। ढोल की चोट खामोश हो पडी थी। अत शान्ति के साथ मतदान के उन दानो की गिनती की गई। दानो की कुल सख्या सम न होकर विषम रही। अर्थात् उनमे दो संख्या से भाग देने पर शेष न बचा। अर्थात् सभासदो का निर्णय पक्ष मे रहा।

अब पुनः ढोल पर चोट पडी। और पुनः गुर, पुजारी और कर्मिष्ठ के अग काँपने लग पडे। दो-तीन मिनट बाद ढोल की चोट खामोश हुई। पर गुर ने उसी प्रकार अपने अगो को कँपाते हुए अपने अगल-बगल उसी अदब-अदा से काँपते पुजारी और कर्मिष्ठ को सबोधित करते हुए कहा—"जमलू देवता के साथियो! जमलू की प्रजा द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियो के निष्पक्ष मतो ने परदेसी को मलाणे मे बसने तथा गुजारे के लिए जगह-जमीन देने का फैसला कर दिया है। जमलू देवता स्वय निष्पक्ष है। समदर्शी है। वह प्रजा के प्रतिनिधियो द्वारा दिये फैसले को स्वीकार करते हैं। कोई एतराज तो नही किसीको ?"

पुजारी और कर्मिष्ठ ने अपने अगो को कँपाते एक स्वर मे—"सत् वचन! जमल भगवान् का वचन सत्!"—कहते हुए सहमति प्रकट की।

ढोल पर फिर चोट पडी—"ढम्-ढम्-ढमाक्! ढमाक्! ढमाक्!"

ढोल की चोट के खामोश होते ही अब गुर ने उपस्थित जनता को सबोधित करते हुए पूछा—"जमलू देवता की सतानो! इस फैसले के खिलाफ है किसीको एतराज ?"

ब्रह्मचारी आदित्य ने अपने कुछ दिन के निवास मे अपनी सरलता और मधुर व्यवहार से जैसे सबका दिल जीत लिया था। अत. विरोध की कोई आवाज न उठ सकी।

लगा कि सर्वसम्मति से फैसला स्वीकार कर लिया गया। बुढिया

के चेहरे पर खुशी की रोशनी चमक उठी। लेकिन दूसरे ही क्षण पैंतीस-छत्तीस साल का एक पुरुष उठा और बोल उठा—"मैं एतराज करता हूँ!"

सहसा सबकी आँखे उस पुरुष की ओर मुड चली। और ढोल पुन. बज उठा—"ढम्-ढम्-ढमाक्! ढमाक्! ढमाक्!..."

और ढोल की आवाज शात होते ही भीड मे से कई आवाजे उस पुरुष को लक्ष्य कर जैसे एक साथ गूँज उठी—"अरे! वो जडा। पाप न कर! देवता के आगे दिल मे पाप न ला! तेरी कर्मिष्ठी छीनी गई! इसीसे एतराज करने चला है तू!"

ब्रह्मचारी जिस दिन पहले-पहल मलाणा पहुँचा था, आतिथ्य के अभाव मे भूखा ही सो कर ठड मे ठिठुरकर बीमार पड गया था। उस समय यही 'जडा' नामक पुरुष कर्मिष्ठ के पद पर था। अतिथि-अभ्यागत के सत्कार की जिम्मेदारी कर्मिष्ठ पर ही होती है। पर जड़ा कही अन्यत्र गये होने के कारण अतिथि-सत्कार न कर सका। लेकिन बाद मे कर्तव्य की इस अवहेलना के कारण खुड्ड ने देवता की अदालत मे उस पर अभियोग उपस्थित कर दिया। फलत. इसी प्रकार उस दिन भी पचायत बैठी थी। और इस अपराध मे कर्मिष्ठ को पदच्युत करके उसे दस रुपये का नकदी दड भी दिया था। और कर्मिष्ठ-पद पर एक नये व्यक्ति की नियुक्ति भी कर दी गई थी। मनुष्य की नैसर्गिक ईर्ष्यालु व प्रतिशोध की भावना इस क्षण उसमे भी जाग उठी थी।

अपने पर किये आक्षेप पर ध्यान न दे जडा बोलने लगा—"हमारे मलाणे मे चोरी नही है! बेईमानी नही है! राह पर पडी किसी दूसरे की सोना-चाँदी को भी कोई नही छूता! कोई झूठ नही बोलता! कोई दूसरे को धोखा नही देता! मगर हम सर्दियो मे भेड-बकरे लेकर मडी-सुकेत की ओर जाकर वहाँ की बेईमानी देख चुके हैं। वहाँ की ठगी और चोरी देख चुके हैं। वहाँ का पाप देख चुके है। अगर किसी बाहरी परदेसी को अपने गाँव मे हम बसा दे तो क्या वही चोरी, बेईमानी और

धोखेबाजी हमारे गाँव मे भी नही फैलेगी ? वही पाप हमारे गाँव मे भी घुसकर इस देवता के राज को खराब नही कर देगा ?"

उसके इस विरोध की मिश्रित प्रतिक्रिया अब आरम्भ हो चली। भीड मे से इस प्रकार की आवाजे आने लगी—

"जडा ठीक कहता है !"

"नही ! परदेसी भला लोग ! भला लोग ! जडा झूठ बोलता है !"

"नही ! जडा ठीक कहता है ! परदेसी पढा-लिखा लोग ! पढा-लिखा लोग बडा बेईमान ! बडा बेईमान !"

बने-बनाये घास-फूस के घर पर जैसे किसी ने आग की चिनगारी फेक दी हो ! आग जैसे हवा का सहारा पाकर जल उठी। भीड मे खलबली-सी मच गई। अचानक पक्ष-प्रतिपक्ष का वातावरण उभर आया। और सभा की कार्यवाही कणाश बोली मे होने के कारण ब्रह्मचारी की समझ मे साफ कुछ आया नही। लेकिन अचानक बदले रुख को देख उसके मन मे भी शका जाग उठी।

अब बुढिया को फिर खडी होना पड़ा। पुन ढोल की चोट बोल उठी—"ढम्-ढम्-ढमाक् ! ढमाक् ! ढमाक् ··"

ढोल की आवाज खामोश होने पर भीड की आवाज भी खामोश हो चली। और बुढिया ने हाथ जोड कहना आरम्भ किया—"हमारा देवता बडा दयालु ! बडा धर्मिष्ठ ! देवता तो सबके मन की बात जानता है ! कौन पापी, कौन धर्मिष्ठ, देवता खुद सब कुछ जानता है, सब कुछ समझता है। परदेसी मेरा धरम का बेटा। दो महीना हो गया मेरे पास रहते। इस गाँव मे रहते। अगर वो पापी होता, बेईमान होता, तो कैसे इस गाँव मे देवता उसे रहने देता ? कैसे उसकी बीमारी ठीक कर देता ? और कैसे अभी-अभी परदेसी को यहाँ बसने और जगह-जमीन देने का फैसला करता ? जडा खुद झूठा, खुद पापी, खुद बेईमान जो देवता के आगे ऐसा झूठ बोल दिया !"

बुढ़िया के इन सीधे-सादे तर्कों का अचानक बड़े जोर का असर

हुआ। जैसे जलती आग पर अचानक घडो पानी पड गया। बुढिया के समर्थन मे भीड से फिर आवाजे आने लगी—

"खुड्ड की माँ ठीक कहती है! देवता खुद सब कुछ जानता है! सब कुछ समझता है!··परदेसी भला लोग! भला लोग!"

और तब पुन ढोल पर चोट पडी। देवता के प्रतिनिधियो के अंग पुन काँपने लगे। पहला निर्णय सर्व-सम्मति से बहाल रखा गया। सभा विसर्जित हो चली। जडा अपना-सा मुँह लिए घर की ओर चल पडा।

◇ ◇ ◇

खुड्ड के खेत के पास ही आदित्यनाथ को पचायती परती जमीन मिल गई। गाँव के सभी नर-नारियो ने हाथ मे फावडे लेकर केवल एक दिन के लिए सारी जमीन को खोदने मे हाथ बटाया। सामूहिक सहायता की यह रस्म एक दिन से अधिक न चल सकी। क्योकि रोटी कमाने की अपनी निजी समस्या सबके सामने थी। समाज अभी कबाइली स्थिति मे होते हुए भी सामूहिक परिवार-भावना से आगे बढ चुका था। परन्तु पहाडी ढाल पर केवल जमीन खोद देने भर से ही खेत नही बन जाता। सीढियो की तरह एक-दूसरी पर टेढी-मेढी क्यारियो के बनाने मे एक अच्छा-खासा मकान तैयार करने से कही ज्यादा श्रम और समय लगा करता है। हर क्यारी की मिट्टी को चौरस रखने और नीचे गिरने से बचाये रखने के लिए पत्थरो की एक-एक दीवार खडी करनी पडती है। और तिस पर खोदी हुई मिट्टी से पत्थर के छोटे-बडे टुकडो को निकालने और अलग करने का काम।

बुढिया की ब्याही कन्याओ ने अपनत्व की भावना से कुछ अधिक हाथ बढाया। लेकिन उनका अपना पारिवारिक जीवन भी था। खुड्ड अपनी पत्नी के साथ अक्सर जडी-बूटी के लिए जोत पर जाया करता। बुढिया स्वय कभी खेत तैयार करने मे लगी रहती और कभी जडी-बूटी बेचकर गृहस्थी का सामान लाने जरी के बाजार मे जाती। पर उसकी छोटी क्वाँरी कन्या बुद्धी उन क्यारीनुमा खेतो को बनाने मे इस कदर

जुटी रहती मानो वह स्वयं उन खेतो की मालकिन बनने जा रही हो।

ब्रह्मचारी को इस प्रकार के शारीरिक श्रम का अभ्यास न था। उत्साहवश खेत के काम मे वह लग जाता, पर बहुत जल्द उसके चेहरे पर पसीनो के बीच थकान की रेखाएँ उग आती। उन उगी रेखाओ को देख बुद्धी अपनी टूटी-फूटी हिन्दी मे सस्नेह अनुरोध करती—"भाउ ! तू जाके घर मे आराम कर ! तेरे से नही हो सकता खेत का काम ! मै अकेली जरूर से सारे खेत बना लूँगी। तू फिकर न कर भाउ !"

मलाणे की बोली मे बडे भाई को, 'भाउ' और छोटे भाई को 'भाइच्' कहकर सबोधित किया जाता है। ब्रह्मचारी को बुद्धी के मुँह से 'भाउ' शब्द बडा मीठा लगता। और उसके चेहरे पर 'खस' रक्त मे मिले हुए किराती मगोल रक्त का सौदर्य विशेष ढाँचे मे ढला हुआ प्रतीत होता। ब्रह्मचारी जब-तब मुग्ध होकर उसे देखा करता। बडी-बडी खिची आँखो की काली-काली पुतलियो की उस सरल स्निग्ध चितवन मे और पतले-पतले गुलाबी ओठो पर स्नेह की अकृत्रिम मुस्कान मे कितना माधुर्य, कितनी आत्मीयता और कितना भोलापन उसे दिखाई देता। उस मुस्कान मे उसका चेहरा यो खिला प्रतीत होता ज्यो गेहुँए रग पर गुलाबी रग की हल्की पालिश कर दी गई हो। मुश्किल से पन्द्रह-सोलह की उम्र थी उसकी। सावन की धूप मे चेहरे पर पसीने के उभरे बूँदो मे नवयौवन की अरुणाई यो खिला करती ज्यो मोतियो की हल्की सतह के नीचे से मूँगो का रग चमक रहा हो।

सावन-भादो की धूप उस ऊँचाई पर भी कम कडी नही होती। ब्रह्मचारी बुद्धी के अनुरोध पर खेत की झोंपडी मे बैठकर आराम करने लग जाता। और वही से काम मे लगी बुद्धी को एकटक से देखने भी लग जाता। उसके सिर पर लगी कनझँपा टोपी से निकला हुआ लम्बे काले बालो का गूँथा हुआ जूडा उसकी पीठ पर यो हिला-डुला करता जैसे कोई बँधा हुआ काला नाग आज़ाद होने को छटपटा रहा हो। काम मे लगी हुई ही बुद्धी भी जब-तब आँख बचाकर ब्रह्मचारी को देखा करती। लेकिन

उसे अपनी ओर ताकते देख जैसे अचानक शरमाकर दूसरी ओर मुँह करके काम मे लग जाती। उस नवयौवन का वही सकोच उसके मन मे उभर आता जहाँ सभ्यता और जगलीपन के बीच कोई विभाजक रेखा नही होती। बुद्धी के इस प्रकार शरमा उठने का एक दूसरा कारण यह भी था कि ब्रह्मचारी के खेत बनाने मे उसे उतनी तत्परता से लगी देख दूसरी स्त्रियाँ आँखे नचाकर उससे अक्सर मजाक भी कर देती—"हाँ, मालूम पड गया! बुद्धी खुद परदेसी को बाँध रखना चाहे है! इसीसे ऐसी मेहनत! नही तो कौन किसके लिए मरा करे है!" और बुद्धी के सामने ही वे ब्रह्मचारी से भी हिन्दी मे बोल देती—"हाँ बाबा! हरजाने मे रुपिया बरबाद करने की क्या जरूरत? तू बुद्धी से ही ब्याह कर! इसी से कर! ऐसी मेहनती सुन्दर दुलहिन तेरे को और मिले कहाँ?"

ऐसी बाते सुनकर बुद्धी मारे शरम के लाल हो काम छोड झोपडी की ओर भाग पडती। और वहाँ से आँखे बचा-बचा के ब्रह्मचारी को देखा भी करती। लेकिन कुछ मिनट बाद ही ब्रह्मचारी को काम से थका महसूस करके वह झट खेत मे दौडी आकर उसे सस्नेह फटकार भरे स्वर मे आदेश देती—"भाउ! तू जाके आराम कर। तू खेत मे न आया कर। घर मे ही रह। घर मे ही आराम कर। खेत का काम तेरे से कैसे हो सके है? तेरा हाथ-पैर बडा कोमल! तू क्यो खराब करे है अपने हाथ-पैर को?"

बुद्धी के मन मे भी मजाक के खरोचे खा-खाकर ब्रह्मचारी के प्रति जैसे पत्नीत्व का आकर्षण जाग उठा था। ब्रह्मचारी की उम्र काफी अधिक थी। तेतीस-चौतीस साल की और मलाणे के युवको के मुकाबले चेहरा भी सुन्दर न था। लेकिन बुद्धी की नजरो मे उसके हाथ-पैरो की स्वच्छता और कोमलता, एव पहनावे की साफ-सफाई का मूल्य जैसे कम न था! उसकी नजरो मे वह मलाणे के सभी पुरुषो मे एक वैशिष्ट्य युक्त महा-पुरुष-सा प्रतीत होता! और इस महापुरुष को वह अन्य पुरुषों से अलग ही देखना चाहती। अन्य पुरुषो की तरह खेत के गन्दे काम मे उसे लगे

देखना वह नही चाहा करती । उसे मालूम था ही कि परदेसी के ब्याह की बात-चीत भी चल पडी है । तो क्या, वह स्वय उसके योग्य नही जो दूसरी औरतो की ओर वह जब-तब देखा करता है ? और तब उसके मन मे स्वाभाविक ईर्ष्या का भाव भी पैदा हुए बगैर न रह पाता । अतः झोपडी मे पडे-पडे ब्रह्मचारी की आँखे अपनी ओर लगी देख उसे मन ही मन खुशी भी होती और स्वय उसकी पत्नी बन जाने की आकाक्षा भी जाग जाती ।

और इसी प्रकार ब्रह्मचारी का मन भी मजाक के खरोंचे खा-खाकर बुद्धी की ओर दौडने लग पडा । लेकिन यह याद आते ही कि बुद्धी उसे 'भाउ' कहकर पुकारती है, उसका सस्कार-ग्रस्त मन पाप की आशका से आतकित हो जाता । लेकिन फिर वह सोचने लग जाता—"बुद्धी से मेरा कोई रक्त का सम्बन्ध तो नही ? भाई-बहन के सम्बन्ध का आधार केवल भावना मात्र ही तो है ? दाम्पत्य की भावना यदि इस भावना को दबा ही दे तो इसमे पाप कैसा ? सभ्य समाज मे भी एक-दूसरे को 'भाई-बहन' इस शब्द से सम्बोधित करते हुए भी बाद मे परस्पर दाम्पत्य-जीवन मे बँध जाने के उदाहरणो का अभाव नही है । और केरल व मद्रास के नम्बूद्री एव तमिल ब्राह्मणो मे अपनी सगी बहन की कन्या से विवाह करने की प्रथा का समर्थन कैसे किया जा सकेगा ? और इसी प्रकार समस्त दक्षिण भारत मे मामा की कन्या से विवाह की प्रथा का भी ? वहाँ तो स्पष्टत निकट रक्त का सम्बन्ध भी होता है । मनु और याज्ञवल्क्य के विधान के अनुसार घोर पापजनक !"

इसके अतिरिक्त बुद्धी के प्रति अपने मन मे उभरे आकर्षण के समर्थन मे शास्त्र-पुराणो की कथाएँ भी उसका साथ देने लग जाती । बडे-बडे देवताओ और ऋषि-महर्षियो की कामुकता की कथाएँ उसकी अपनी कामुकता का समर्थन करने लग जाती । पिता के पुत्री पर अनुरक्त होने, सगे भाई के सगी बहन पर अनुरक्त होने की घटनाओ के समक्ष इस सामान्य घटना का मूल्य क्या ? महत्व क्या ? और अर्जुन, कृष्ण के

इशारे से अपनी ममेरी बहन सुभद्रा का अपहरण करके क्यो उसके साथ दाम्पत्य-जीवन मे बँधा था ? क्यो उसे पाप नही लगा ? और क्यो स्वयं कृष्ण सोलह सहस्र नारियो का पति होते हुए भी भगवान् बन गया ? सबका पूज्य और आराध्य बन गया ? नीति-अनीति की बाते और नैतिक मान्यताओ की दुहाई मे कोई सार नही ! कोई तत्व नही ! सब कुछ महज एक घपला के सिवा और कुछ नही !"

फिर वह अपनी एव बुद्धी की उम्र मे अठारह-उन्नीस साल के अन्तर पर भी जब-तब विचार करता । किन्तु अन्य नैतिक मान्यताओ की तरह इस मान्यता को भी वह महज बकवास मान लेता । और ऊँचे तबके के लोगो मे ही काफी बडी उम्र मे छोटी उम्र की तरुणियो से विवाह करने के कतिपय उदाहरण उसकी नजरो मे नाच-नाच जाते । उसके खुदगर्ज और कामाकुल मन के समक्ष नैतिकता की सारी बाते नि सार बन जाती । वह स्वयं साधु रह चुका था, और साधुता की ऊँची गद्दियो पर बैठे नैतिकता के मक्कार मदारियो के पर्दे की ओट के खेलो को स्वय भी देख चुका था, और उस दिन स्वामी सोमानद के जीवन की करुण गाथा सुनकर आज के एक विश्वविख्यात कलियुगी योगी का सारा व्यक्तित्व जैसे उस मक्कारी के पर्दे से बाहर आकर उसके सामने खडा हो चुका था । ब्रह्मचारी घृणा भरे स्वर मे बोल उठा—"समाज के मक्कारो द्वारा निर्मित नैतिकता की गाडी के बैल बनने से बढकर मूर्खता एक मनुष्य के लिए और हो क्या सकती है ?"

फलत. बुद्धी की ओर उसका मन उत्तरोत्तर निर्धोक बढ चला । और बुद्धी अल्हड तरुणी होती हुई भी आखिर तरुणी थी । तारुण्य के साथ प्रकृतिदत्त परख का तत्व भी उसके मन मे इस प्रेम के खरोंचे खा-खाकर विकसित होने लगा था । ब्रह्मचारी के मन की गति को अपनी ओर उत्तरोत्तर बढते हुए महसूस करके वह स्वय भी उस ओर बढकर जैसे मध्य-मार्ग मे ही उसका स्वागत करने को तैयार रहती ! और जब ब्रह्मचारी को इस तथ्य का आभास मिलने लगा तो उसका

प्रौढ तारुण्य जैसे एकाएक नवयौवन मे परिरणत होने लग पडा। उसका तारुण्य भी जैसे मुडकर मध्य मार्ग मे बुद्धी की उत्तरोत्तर विकासमान तारुण्य भावनाओ को पकडने का प्रयास करने लगा। उसमे मिलकर जैसे स्वय नवीन बन जाना चाहने लगा। वह सचमुच अपने वय के कतिपय बीते वर्ष जैसे भूल चला।

लेकिन जब-तब उसके मन को यह आशका भी झकझोर जाया करती कि कही स्वय उसकी धर्म-माता ही इस सम्बन्ध मे बाधक न बन जाए। लेकिन साथ ही उस वृद्धा के रुख मे अपने प्रति प्रगाढ ममत्व और वात्सल्य का प्रकम्पन देख वह आश्वस्त भी हो जाया करता। बल्कि बुढिया ने स्वय ही एक दिन बुद्धी के समक्ष ही मजाक-मजाक मे कहा था—"बेटा! बुद्धी को तू ही रख अपने पास! यही तेरे को खाना बना के खिलाएगी! तेरा घर-बार भी सम्हालेगी!"

उस समय चूँकि स्वय आदित्यनाथ का मन बुद्धी की ओर इस रूप मे बढा न था, अत उसे यह कोरा मजाक ही महसूस हुआ। किन्तु अब उसी मजाक का हर व्यजन और स्वर उसके लिए जैसे बडा कीमती बन चला। वह अक्सर अत्यन्त अभिलाषा भरे दिल से सोचा करता—"काश, माँ का वह मजाक कोरा मजाक न होता! काश, यह बात सत्य हो जाती! सत्य होकर रहती!"

अक्सर उसके मन मे जगत्सुख के निकट अपने ऊपर कीचड फेके जाने की वह घटना भी बार-बार उभर आती। और उसके साथ तरुणी कम्मो और उसका मोहक सौदर्य भी! बुद्धी की ही उम्र की तो थी वह! और तब वह दोनो के नाक-नक्श और रूप-रग की तुलना भी करने लग जाता। कम्मो के चेहरे पर विशुद्ध खस रक्त का सौदर्य था, और बुद्धी के चेहरे पर खस और किराती रक्त का सम्मिलित सौदर्य कही ज्यादा आकर्षक लग रहा था। जैसे कम्मो दीपक की रोशनी थी, तो बुद्धी बिजली की। कम्मो यदि गुलाब का एकहरा फूल, तो बुद्धी गुलाब का दोहरा फूल थी। जैसे बिजली की रोशनी मे दीपक की रोशनी का कोई

मूल्य और महत्व नही रह जाता, उसी प्रकार अब बुद्धी के समक्ष मानो कम्मो का मूल्य भी उसकी नजरो मे कम हो चला। वह धीरे-धीरे कम्मो को भूल भी चला।

बुढिया ने शायद पहले मजाक मे ही वह बात कही हो, पर उसके मन मे भी वह मजाक उत्तरोत्तर जैसे सत्य का रूप लेने लग पडा। वह भी अक्सर मन-ही-मन सोचने लगी—"बुद्धी को किसी पुरुष के साथ तो बँधना ही है ? फिर परदेसी के साथ ही उसे बाँधने मे हरज क्या ? गाँव के बदमाश नौजवानो से मेरा परदेसी बेटा तो कही अच्छा ! कितना साफ-सुथरा और कोमल-कोमल है उसका हाथ-पैर ! और वैसी साफ-सफाई यहाँ है किसी मे ? बुद्धी भी तो कहा करती है—'परदेसी भाउ का हाथ-पैर कितना अच्छा है 'ह्या'[1] ! कितना कोमल ! कपडा-लत्ता भी कितना साफ !' और वह कितना प्यार करती है मेरे परदेसी बेटे को ! बुद्धी ही से क्यो न ब्याह करा दूँ उसका ? बुद्धी कितनी मेहनत से खेत बना रही है अभी ! उसके बनाये खेत पर किसी दूसरी का हक क्यों होने दूँ ?"

वह फिर सोचती—"ब्याह के लायक क्वाँरी लडकी तीन-चार से ज्यादा अभी गाँव मे नही है। मगर बुद्धी के बराबर की न कोई सुन्दर है, न सील-सुभाव की है ! अगर पराई औरत को भगा ले आवे तो हरजाने का नाहक एक बखेडा ! हरजाने का बीस रुपिया तब देना होता है जब खुद मरद औरत को छोड दे। राजी-खुशी से किसी दूसरे मरद के पास उसे जाने दे ? मगर मेरे परदेसी बेटे के लिए कौन राजी-खुशी से अपनी औरत को छोडेगा ? खूबसूरत और सील-सुभाव वाली को अपनी मरजी से कोई क्यो छोड देगा ? और कोई खूबसूरत और सील-सुभाव वाली क्यो एक मरद को छोड किसी दूसरे का हाथ पकडेगी ? ऐसी औरत से ब्याह करने से तो मेरे परदेसी बेटे का कुँआरा रहना ही कही अच्छा !

---

१. 'कणाश' बोली मे माँ के लिए संबोधन 'ह्या'।

मगर कही उतावली मे परदेसी ने किसी दूसरे की औरत को भगा लिया तब तो हरजाने का मुँह माँगा रुपिया देना ही पडेगा मेरे को ? फिर कहाँ से आएगा यह रुपिया ? अपना गुजारा ही तो मुश्किल से हो पाता है ? ···नही ! बुद्धी को ही दे दूँगी अपने परदेसी बेटे को ! बुद्धी भी खुश रहेगी ! परदेसी भी !"

बुढिया ने स्वय परदेसी के मन मे ब्याह की भूख जगाई थी, यह वह जानती थी। और इस नाते भी अपनी जिम्मेदारी महसूस करके उसने मन-ही-मन ऐसा करने का फैसला कर लिया।

◇ ◇ ◇

सावन का महीना काफी आगे बढ चुका था। जोतो के बरफ पिघल चुके थे। और उन बरफो के भीतर अबतक दबी और निर्जीव-सी बनी जडी-बूटियो एव फूलो की पौदे अब आजाद बनकर इस प्रकार लहलहा उठी थी जैसे गुलामी के पजे से मुक्त कोई व्यक्ति या समाज। देखते ही बन रही थी वह शोभा। घनी घासो की हरी-हरी कालीनो पर श्वेत, श्याम, नीले, पीले और लाल रगो के पुष्पो की छटा और सौरभ से वे जोते नील गगन की उन्मुक्त, व्यापक और सीमाहीन छाया मे इस प्रकार मुस्करा रही थी जैसे समृद्ध वात्सल्य की सीमाहीन स्नेह की छाया मे विकासशील शिशुओ का सब ! मुनाल, पहाडी बुलबुल और विविध जाति के नयनानन्दी पक्षियो के श्रुति-मधुर शब्दो की गूँज जब-तब घाटी और जोतो को और भी रमणीय बना देती।

फसले काटी जा चुकी थी, और नये सिरे से फिर खेत बीजने की तैयारी की जा रही थी। अत जमल भगवान् के प्रति निकट अतीत की कृतज्ञता और भविष्य की आशा अब मलाणे की घाटी मे वार्षिकोत्सव का रूप लेने जा रही थी। हर साल की तरह इस साल भी तैयारियाँ की जाने लगी। गाँव पर देवता का वार्षिक कर अन्न के रूप मे छह 'खारी' होता है। १ खारी=२० भार, १ भार=१२ बट्टी, और १ बट्टी=लगभग २ सेर। इस प्रकार मदिर की ओर से करीब ७२ मन

अन्न की वसूली शुरू हो चली । गेहूँ, धान, कई प्रकार की दाले वे 'जरी' के बाजार से खरीद-खरीद कर अपने हिस्से का कर चुकाने लग पडे । मदिर का भडार-घर भर चला। भडार-घर का मुख्य अधिकारी 'कठियारा' उन्हे सम्भालने और सहेजने मे मशगूल हो पडा। इस अन्न से वार्षिकोत्सव के अवसर पर कुल्लू उपत्यका के विभिन्न गाँवो से दर्शक रूप मे आये सैकडो अतिथियो का सत्कार किया जाता, और शेष अन्न से साल भर मे वहाँ यदा-कदा आये अतिथियो का । इसके अतिरिक्त उस अवसर पर बलि के लिए सारे गाँव से पाँच-छ सौ भेड-बकरे भी एकत्र किये जाने लगे । और इनके अतिरिक्त नमक, मिर्च, मसाला, घी, गुड, तेल आदि सग्रह भी हर घर से किया जाने लगा ।

वार्षिकोत्सव के मेले के लिए घर्राटो (पनचक्कियो) मे गेहूँ पीसा जाने लगा । और मदिर के भीतरी गलियारे मे पत्थर के ओखलो मे कूटे जा रहे धान पर मूसलो के लयबद्ध प्रहार अनवरत एक वाद्य-विशेष की-सी ध्वनि की सृष्टि करने लग पडे । और उस ध्वनि पर मूसलो के प्रहार मे सलग्न महिलाओ के सगीत की सामूहिक ध्वनि भी गूँजने लग पडी ।

बुद्धी का नव-यौवन का अल्हडपन भावी दाम्पत्य की गुरुता से उत्तरोत्तर जैसे दबकर गंभीर बनने लग पडा था । चेहरे पर सकोच की रेखाएँ भी उभरने लग पडी थी । अब वह ब्रह्मचारी को सीधी सरल चितवन से देखने का साहस न कर पाती । क्योकि उसी वार्षिक मेले के अवसर पर उसीके साथ उसके ब्याह होने की चर्चा अब किसी से भी गुप्त न रह गई थी । लेकिन भावी दाम्पत्य के उल्लास मे अपने सौदर्य को सँवारने और निरखने की आकाक्षा भी उसकी जाग चली । अपनी भाभी का दो-टकही आइना लेकर चोरी-छिपे अपने चेहरे को वह बार-बार देखा करती । ब्रह्मचारी की ही तरह अपने हाथ-पैर और चेहरे को धो-पोछ-कर साफ-सुथरा रखने मे अब खूब सावधान रहा करती । अपनी पारी के अनुसार बुद्धी को भी धान कूटने जाना पडता अत जब वह धान कूटने जाया करती, अपनी हमजोलियो और अन्य महिलाओ के

सरस व ईर्ष्यान्वित व्यग के तीर उसपर छोडे जाने लग पड़ते ।

वह तरुणी, जिसने खेत मे प्रथम-प्रथम ब्रह्मचारी को विवाह के लिए उकसाया था, बुद्धी की ओर आँखे मटकाकर ईर्ष्याभरे स्वर मे बोली—"तो बुधिया अब परदेसी की बहू बनने जा रही है ! तो अब से हम बुधिया को 'बूढी बहू' कहा करे !"

"क्यो ? बुद्धी तो बिलकुल छोकरी है अभी ?"—एक दूसरी तरुणी ने शह का तीर छोड कर हँस दिया ।

और तब पहली ने हँसकर फिर जहरीला तीर छोडा—"क्यो क्या ?" बूढे की बहू बूढी ही तो कही जायगी ?"

बुद्धी मारे क्रोध के लाल हो उठी । लेकिन उसके कुछ बोलने से पहले ही उसकी एक सहेली ने पहली पर कसकर प्रहार कर दिया—"अरि, ओ टुडरी ! शरम नही आती तेरे को ऐसा बोलते ? तू खुद तो डोरे डाल रही थी परदेसी पर ! तब तो परदेसी जवान था तेरे लिए, मगर अब जब हाथ से निकल गया तो बूढा बन गया ? मारी डाह की क्यो जली जा रही ? तीन-तीन मरद से मन तेरा नही भरा तो चौथे के शिकार पर चल पड़ी थी ? थू !"—कहकर अभ्यासवश नीचे थूकने का प्रयास करते-करते झट वह रुक भी गई । क्योकि देवता का वह मदिर था । और मदिर मे थूक फेकना अपराध था ।

टुडरी जैसे को तैसा जवाब पाकर सहसा झेप चली और झेप मिटाने के प्रयास मे घृणा से नाक-भौ सिकोडती हुई बोली—"हुँम् ! भला मलाणे मे मरद का अकाल पड गया जो मैं जाती उस काले-कलूटे बूढे परदेसी पर डोरे डालने ? थू ।"—कहते-कहते सचमुच उसके मुँह से थूक निकलकर चावल पर जा गिरा ।

बुद्धी को जैसे स्वर्ण सुअवसर मिला ! अब तक सकोच की मारी वह चुप थी । उसकी सहेली 'सुक्की' ही उसकी ओर से लड रही थी । पर प्रतिशोध का ऐसा सुन्दर क्षण मिलता कब ! शर्म सकोच की कोई बाधा भी नही ! ललकार भरे स्वर मे टुडरी से बोल उठी—

"तूने देवता का अन्न खराब कर दिया। पापिन ! अब यह चावल कैसे देवता के भडार मे पडेगा ? सुच्चा अन्न भी जूठा बन जायगा ! तेरे दिल मे जो पाप भरा है वही निकल के अब बाहर आ गया ! पाप परगट हो गया ! देख सुकिए ! उधर का चावल इधर न आये ! नही तो यह भी खराब हो जायगा !"

जिस प्रकार कोई धृष्ट व्यक्ति अपने खुले अपराध पर भी झट झूठ की धूल झोकने मे रचमात्र भी सकोच अनुभव नही करता, और अपना अपराध दूसरे पर ही डालने का प्रयास करता है, उसी प्रकार टुडरी भी झट चावल पर गिरे थूक के चिह्न को पैरो से मिटाने का प्रयास करती बोल उठी—"कहाँ ! कब फेका मैंने थूक ? थूक तो फेका सुक्की ने उस चावल पर जिसे तू सुच्चा बता रही है ! मै गुर-पुजारी से बोल दूँगी। तू ही जूठे चावल को भडार मे देने जा रही है। तू खुद पापिन ! थू ! थू !"

टुङरी को यो भी थूक फेकने की आदत काफी ज्यादा थी। और अपने अपराध को छिपाने के इस प्रयास मे भी आदत ने उसे फिर धोखा दे दिया। दूसरी स्त्रियो ने भी उसके थूक को इस बार चावल पर गिरते देख लिया। अब तो जैसे रगे हाथ पकड ली गई वह।

एक प्रौढा उसे फटकारती हुई बोल उठी—"तू जैसी छिनाल है टुडरी, वैसी ही झूठी, और वैसी ही पापिन भी। देवते से भी दगा और धोखा ? एक बार थूक फेक के पैर से मिटाने लगी, मगर अब देखती हूँ तू कैसे मिटाती है इसे।" कहते हुए उसे धक्के दे अलग करने लग पड़ी। बुढ्ढी भी झट उसकी चोटी पकड खूब जोर से खीचते हुए उसे वहाँ से अलग करने का प्रयास करने लग पडी ताकि उस थूक को भी पैर से मिटाकर वह गुर-पुजारी, कर्मिष्ठ और कठियारे के सामने बेदाग न बन सके। और सुक्की झट दौड चली कठियारे को बुलाने, और दूसरो को खबर देने। और दूसरे ही क्षण कठियारा वहाँ दौड़ा हुआ आ भी पहुँचा। टुङरी का पक्ष कमजोर हो चला था। गवाही मे कोई भी उसका साथ

देने को तैयार न थी। उसने सुक्की को भी थूक फेकने की अपराधिन साबित करने की कोशिश की, पर उसमे भी सफल न हो सकी। परिणाम यह हुआ कि उस सारे जूठे अनाज के बदले दूना अनाज घर से लाकर वहाँ भरना पडा और ऊपर से एक बकरे का दड भी। थूक से अपवित्र हुए स्थान पर आग जलाकर उसे ही उसे सुच्चा भी करना पडा।

सुक्की अत्यन्त खुश हो सबसे बोल रही थी—"देखा तो, देवते का इन्साफ! देवते का दड! झूठ बोलने का फल! परदेसी को बूढा बता रही थी! बुढ्ढी को बूढे की बहू कह रही थी! और पहले खुद परदेसी की बहू बनने को उतावली हो चली थी। जब परदेसी नही फँसा, तो छिनाल की नजर मे बूढा बन गया! काला-कलूटा बन गया! 'मखीरी' (शहद) न मिलने पर भले ही कोई उसे खट्टी कह दे, मगर इसी से मखीरी खट्टी तो नही बन जाती?"

उस दिन से किसी को फिर साहस न हुआ बुढ्ढी से इस प्रकार बाते करने का। अधविश्वास से आच्छन्न उनके हृदय को ऐसा लगा जैसे स्वय देवता ने ही बुढ्ढी और परदेसी का पक्ष लिया है। स्वय देवता ने ही कटु व्यग्य करने वाली उस तरुणी को दड दिया है। फलत. सबकी आँखो मे बुढ्ढी भी आदरणीय बन चली और आदित्यनाथ भी। और बुढ्ढी के प्रेमाविष्ठ हृदय को जैसे और भी प्रोत्साहन और उत्तेजना मिली। वह बडी आकाक्षा और बेचैनी के साथ अपने ब्याह के दिन को अगुलियो पर गिनने लगी, जैसे दुष्यन्त के वियोग मे व्याकुल शकुन्तला अँगूठी के अक्षरो को गिना करती थी। वियोग तो था ही। मन के मिलाप के बावजूद शरीर के मिलाप मे अभी कुछ दूरी तो शेष थी ही! और विवाह होने वाला था उसी वार्षिकोत्सव के अवसर पर।

वार्षिकोत्सव के दो दिन शेष रहते ही गाँव की और घरो की सफाई की जाने लगी। हर घर का पिछवाडा, और यहाँ तक कि मन्दिरो के पिछवाड़े भी साल भर के मल-मूत्र से पटे पडे थे। अतिशय ऊँचाई

की ठंड के कारण दुर्गन्ध ज्यादा न थी। पर गन्दगी तो थी ही। और जमलू तथा उसके कतिपय सहकारी देवताओ की मूर्तियो के चाँदी और पीतल के 'खोल-से' भी निकाले जाकर साफ किये जाने लगे। मलाणे के गृहस्थो के घरो की दीवारे, फर्श और ढलानी छप्परो की स्लेटे तक लकडी की थी, पर देवताओ के मन्दिरो की दीवारे लकडी के मोटे-मोटे लम्बे कुन्दो और पत्थरो को मिलाकर बनाई गई थी। मन्दिरो के द्वार बिल्कुल छोटे और सँकरे थे जो छोटी-छोटी काठ की किवाडो से बन्द रहा करते। पर खिडकी नाममात्र को भी नही। और मन्दिर के दरवाजे की बाहरी दीवार पर जगली गाय, भैस, और बकरी के चिपकाये बडे-बडे सीग यो दीख रहे थे ज्यो मृत अतीत वर्तमान की छाती पर चिपका हुआ हो! और उनके आस-पास चिपकाई हुई क्षुद्र जगली जीवो की लोहे की छोटी-छोटी आकृतियाँ कुछ यो जताती प्रतीत हो रही थी जैसे जमलू के समक्ष कोई भी अजेय नही! जैसे छोटे-बडे सभी जीव उसके विजित हो! पराजित हो! इन मृत पराजित जीवो को भी झाड-पोछकर साफ किया जा रहा था ताकि मेले के दर्शको के समक्ष जमलू का प्रताप और भी निखर उठे।

महीनो पहले से ही गाँव के अछूत इस अवसर पर पहनने के लिए नागरिको के ऊनी पट्टू बुनने मे खूब जोरो से सलग्न हो चुके थे। गुजारे के लिए गाँव के सवर्णो पर निर्भर रहने वाले इन अछूत मजदूरो की मजदूरी सन् ४५-४६ के उस महँगाई के युग मे भी केवल दो आने रोज बँधी हुई थी! मलाणे के विशेष अर्थशास्त्र के अनुसार यह मजदूरी कम न थी। क्योकि गाँव की सीमा के भीतर घी, शहद और ऊन जैसी महँगी चीजे भी छह छटाक मिला करती। और ऊपर से रोजाना खुराक भी। ऊनी पट्टू के अतिरिक्त भडकीले रगीन सूती कपडो की कमीजे और जाकेटे, और पायजामे जरी के बाजार मे कपडे खरीद-खरीदकर सिलाये जा चुके थे।

उधर बुद्धी की माँ भी विवाह का सरजाम जुटाने मे लग पड़ी थी।

घर भर के लिए नये वस्त्रो के अतिरिक्त बुढ्ढी के लिए जरी के बाजार से कुल्लू की बनी एक धारीदार सुन्दर पट्टू, भडकीले सस्ते रेशम की कमीज, जाकेट और पायजामा और टोपी भी खरीद ले आई थी। सोने-चाँदी के कुछ आवश्यक गहने भी बनवा लिये थे। और आदित्यनाथ के लिए सफेद ऊन का जामा, पायजामा और टोपी भी तैयार करा ली थी। और भोज-भात के लिए चावल, दाल, घी, शहद, गुड, चाकटी, माँस-मसाले का प्रबन्ध भी कर चुकी थी। ब्रह्मचारी की ओर से कम खर्च और सादगी के आग्रह के बावजूद वह गाँव की प्रथा का उल्लघन कैसे कर पाती? और खुड्डू एक परम आज्ञाकारी पुत्र की तरह माँ के आदेश और इशारे पर नाच रहा था। पर उसकी पत्नी 'खोणो' पूरे दिल से इस काम मे साथ न दे पा रही थी। लेकिन घर पर पूरा अधिकार अभी सास का था। इस अधिकार की अधिकारिणी शायद वह तब तक नही बन सकती थी जब तक कि उसकी उम्र एक पुरुष मे ही बँधने योग्य बन न जाय। अर्थात् प्रौढत्व या वृद्धत्व के दायरे मे वह खीच न ली जाय!

वार्षिकोत्सव से एक दिन पहले ही कुल्लू उपत्यका के विभिन्न गाँवो और दिशाओ से यात्री नर-नारियो का समुदाय मलाणे की ओर रवाना हो पडा। मेला देखने के साथ खान-पान का प्रलोभन भी कम न था। पाँच-छह सौ भेड-बकरो की बलि का माँस, चाकटी और शराब, और भात, दाल, घी और शहद स्वाद की सुगध जैसे दूर से ही नशा बनकर उनके पैरो और दिल-दिमाग को तेज बना चुकी थी। और नये समाज को और विभिन्न मेलो को फिर-फिर देखने का प्रलोभन भी। और कुल्लू जैसे रसिक समाज मे अभिसार-क्रीडा का सुअवसर उस निर्जन पथ के घने जगलो मे उपलब्ध होने की आशा और सभावना भी अधिक थी। किसी तरुणी से आँखे लड़ जाने पर उसे भगा ले जाने की सुविधा भी अपेक्षाकृत अधिक थी।

इस अवसर पर भी कुल्लू के उन नर-नारियो की साज-सजा वैसी ही थी जैसी कि भुन्तुर के मेले के अवसर पर। मलाणे के नर-नारी भी

सज-धजकर इन अतिथियो के स्वागत के लिए जैसे तैयार थे। मलारणी महिलाओ के जेवर भी कुल्लू की स्त्रियो के जेवरो से बहुत कुछ मिलते-जुलते थे। पर देवता के प्रतिबन्ध के कारण उनके पैरो मे जूते न थे। अतिथियो के जूते गाँव के बाहर एक सुरक्षित स्थान मे रखा दिये गये। और धर्मशाला भर जाने पर गाँव के विभिन्न घरो मे भी उन्हे ठहराया गया। अतिथियो के सत्कार की जिम्मेदारी अनेक लोगो मे बाँट दी गई। अतिथि-सत्कार की यह विशेषता ही जैसे इन जगली मलारणियो को सास्कृतिक दृष्टि से कुल्लू वालो से ऊँचा किये हुए है, यद्यपि उनकी घाटी भी काफी ऊँची है।

"ढम्-ढम्-ढमाक्! ढमाक्! ढमाक्! ..." ढोल की चोट पर दूसरे दिन सुबह से ही देव-पूजा की प्रक्रिया आरम्भ हो गई। गुर और विभिन्न मन्दिरो के पुजारियो एव कर्मिष्ठो का अभिनय पूर्ववत् प्रारम्भ हो चला। ज्येष्ठाग और कनिष्ठाग की बैठक भी जम चली। यह बैठक थी प्रक्रिया प्रारम्भ करने की देवता से आज्ञा और सहमति की प्राप्ति के निमित्त। गाँव द्वारा चुने आठ प्रतिनिधियो ने देवता के तीन प्रतिनिधियो से हाथ जोड प्रार्थना की—"मलारणे पर जमलू देवता का राज है! हम मलारणे के लोग अपने दयालु देवता की दया से ही जी रहे है। भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी और दैवी प्रकोपो से देवता हमारी रक्षा करता है। यह देवता की ही दया का प्रताप है कि पिछले साल की फसल हम बटोर चुके हैं। और अगले साल की फसल और सुख-सुविधा के जीवन के लिए भी हमे देवता की दया का ही भरोसा और आसरा है। अपने देवता की पूजा-अर्चा करने का यह शुभ दिन बडे भाग्य से हम देख पाते हैं। सो, देवता से हमारी विनती है कि अब पूजा आरम्भ करने की इजाजत हमे दी जाय।"

और तब अनेक अभिनय और कथोपकथन के बाद पूजा की इजाजत दे दी गई। और साथ ही यह चेतावनी भी कि पूजा मे, और अतिथियो के सेवा-सत्कार मे किसी भी प्रकार की त्रुटि जमलू देवता को नाराज

कर देगी ! तब देवता का कोप गाँव पर बरस कर रहेगा ! इत्यादि-इत्यादि ।

जमलू देवता के सहकारी देवताओ की सवारियाँ बाजे-गाजे के साथ जमलू देवता के आँगन की ओर रवाना हो पडी । और इस बात का पूरा ध्यान रखा गया कि उन सवारियो से किसी भी अन्य व्यक्ति का सपर्क न हो सके । दोनो किनारे खडी भीड के बीच से उन सवारियो का जुलूस यो चल रहा था ज्यो किसी उच्चपदस्थ राजकर्मचारी का जुलूस । ढोल, घटा-घडियाल और तुरही की सम्मिलित आवाज उसमे रग भर रही थी । और अपने वाहनो के कधो पर पालकीनुमा सिहासन पर विराजमान उन देवताओ के खोल-से धूप मे चमकते कुछ यो लग रहे थे जैसे सोने-चाँदी की पुतलियाँ एक साथ मुस्कुरा रही हो ।

जमलू देवता के चौडे चौरस आँगन मे जुलूस पहुँचकर खडा हो गया । पर अपने अँगो को कँपाते भारवाहको के कधो पर देवताओ की मूर्तियाँ अब यो हिलने-डुलने लग पडी ज्यो दूर से ही जमलू देवता का वे सिजदा कर रही हो । अब जमल भगवान् की सवारी भी अपने मदिर से निकलकर उन दरबारी देवताओ को जैसे कृतार्थ करने चल पडी । इस जुलूम के आगे-आगे जमलू का गुर अपने अगो को विविध भाव-भगिमाओ मे कँपाते हुए धीरे-धीरे बढ रहा था और उसके पीछे चार वाहको के कधो पर लटके पालकीनुमा सिहासन पर आसीन जमल देवता की चाँदी की चमकती हुई मूर्ति, और वह जुलूस ! चार-पाँच मिनट बाद जमलू देवता आँगन मे आ पहुँचे और तब उनके आगे सहकारी देवताओ की पालकियाँ बडे जोर से हिल-हिलकर और झुक-झुककर बडे देवता को अभिवादन पेश करने लगी । इस प्रकार कुछ मिनट खडे-खडे अभि-वादन ग्रहण कर लेने के बाद जमलू देवता की सवारी नीचे आँगन मे रख दी गई, और अगल-बगल उन देवताओ की सवारियाँ भी ।

"ढम्-ढम्-ढमाक् ! ढमाक् ! ढमाक् ! . . ." भीड से अलग-थलग खडे अछूत बजनियो ने पुनः ढोल पर चोट दी । और अब जैसे स्वय

देवताओ की साक्षी बना कतिपय क्वाँरी कन्याओं के विवाह की विधि आरभ हो चली। कन्या के प्रथम विवाह को पवित्र मानकर ही इस पवित्र अवसर का उपयोग किया जाता है, और शास्त्र-विधि के निर्वाह के लिए कुछ मील दूर 'धरमौर' नामक गाँव से ब्राह्मण पुरोहित को आमत्रित भी किया जाता है। पुरोहित स्वय इस अवसर के इन्तजार मे रहा करता है।

पुरोहित पण्डित सखाराम ने पहले ही पूरे आडम्बर के साथ विविध रगो के चूर्ण से विवाह-वेदी को सजा-धजाकर तैयार कर लिया था। अपने गँवारू स्वर-चाप के साथ वेद-मत्रो का उच्चारण करते प्रज्वलित हवन-वेदी पर तिल, चावल, जौ, गाय के घी और जडी-बूटियो से मिली आहुतियाँ डाले जा रहा था। और उधर बजनिया भी ढोल पर विविध लय-तालो मे चोट देते हुए इस विधि मे जैसे रग भरता जा रहा था।

आदित्यनाथ और बुद्धी को वर-वधू रूप मे देख पुरोहित मन-ही-मन ईर्ष्यान्वित भी हो उठा। कभी वह आदित्यनाथ के चेहरे को देखा करता और कभी अवसरोचित सकोच के सौदर्य मे खिले बुद्धी के लावण्यमय चेहरे को। और उसकी झुकी हुई बडी-बड़ी आँखो को। एक अवारे साधु का यह सौभाग्य! मुफ्त मे इस अमूल्य मुक्तामणि का लाभ! पचास-पचपन की उम्र मे वह स्वय भी पाँच शादियाँ कर चुका था, जिनमे तीन अभी जीवित थी, और सबसे छोटी की उम्र अभी बीस से अधिक न थी। किन्तु उसे इतनी सारी पत्नियाँ प्राप्त हो सकी थी पर्याप्त रुपये-पैसे खर्च करने पर और जमीन-जायदाद के सहारे! लेकिन इस भिखमगे ब्रह्मचारी ने तो यहाँ भी मुफ्त का ही माल बटोरा! और माल भी हजारो-लाखो मे एक! बुद्धी के सौंदर्य के समक्ष उसकी अपनी तरुणी पत्नी उसे यो प्रतीत हो रही थी ज्यो रानी के आगे दासी और चाँद के आगे कोई तारिका! अचानक कामोद्वेग से उसकी नसो का, और उसके मन का बहुत कुछ वैसा ही हाल अभी हो चला जैसा कि शिव-सती और शिव-पार्वती के विवाह के अवसर पर सती और पार्वती की रूप

माधुरी की मदिरा से अचानक उत्तेजित वृद्ध पुरोहित श्री ब्रह्मा जी का हुआ था। खैर!

सभी युगल-जोडियो का विवाह सम्पन्न हो गया। और विवाह के बाद पुरोहित ने चुटकी लेते हुए ब्रह्मचारी से कहा भी—"शिव के लिए तो स्वय पार्वती को तपस्या करनी पडी थी ब्रह्मचारी जी, पर लगता है इस पार्वती के लिए आपको ही इतने वर्षो तक साधू बनकर तपस्या करनी पड रही थी!" और फिर जोर से हँसकर अपने पीले गदे दाँतो को दिखाते हुए—"यह कुल्लू है, कुल्लू ब्रह्मचारी जी! सभी साधु-सतो की तपस्या यहाँ आकर सफल होती ही है! पर आप तो सबसे भाग्यवान् साबित हुए! पुरोहित की दान-दक्षिणा को भूलियेगा नही!"

ब्रह्मचारी हँस पडा। लेकिन बुद्धी को पडित के पोपले मुँह की वह हँसी और हँसी मे खिले उसके गदे दाँत बहुत बुरे लगे।

इसके बाद भोज-भात आरभ हो गया। और उसके बाद कुल्लू के नर-नारियो का एक तरफ, और मलाणे के नर-नारियो का दूसरी तरफ नाच भी आरभ हो गया। नर्तको मे शराब के नशे ने और भी जिदादिली ला दी थी। भडकीली वेश-भूषा मे सजे सारे नर्तक और दर्शक यो लग रहे थे ज्यो चारो ओर की चोटियो के विविध पुष्प ही मनुष्य बनकर जमलू देवता की पूजा मे वहाँ एकत्र हो चले हो।

◇ ◇ ◇

पुरुष और प्रकृति के प्रत्यक्ष सयोग के बिना सृष्टि आरम्भ होती ही नहीं यह 'साख्य' दर्शन का मत है। पुरुष सचेतन है और प्रकृति जड, अचेतन। पुरुष तत्व के सम्पर्क होते ही जड प्रकृति एकाएक सचतेन, समर्थ हो सृष्टि-क्रिया मे प्रवृत्त होती है। नारी प्रकृति-तत्व की प्रतीक है, और नर पुरुष तत्व का! पुरुष-प्रकृति के समन्वित मूल तत्व का परिणाम ही सारा जगत् है, जगत् के समस्त जीव-जन्तु। अर्थात् हर जीव मे, चाहे नर हो या मादा, नर और नारी इस उभय तत्व का अस्तित्व होता ही है। नर मे नारी-तत्व भी मौजूद होता है, और नारी मे नर-तत्त्व।

शायद इसी तथ्य के आधार पर शकर के 'अर्धनारीश्वर' रूप की कल्पना की गई है ।

अपने मे नारी-तत्व की अतिशय न्यूनता के कारण ही कोई पुरुष नपुसक अथवा प्रतिभाहीन होता है, और कोई नारी भी बध्या या बुद्धि-हीन होती है अपने मे नर-तत्व की अतिशय न्यूनता के कारण । नर और नारी मे वासना की जागृति या उत्तेजना आती है अपने मे सन्निहित उभय तत्व के द्वन्द्व के कारण । नर और नारी के बाह्य रूप तो उन अन्तर्हित तत्वो को जगाने और द्वन्द्व के निमित्त उत्तेजित करने मे केवल उद्दीपक होते है जिसे हम स्थूल दृष्टि से समझ लेते है केवल दो बाह्य तत्वो का आकर्षण, सघर्ष और सपर्क । प्रत्येक नर-नारी मे सन्निहित नर-नारी का सयुक्त तत्व ही वासना मे परिवर्तित होता है । और जिस प्रकार नर-नारी के बाह्य रूपो के परस्पर आकर्षण, सघर्ष और सम्पर्क का पर्यवसान होता है सतानोत्पत्ति के स्थूल भौतिक रूप मे, उसी प्रकार वासना मे अन्तर्हित दो विरोधी भावो के द्वन्द्व से ही 'प्रतिभा' का भी जन्म होता है । उन्नयनीकरण (Sublimation) के फलस्वरूप नर अथवा नारी मे अन्तर्हित पूँजीभूत वासना ही अपनी मात्रा और द्वन्द्व के अनुपात मे रचनात्मक प्रतिभा को जन्म देती है । अस्तु ।

सो, नर और नारी के समागम का बाह्य रूप अब आदित्यनाथ और बुद्धी के दाम्पत्य जीवन मे खूब वेग से प्रकट हो पडा । बाप-दादो के चौमजिले मकान की अन्तिम मञ्जिल खुद्दू के हिस्से मे पडी थी । और हर मञ्जिल मे कमरा केवल एक । उसी एक कमरे मे आदित्यनाथ की गृहस्थी भी फिलहाल शुरू हो चली । नया घर खडा करने का न अभी उसके पास साधन था, न समय । सुबह-सबेरे ही खा-पीकर परिवार के दूसरे लोग नित्य की तरह काम पर चले जाते । और बुढिया काम पर जाने से पहले आदित्य और बुद्धी को वात्सल्य भरे स्वर मे आदेश देती—"तुम दोनो अब घर की रखवाली करो । आराम करो । ब्याह के

बाद दस-पाँच दिन औरत-मरद को एक साथ आराम करना चाहिए। फिर जिन्दगी भर काम तो करना ही है।"

बुद्धी इस इशारे को समझकर तनिक लज्जा से एकाएक लाल हो जाती। आँखे झुक जाती। और सकोच की मुस्कान उभरे बगैर न रह पाती। इस क्षण का उसका चेहरा आदित्यनाथ को और भी सुन्दर और उत्तेजक दिखाई देता।

और बुढिया फिर आदित्य को दिलासा देती—"बेटा! तू धीरज रख। देवता बडा दयालु! बडा दयालु! अभी तू इसी घर मे गुजारा कर। यह भी तेरा ही घर। तेरी माँ का घर। कुछ दिन बाद एक अलग घर तेरे लिए भी जरूर से बन जायगा। देवता बडा दयालु! बडा दयालु! तू धीरज धर। चिन्ता न कर। जरूर से सब ठीक हो जायगा बेटा!"

और जवाब मे बेटे के ओठो पर केवल श्रद्धा, स्नेह और सन्तोष की एक मुस्कान उभर आती। फिर कमरे का एकान्त पाकर ताजा-ताजा दाम्पत्य-जीवन का रग उभरने लग जाता। काम-शास्त्र के समस्त रहस्य जैसे अपने-आप साकार बनकर प्रकट होने लग जाते। और चतुर्दिक् की चोटियो पर मुस्काती हुई प्रकृति जैसे आजीवन ब्रह्मचर्य के व्रतधारियो और प्रचारको पर व्यग के तीर बरसाने लग जाती। आदित्यनाथ स्वय अब उन वचित अभागे साधुओ पर तरस खाया करता, और कुछ मुट्ठी भर गद्दी-नशीन मठाधीशो को घृणा भरे हृदय से बार-बार कोसा करता, जो नाना छल-छन्दो से मठो की पूँजी पर अधिकार जमा स्वय भोग-लिप्त रहते हुए भी ससार को अनासक्ति योग के उपदेश दिया करते है। ऐसे लाखो वचित अभागो की सृष्टि किया करते है। टट्टी की ओट से शिकार खेला करते है।

बुद्धी जैसी तरुणी के संपर्क से उसकी वासना की अग्नि यद्यपि काफी भभक उठी थी, पर दस-पाच दिन के बाद उस अग्नि मे थकान और तनिक विश्राम का भाव भी आने लगा। और तब आदिन्यनाथ के समक्ष

दाम्पत्य-जीवन की पूरी जिम्मेदारी भी प्रकट होने लगी। भविष्य जैसे प्रगट होकर बोलने लगा—"अपना एक घर भी होना चाहिए, और कार्तिक मास से हिमपात के फलस्वरूप घाटी का मार्ग बद होने पर सर्दियो मे बैठकर खाने-पीने के लिए अन्न-सग्रह भी। उस वृद्धा के सहारे तुम्हारा कब तक निर्वाह हो सकेगा ? साधु-जीवन मे दूसरो के सहारे जीवित रहने मे भले ही सकोच न हो, पर गृहस्थ-जीवन के सम्मान के यह कतई अनुकूल तो नही।"

अब वह गुजारे का साधन जुटाने पर विचार करते-करते सोचने लगा—"आश्विन के अन्त तक जडी-बूटियाँ सग्रह करने का मौसम अनुकूल रहेगा। कड्ू, पतीस, गुग्गुल और बनककडी का कोई समृद्ध स्थान यदि दिखाई दे गया तो हम दोनो मिलकर पचीस-तीस रुपये रोज की जडी-बूटियाँ तो बटोर सकेगे ही। लोग बताते है कि शुरू-शुरू मे एक-एक आदमी चालीस-पचास रुपये रोज तक कमा लिया करता था। अब औसत कमाई दस-पाँच रुपये रोज की रह गई है। फिर भी हम दोनो मिलकर यदि मेहनत से काम करे तो आश्विन तक इतना अवश्य कमा लेगे जिससे जाडे का गुजारा आसानी से हो सकता है।"

फिर एकाएक उसका मन दौड पडा कुल्लू उपत्यका के एक वैष्णव साधु की ओर जिसने जाने कहाँ से वहाँ पहुँचकर दस-पन्द्रह साल पहले गृहस्थ-जीवन मे प्रवेश कर लिया था। और अब तक अपने पुरुषार्थ से कई मकान भी खडे कर लिये थे और जमीन खरीद कर सेब का एक काफी बडा बाग भी लगा लिया था। अपने बाग के सेबो के व्यापार पर अब वह प्रति वर्ष हजारो कमा लेता है। आदित्यनाथ का मन भी उस साधु द्वारा धनोपार्जन के अपनाये पथ का अनुसरण करने लगा। वह भी क्यो न पुरुषार्थ के उसी मार्ग को अपनाये ? वह वैष्णव साधु बिल्कुल अनपढ है। पर वह ठहरा महाविद्वान् ! तो, जहाँ एक अनपढ सफल हो सकता है, क्या एक महाविद्वान् वहाँ सफल नही हो सकता ?

उस दशा मे वह सोचने और विचारने लगा। आकाक्षा और

मनोरथ के अनेक हवाई किले भी खडे करने लगा। लेकिन कुछ देर बाद सहसा अपना मुख्य सकल्प याद करके कुछ क्षरण पहले के सारे बने-बनाये हवाई किले उसे एकाएक ढहते और गिरते हुए दिखाई दिये। मानो उस सकल्प की स्मृति ने उन किलो को एक ही खरोचा मारकर ध्वस्त और धूलिसात् कर दिया। कुछ दिन काम-सागर मे डूबे रहकर जैसे जीवन के मुख्य उद्देश्य को ही वह भूल चला था। कहते है कि अद्वैत वेदान्त के प्रथम प्रचारक स्वामी शकराचार्य ने भी ऐसी ही भूल की थी। काम-शास्त्र के प्रश्न पर मडनमिश्र की पत्नी 'भारती' से परास्त हो उन्होने काम-कला के प्रत्यक्ष अनुभव के निमित्त योग-बल से तत्काल-मृत किसी राजा के शरीर मे प्रवेश किया था। और फिर राजमहल की सुन्दरियो के उपभोग मे अपने को इस प्रकार डुबो दिया कि न उन्हे अपना पहला जीवन याद रह गया, न उस जीवन का आदर्श और उद्देश्य, और न विदुषी भारती को काम-शास्त्र के शास्त्रार्थ मे परास्त करने का सकल्प! और तब उनके किसी शिष्य ने वहाँ पहुँचकर उस जीवन की उन्हे याद दिला दी और जीवन के उस उद्देश्य और आदर्श की, और शास्त्रार्थ मे भारती को परास्त करने के सकल्प की भी। और तब शकराचार्य ने अचानक लज्जित हो उस शरीर का परित्याग किया। पुन पूर्व रूप धारण कर भारती को परास्त किया और वेदान्त के झण्डे को सारे भारत मे बुलन्द किया।

आखिर ब्रह्मचारी आदित्यनाथ ने भी दाम्पत्य-जीवन मे प्रवेश और मलाणे मे निवास का संकल्प किया था किसी अन्य महान् सकल्प को पूरा करने के उद्देश्य से। उसने मलाणे की घाटी को एक परिष्कृत मानव-सभ्यता के निर्माण की प्रयोगशाला बनाने का सकल्प किया था। और उस अनपढ वैष्णव साधु का तो गृहस्थ-जीवन मे प्रवेश का एकमात्र उद्देश्य था यौन-सुख-भोग और उस सुख-भोग को कायम रखने के सासारिक साधनों का सचय-मात्र! लेकिन आदित्यनाथ ने जीवन भर जिस ज्ञान का उपार्जन किया था उसका उपयोग क्या रह जायगा?

यौन-सुख-भोग का यह साधन उसे उस ज्ञान के सहारे प्राप्त हुआ न था। लेकिन यदि उसने उस साधु का अनुसरण करते हुए रोटी के साधनो को जुटाने और यौन-जीवन मे ही अपने को सीमित कर दिया, फिर मलाणे के उन निरक्षर मानव-पशुओ और विद्वान् आदित्य मे अन्तर क्या रह जायगा ? रोटी की ही तरह यौन-सुख-भोग आवश्यक है, स्वाभाविक है, निर्दोष है, इसे मानकर चलने पर भी मानव-जीवन के विशाल मार्ग का यही अथ और इति तो नही ? 'मनुष्य की हर प्रवृत्ति कामजन्य है, यौनेच्छाजन्य' यदि फ्रायड के इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया जाय तो मनुष्य और पशु मे केवल आकृतिमात्र का ही तो भेद रह जायगा ? फिर ऊँचे आदर्शो के लिए हजारो वर्षो से होते आ रहे मनुष्य के बलिदानो का महत्व क्या रह जायगा ? उसकी महिमा क्या रह जायगी ? उत्तरोत्तर ऊँचे उठने के कठोर मार्ग का साधन-सम्बल क्या रह जायगा ?

लगभग आधी रात बीत चुकी थी। घर के लोग काठ के नगे फरश पर फैले सो रहे थे। और कमरे से बाहर के एक बरामदे मे खुड़ू अपनी पत्नी के साथ सो रहा था, और दूसरे बरामदे मे स्वयं आदित्यनाथ बुद्धी के साथ। बुद्धी अभी निद्रा मे अचेत पडी हुई थी। और आदित्यनाथ जीवन की भावी चिन्ताओ मे उलझकर अनेक पगडडियो और पथो से मन-ही-मन गुजरते हुए जैसे एकाएक अपने जीवन के विशाल-पथ के चौराहे पर पहुँचकर उस ओर कदम बढाने और पथ-पाथेय के सम्बन्ध मे सोचने लगा। विचारने लगा।

"क्या यह बुद्धी मेरे जीवन की जजीर तो नही बन जायगी ? मेरे उद्देश्य-पथ मे बाधा की विशाल दीवार तो नही बन जायगी ? मैंने इस आदिम स्तर के समाज मे समाज के एक अग के रूप मे केवल क्या बुद्धी के लिए ही प्रवेश किया है ? क्या यौन-सुखभोग के लिए ही ? अन्य अनेक अनुभवो की तरह यौन-सुख का अनुभव भी मानव के सतुलित विकास का एक साधन है ! प्रमुख साधन ! और इस कारण ही स्वामी शकराचार्य को भी इस अनुभव-क्षेत्र मे प्रविष्ट होना पडा था। और

तभी शकराचार्य को अपने उद्देश्य मे पर्याप्त सफलता भी मिल सकी थी ।· लेकिन शकराचार्य को अपने मुख्य उद्देश्य की सिद्धि के लिए उस भोग-सागर से निकलना भी तो पडा था ? तो क्या मुझे भी बुद्धी के प्रेम-पाश से मुक्त होना पडेगा ? क्या बुद्धी को त्यागकर आगे चलना पडेगा ?"

यह सोचते ही जैसे सभावित वियोग की वेदना बडे जोर से उसके दिल को खरोचा मार गई । भादो के कृष्ण-पक्ष का अन्धकार समाप्त होकर पूर्व की आकाश-चुम्बी चोटियो को लाँघते हुए, चाँद बिल्कुल सामने मुस्कुरा रहा था । उत्तर की हिम-मडित शृग-शृखला का अजर-अमर विराट् श्वेत इस चाँदनी के उजाले को और भी प्रभा-पुष्ट बना रहा था । और इस चाँदनी के उजाले मे बरामदे के फरश पर नीद मे बेखबर सोई हुई बुद्धी का सौन्दर्य-मडित सरल मुखडा यो चमक रहा था ज्यो स्वय चाँद की कोई सतान वहाँ लेटी हुई पितृ-प्रेम के दुलारभरे शीतल प्रकाश मे चमक रही हो ! और उस मुखडे से स्वस्थ यौवन की सुगन्ध-भरी साँसो मे जैसे उसके सरल हृदय के प्यार निकल-निकलकर अपने पति के अगो से टकरा रहे हो !

आदित्यनाथ उस मुखडे को देखते ही अचानक जैसे मोह के जादू से अवश हो उस पर चुम्बन के प्यार बरसाने लगा। उसके विभिन्न सुकोमल अगों को वह चूमने लगा । इन चुम्बनो के मधुर आघातो से जैसे बुद्धी का अचेतन मन ही सचेत होने लग पडा । उसके अगो मे सुगबुगाहट उभरती दिखाई दी । चोरी से किये प्यार मे कम मधुरता नही होती । आदित्यनाथ को अभी बुद्धी के जाग्रत सौदर्य की अपेक्षा इस सुषुप्त अवस्था का सौन्दर्य कही अधिक रमणीय और मोहक लग रहा था । अत बुद्धी को जगा देने के बजाय उसे सुली रहने देना ही लाभदायक लगा । इस कारण वह झट तनिक खिसककर अलग हो गया । और बुद्धी पुनः नीद मे डूब चली ।

आदित्यनाथ, चाँदनी की छटा मे विकसित पद्मिनी के सौन्दर्य की

तरह अपने पार्श्व मे उस खिले सौन्दर्य को जैसे आँखो से पीने लगा। मन-ही-मन बोलने लगा—"इस सरल प्रेमिल सौन्दर्य से सम्बन्ध-विच्छेद की कल्पना किस मूर्खता से कम ? किस विश्वासघात से कम ? स्त्री-रूप को केवल माम का लोथडा बता-बताकर विरक्ति के प्रचारको मे वस्तुत कोई है भी विरक्त ? अगूर को न पाकर 'अगूर खट्टे है' कहने वालो की कमी नही है, पर अगूर को पाकर और उसके मधुर स्वाद का उपभोग करके उसे त्यागने वाले है कितने ? विरक्ति का प्रचार बहुत कुछ उस चोर जैसा ही है जो अपनी चोरी छिपाने की खातिर बिना पूछे ही झूट बोलने लग पडता है—'नही ! वह चीज़ मेरे पास नही !' पर ढग से जॉच-पडताल करने पर वह चीज उसी के पास से बरामद होती है !"—यह सोचते ही स्वामी सोमानन्द उसे फिर याद आ गये। उनके और अपने निज के अनेक सस्मरण और अनुभव उसे याद आ गये।

उसने फिर सोचा—"शकराचार्य का उस भोगमय जीवन मे प्रवेश एव परित्याग दोनो ही विश्वासघात और अनैतिकता से भरे हुए थे ! योग-बल से ही सही, पर छल से और जान-बूझकर पर-पुरुष के शरीर मे प्रविष्ट हो पर-नारियो के सतीत्व का अपहरण किस नैतिकता की कसौटी पर खरा साबित हो सकेगा ? और विशेषकर एक महान् धर्म-व्यवस्थापक सन्यासी के द्वारा ? शकराचार्य मे खुले आम गृहस्थ-जीवन मे प्रवेश के साहस का अभाव था ! वह कायर था ! इसलिए उसे यह चौर्य-वृत्ति अपनानी पडी थी। और फिर उसने बुद्ध-द्वारा भिक्षु-सघ की स्थापना और सगठन की तरह जिन वेदान्ती सन्यासियो के समुदाय और परम्परा की नीव डाली वह उन कायरो का सगठन ही तो है जो गृहस्थ-जीवन के प्रत्यक्ष सघर्ष से भागकर इन सगठनो की आड मे जा छिपते है ? इन समुदायो मे भी होगे दो-चार भूले-भटके सच्चे विरक्त, पर शकराचार्य की गद्दियो और मठो के महन्त बनने के इनके आपसी संघर्ष, षड्यन्त्र और मुकदमेबाजियाँ किस तथ्य की ओर सकेत करते है ?'

उसका विचार-प्रवाह अब आगे बढा—"मानव-सभ्यता की एक नई

पथ-पद्धति के आविष्कार के लिए कार्ल मार्क्स ने गार्हस्थ्य जीवन मे रहते जीवन भर कठोर सघर्ष किया। और उसी पथ-पद्धति को मूर्त रूप देने के सकल्प और प्रयास मे लेनिन ने दाम्पत्य-जीवन मे रहते हुए ही कठोर सघर्ष किया। और एक मार्क्सवादी विशाल राज्य की स्थापना मे सफल भी हुआ। गाधी ने भी दाम्पत्य-जीवन का खुलकर उपभोग किया, और आज वह भारतीय आजादी के सघर्ष का सर्वोच्च नेता बनकर विश्व-वन्द्य बन चला है। फिर इस दाम्पत्य-जीवन को नि सार बताकर इससे भागने का उपदेश देना अथवा भाग खडे होना एक कायरता-भरे 'पलायनवाद' के प्रचार और उसमे पराजित होने के सिवा और है क्या ? राजकुमार सिद्धार्थ ने सोते हुए पत्नी-पुत्र का परित्याग किया था। यह उसका निरा पलायनवाद था। और स्वामी सोमानन्द जी ने ठीक ही तो कहा था कि बुद्धत्व का आवरण ओढे भगवान बुद्ध को यदि अपने सजातीय क्षत्रिय राजाओ का सहयोग और साहाय्य प्राप्त न हुआ होता, तो राजकुमार सिद्धार्थ न तो 'भगवान् बुद्ध' बन पाता, न उसका पलायन-सघ ही कभी फूल और फल पाता।"

अब उसने अपनी सोती बुद्धी को अत्यन्त स्नेह भरे नेत्रो से निहारा। मन-ही-मन बोलने लगा—"आखिर किसी दिन इसी तरह नीद मे बेखबर सोई हुई यशोधरा का परित्याग किया होगा राजकुमार सिद्धार्थ ने ? अपने पति पर अत्यन्त विश्वस्त और अनुरक्त नारी-हृदय के प्रति कितना जबर्दस्त विश्वासघात, कैसी भीषण क्रूरता !"—कहते-कहते जैसे स्वय यशोधरा के चिरव्यथित आँसू आदित्यनाथ की आँखो मे उभर कर, सोती बुद्धी के मुखडे पर ढुलक पडे ! और अपने उच्छ्वसित हृदय एव भीगी पलको को बुद्धी के मुखडे से मिलाकर वह स्पष्ट पर धीमे गद्गद कठ से बोल पडा—"मेरे हृदय की रानी ! मै तेरे साथ ऐसा विश्वासघात कभी कर नही सकता ! जीवन के काँटे-बिछे पथ पर अपने प्यार की रोशनी जला-जलाकर मेरा साथ देना रानी ! मेरे पथ को प्रकाशित करती चलना रानी ! प्रेम के निष्कपट बन्धन को तोडने जैसा पाप मनुष्य के

लिए और कुछ नही ! कुछ नही !! कुछ नही !!!"

◇ ◇ ◇

बुद्धी बगैर कहे ही साफ-सफाई के क्षेत्र मे भी पति का अनुगमन करने लगी थी। हिमालय के और कुल्लू के ही अनेक क्षेत्रो की तरह मलाणे के लोग भी न नहाने-धोने के आदी थे, और न शौच के समय पानी लेने के ! पर आदित्यनाथ उन लोगो मे रहते हुए भी साफ-सफाई के पूर्व सस्कार और अभ्यास को निभाये जा रहा था। वह उन लोगों की तरह बन जाने के लिए वहाँ बसा न था, बल्कि सभ्यता-सस्कार के क्षेत्र मे उन्हे अपनी तरह बनाने के लिए। साफ-सफाई के उसके संस्कार और आचार ने भी बुद्धी को उसकी ओर आकृष्ट किया था। सो, पति के योग्य बनने की नैसर्गिक प्रवृत्ति ने ही उसे प्रेरित किया स्वच्छता के उसी सस्कार और आचार को अपनाने के निमित्त। स्त्रियो की शृ गार-प्रियता मे पुरुषो को रिझा सकने योग्य बनने की यह नैसर्गिक मानसिक वृत्ति ही तो कारण होती है।

लेकिन आदित्यनाथ सदा सावधान रहता कि बुद्धी का यह नया सस्कार कही उसे अपने लोगो से मानसिक रूप से पृथक् न कर दे। क्योकि उसे मालूम था कि साफ-सफाई का सस्कार भी कुल-गौरव, जाति-गौरव, समाज-गौरव, ज्ञान-गौरव और सस्कार-गौरव आदि अनेक गौरवो को जन्म देने के कतिपय कारणो मे से एक है, और स्वय एक गौरव भी। इन गौरवो के गर्भ से जाने कितने अज्ञान-मूलक सस्कार जन्म ले-लेकर मानव-समाज मे श्रेष्ठत्व-मूलक अहकार और घृणा को जन्म देते आये है। और फलत होती आई है वर्ग-भेद की सृष्टि। जैसे सुन्दर से असुन्दर का जन्म। ज्ञान, विज्ञान और विज्ञान से उपलब्ध उपभोग और उत्पादन के साधन अपने-आप मे अच्छे होकर भी कुछ व्यक्तियो तक ही सीमित हो जाने के कारण समाज के लिए अभिशाप बन जाते हैं, वर्ग-भेद पैदा करते है। लेकिन मानव-सभ्यता के ये सुन्दर अवदान कुछ व्यक्तियो के समुदाय के चगुल से मुक्त हो यदि सारे समाज

की सम्पत्ति बन जायँ तो अभिशाप न रहकर वरदान बन जाय। समाज वर्गो और स्वार्थो मे विभाजित न होकर वर्गहीन बन जाय।

आदित्यनाथ के समक्ष अब मलाणे का समाज प्रकट हुआ। कुल १४१ घरो का समाज। यदि दो घर अछूतो के बाद कर दिये जायँ तो शेष मे न कोई जाति-भेद, न वर्ग-भेद। न यहाँ कोई महाजन है, न साहूकार। न कोई किसी का मालिक, न कोई किसी का नौकर। न कोई विद्वान्, न कोई मूर्ख। हर व्यक्ति मेहनत करके खाता है। और अपने व्यक्तिगत श्रम से कोई कुछ ज्यादा कमा लेता है, कोई कुछ कम। लेकिन कोई किसी का शोषण नही कर पाता। आदिम साम्यवादी समाज का तनिक बढा हुआ रूप था वहाँ। किसी दिन समाज के इसी रूप मे पराजित दासो का प्रवेश और व्यक्तिगत सपत्ति का आरम्भ हुआ था। वे दोनो घर अछूत सारे गाँव के सामूहिक दास थे। और गाँव की समस्त सपत्ति भी देवतावाद के आधार पर पचायती। खस एव किराती रक्त के सम्मिश्रण से बने उस समाज की 'कणाश' बोली मे आर्य-भाषा के भी शब्द है, एव किराती अनार्य भाषा के भी। कह=देना; मह=लेना, मी=आग, छा=नमक आदि शब्द तिब्बती-किराती परिवार के है, जबकि भाउ=बडा भाई, भाइच्=छोटा भाई; ह्या=माँ आदि शब्द आर्य-परिवार के। दिनो और महीनो के नाम भी आर्य-परिवार के है। और इसीलिए 'बुधवार' को पैदा होने के कारण उसकी पत्नी 'बुद्धी' को यह आर्य-परिवारी नाम प्राप्त हुआ था। स्त्री-पुरुषो के नाम उभय-परिवारी हैं।

"तो,"—आदित्यनाथ ने सोचना आरम्भ किया—"जिस प्रकार आर्य और किरात रक्त ने और उभय सस्कृति ने मिलकर इस गाँव मे एक वर्गविहीन समाज का रूप ग्रहण किया, उसी प्रकार क्या विश्व के समस्त रक्तो और सस्कृतियो के समिश्रण से एक विश्वव्यापी वर्ग-विहीन समाज किसी दिन नही बन सकता? लेकिन इस विशाल समाज के निर्माण के बाधक तत्त्वो को मिटाये बिना यह विशाल निर्माण कभी

सभव नही हो सकता। इनके मिटाने के तौर-तरीके भले ही भिन्न-भिन्न हो, पर मिटना इन्हे अवश्य चाहिए। जातिगत, धर्मगत, समाजगत और राष्ट्रगत अहकारो और स्वार्थो को मिटाये बिना मानव-समाज कभी एक नही बन सकता। उसकी सस्कृति एक नही बन सकती। उसका वर्ग-भेद नही मिट सकता।"

आदित्यनाथ ने फिर सोचा—"सस्कृत मे कहावत है—'स्वल्पादारम्भः क्षेमकर।' पहले छोटे कार्य से आरम्भ करना परिणामत कल्याणजनक होता है। अब मुझे मलाणे के इस छोटे से समाज को ही शिक्षा-सस्कार के द्वारा परिष्कृत करने के प्रयास मे लग जाना चाहिए। छोटे दायरे का प्रयास जल्द फलदायक होता है। और यह छोटी सफलता बडे दायरे और बडी सफलता की ओर अग्रसर होने की विश्वास भरी प्रेरणा देती है। गाँधी जी ने पहले अफ्रीका के छोटे दायरे मे अपने प्रयास की सफलता से प्रेरित होकर ही तो बाद मे भारत के विशाल राजनीतिक और सामाजिक दायरे मे प्रवेश किया। साधन-सबल-हीन मुझ जैसे के लिए भी अभी यही मार्ग ठीक रहेगा। और कहा भी है—'महाजनो येन गत स पन्थाः'।"

यह सब सोच-साचकर आदित्यनाथ ने अपना कार्य आरम्भ कर दिया। जडी-बूटियो के सग्रह-सचय के कार्य से कुछ समय निकालकर वह मलाणे के बच्चो और नवयुवको मे जा मिलता। क्योकि 'बूढे तोते नया कुछ नही सीख पाते' इस तथ्य को वह खूब समझता था। अत उसने पीले पडते और सूखते पत्तो के बजाय लहलहाते नये पत्तो एव कोपलो की ओर ध्यान केन्द्रित किया। मदिर की धर्मशाल के एक कमरे को उसने बैठकखाना और पाठशाला का रूप दिया। और साथ ही अधेडो एव वृद्धो मे भी शिक्षा और नव-सस्कार के प्रति रुचि जगाने के लिए उसने कथा-पुराण के प्रवचन का सहारा भी लिया। वाल्मीकीय रामायण का एक 'गुटका' सस्करण हमेशा उसके साथ रहता। मलाणे के लोग जडी-बूटियो को बेचने कुल्लू के जरी या भुन्तुर के बाजार मे जाकर

कुल्लू की खास बोली के बजाय टूटी-फूटी हिन्दी ही सीखते आये थे। बाहर वालो से उनके व्यवहार का माध्यम हिन्दी ही रहती आई थी। सो, आदित्यनाथ के मुख से सरल हिन्दी मे कही गई कथाओ मे उन्हे काफी रस आने लगा। राम के वन-गमन और राम-भरत के मिलाप की कथाएँ सुनकर उनकी भी आँखे आँसुओ से भर-भर आती। कई स्त्रियो की भावुकता तो रुलाई बन-बनकर फूट पडती। पर इस रोने मे कितना आनन्द आया करता उन्हे। और अपने समाज मे एक अद्भुत विद्वान् व्यक्ति के प्रवेश पर उन्हे गर्व भी कम न होता। और बुद्धी तो एकाएक जैसे सबकी गुरुआनी और पुरोहितानी भी बन चली। ऐसे गुणवान पति को पाकर बुद्धी मन ही मन कितनी गर्वान्वित हुआ करती! और फलतः दिनोदिन अपने पति के प्रति उसके हृदय के अखड प्यार मे श्रद्धा का भाव भी प्रविष्ट होने लग पडा।

आदित्यनाथ बच्चो मे बच्चा बन जाता और नवयुवको मे नवयुवक। वह अनेक खेल आविष्कार करके बच्चो के साथ खेला करता, और खेल-खेल मे राख की सतह पर अगुलियो से पशु-पक्षियो के चित्र बनाकर और वर्णमाला के विभिन्न अक्षर लिख-लिखकर अनजाने ही अक्षरो से उनका परिचय कराता। और नवयुवको को अपने पास बैठाकर उन्हे पूर्ण-परिचय कराता रामायण अथवा गीता के छपे अक्षरो से। सुन्दर सुरीले स्वर मे आदित्यनाथ द्वारा पढे श्लोको को स्वय पढ सकने का लोभ और आकर्षण उनमे जाग उठता! पढने-लिखने की ओर अनजाने रुझान पैदा हो जाता।

दाम्पत्य जीवन मे प्रवेश के बाद से आदित्यनाथ को अपने मे एक नई स्फूर्ति और शक्ति महसूस होती। जैसे कार्य करने की क्षमता अचानक बढ चली हो। जैसे प्रतिभा को विकसित होने को नई खाद मिल चुकी हो। और स्वय बुद्धी का लावण्य भी पहले से अधिकाधिक विकसित हो चला। आदित्यनाथ बाल-विधवाओ के लावण्य को सधवाओ के लावण्य की अपेक्षा बहुत जल्द मुरझाते और सूखते देख चुका

था। क्योंकि इन अभागी विधवाओं की तरुणाई को विकास के लिए दाम्पत्य जीवन की खाद और खुशी प्राप्त नही हो पाती। और अक्सर उन पशुओ की ओर भी उसका ध्यान जाया करता जिन्हे मनुष्य ने अपने स्वार्थ के लिये बधिया या नपुसक बनाकर यौन सुखोपभोग के बिल्कुल अयोग्य बना दिया है। वह किसान के हलो और गाडियो मे बहने वाले उन बधिया बने बैलो की तुलना उन साँडो से किया करता जिनकी शक्ति और सुन्दरता लगातार यौन जीवन मे व्यय होते रहने के बावजूद उन ब्रह्मचारी बने बैलो से कही ज्यादा बढ जाती है। कही ज्यादा विकसित होती है। इस तुलना पर वह मन-ही-मन हँसा भी करता, और अस्वाभाविक ब्रह्मचर्य की जजीरो मे जकडे नर-नारियो के दुर्भाग्य पर तरस भी खाया करता। और फिर घृणा उठ आती इस पाखडपूर्ण भ्रष्ट सामाजिक रूप और व्यवस्था के प्रति जिसने लाखो-करोडो नर-नारियो के मुख से पेट भर आहार भी छीन रखा है, स्वाभाविक यौन जीवन को बिताने की सुविधाएँ भी।

वह बुद्धी को भी पढाने-लिखाने मे लग पडा था। प्रकृति ने उसमे असाधारण सौन्दर्य की ही तरह असाधारण प्रतिभा के बीज भी सन्निहित कर दिये थे। काम मे लगी रहकर भी वह आजकल कम थकान महसूस करती। अवकाश के क्षणो मे अपने पति से अधिकाधिक सीखने का प्रयास करती। और काम मे लगी रहकर भी सीखे हुए पाठ को मन-ही-मन दुहराया करती। जैसे परती जमीन कृषि-योग्य बनकर नई खाद के सहयोग से खूब उर्वर बनने लग पडी हो।

जडी-बूटियाँ बेचने और खाद्य-सामग्री खरीद लाने के लिए बुद्धी भी जरी के बाजार मे जाया करती। आदित्यनाथ घर पर रह जाया करता अथवा जोत पर चला जाता जडी-बूटियो के सग्रह के निमित्त। जरी या भुन्तुर के बाजार मे गये मलाणियो के वापस लौटने मे तीन-चार दिन लग जाते। आदित्यनाथ और बुद्धी नव दाम्पत्य के इस वियोग की अवधि को बहुत लबा महसूस करते। अतः आदित्यनाथ उन सबो

की वापसी के दिन गाँव से लगभग तीन मील नीचे मलाणा नदी के उस किनारे जा पहुँचता जहाँ जरी-भुन्तुर की ओर से आकर मलाणा के नर-नारी विश्राम करते, खाया-पिया करते। क्योकि इस स्थान से मलाणा गाँव की ओर की चढाई बडी कडी और खडी है। सो, अपनी बुद्धी से सम्मिलन की उतावली के साथ उसके बोझ को बाँटकर पहाड की खडी पगडडी पर उसके श्रम को तनिक कम कर देने की भावना भी आदित्य के मन मे तरगित हुआ करती।

वह ज्योही पहाड से उतरकर उन श्रान्त नर-नारियो की गोष्ठी मे पहुँचता, स्त्रियाँ ठठाकर हँसती और बुद्धी की ओर व्यग्य भरे नेत्रो को नचाते मजाक भी कर देती—"ले बुद्धिये! वो देख। तेरा परदेसी आ पहुँचा! जमलू सब को ऐसा ही खसम दे जो जोरू का मुँह देखे बिना एक दिन भी न रह सके।"

बुद्धी कुछ जवाब न दे पाती। मारे लज्जा के कनपटी लाल हो जाती। और पति की ओर तिरछी आँखो से देख कृत्रिम क्रोध के स्वर मे उसे डाँट देती—"आने की जरूरत क्या थी यहाँ? इतना जरा-सा बोझा क्या अकेली मै नही ले जा सकती?"

और आदित्यनाथ झट हँसकर जवाब देता—"तेरे लिए नही, माँ के लिए आया हूँ बुद्धिए! यहाँ से माँ का बोझा मै ले चलूँगा।"

स्त्रियाँ पुन: ठठाकर हँस पडती, और माँ मुस्काते हुए वात्सल्य भरे स्वर मे जवाब देती—"बेटा! हम जगली लोग। बोझा ढोने की जनम से आदत! तू बडा कोमल। तू क्यो ढोवेगा मेरा बोझा? तू घर मे ही रह। घर मे ही आराम कर। बुद्धी काम करने मे बडी तेज। बोझा ढोने मे बडी तेज। तू चिन्ता न कर बेटा।"

नदी किनारे अखरोट जैसे एक विशाल वृक्ष की लम्बी-घनी छाया मे उनकी बैठक जमा करती। पत्थर के अनेक चूल्हे जल रहे होते, और उन पर पत्थर की ही पतली परत के तवे भी धरे होते। मकई और गेहूँ के आटे भेड-बकरे के चमडे की बोरियो मे से निकाल-निकाल वे नदी के

किनारे के चौडे पत्थरो पर गूँधने लग जाते। और फिर कुछ देर मे ही मोटी-मोटी पकी रोटियो के कई ढेर वहाँ लग जाते। कोई जगल से खट्टी हरी पत्तियाँ ले आकर चटनी बना देता। और फिर सारे नर-नारी रोटियो के उन ढेरो को घेर वृत्ताकार बैठ जाते। चटनी और नमक-मिर्च के साथ उन रोटियो को स्वाद-स्वाद कर खाने लग जाते। आर्यों के आदिम वैदिक युग के साम्यवादी सामूहिक जीवन और भोजन की एक छवि-सी जैसे दिखाई देने लग जाती। मकई और गेहूँ के वे सारे आटे पकने से पहले वैयक्तिक थे, पर अब वे सारी रोटियाँ जैसे सामूहिक सम्पत्ति बन चली थी। कोई भी, किसी भी ढेर मे से अपनी मरजी और भूख के मुताबिक बेहिचक रोटियाँ ले-लेकर खाया करता। व्यक्तिगत सम्पत्ति की भावना इस उपभोग के समय जैसे मिट चली थी।

भोजन के बाद वे नदी मे जाकर चुल्लु भर-भरकर पानी पीते। हाथ-मुँह धो फिर गोष्ठी मे बैठकर चिलम-तम्बाकू पीते। और जगली खुमानी की गुठलियाँ बटोरकर चौपड-पाशे सरीखे खेल मे मशगूल हो जाते। भोजन की ही तरह इस खेल मे भी नर-नारी के सम्मिलित मनोरजन के अधिकार मे रचमात्र भी अन्तर नही दिखाई देता। और खेल के दौरान मे, एक-दूसरे की हार-जीत पर उन पुरुषो की उन्मुक्त हँसी मे मिलकर महिलाओ की सामूहिक उन्मुक्त हँसी भी उस जगल को, पहाड की दीवारो को रह-रहकर गुँजाते हुए नदी के प्रखर प्रवाह को जैसे और भी सजीव बना देती। मानो वे महिलाएँ अपनी आदिम आजादी की उस मुक्त हँसी के द्वारा ससार की उन सभ्य-सम्भ्रान्त महिलाओ का मजाक उडाया करती जिन्हे सभ्यता ने रूढियो और पाखंडपूर्ण मर्यादाओ की बेडियो मे जकडकर कैद कर दिया है। कैद कर रखा है।

इस प्रकार कुछ देर मनोरजन मे मन बहलाकर वे फिर एकाएक जिन्दगी की कठोर पगडडी पर चलने को तैयार हो जाते। लगभग तीन मील की कडी खडी चढाई पर, पीठो पर दुर्वह बोझ लादे, पग-पग पर साँसो से जूझते हुए चलने लग जाते। पसीने से तर-बतर चेहरो से जैसे

प्राणों के दुख भरे आँसू बहने लग जाते। अल्प-स्वल्प बोझ लेकर चलते हुए आदित्यनाथ की भी वही दशा हो जाती।

बुआ नामक एक प्रौढ पुरुष ने अपने जामे की गदी आस्तीन मे चेहरे का पसीना पोछ चलते-चलते ही एक दिन आदित्यनाथ से थके स्वर मे कहा था—"बाबा! संसार मे सबसे प्यारी चीज़ रोटी!" और उस अनपढ जगली के मुँह से इस परम सत्य को सुनकर आदित्यनाथ को एकाएक संत कबीर की चौपदी याद आ गई—

> ना कुछ देखा भाव-भजन मे,
> ना कुछ देखा पोथी मे।
> कहै कबीर सुनो भई सतो,
> जो देखा सो रोटी मे।"

◇ ◇ ◇

अब आदित्यनाथ को अपने शिक्षा-प्रचार के कार्य मे कागज, कलम, स्याही और वर्णमाला की छपी पुस्तको की जरूरत खूब जोर से महसूस होने लगी। आश्विन समाप्ति की ओर था। सर्दियो के छह मास, जब सिवा घर मे बन्द हो जाने के कोई चारा नही रह जाता, शिक्षा-प्रचार के लिए बिल्कुल उपयुक्त थे। कुछ दिन बाद घाटी के सारे रास्ते बन्द हो जाने पर बाहर से शिक्षा के इन साधनो का जुटाना असम्भव बन जाता। जरी के बाजार मे इन चीजो के मिलने की सभावना न थी। और न किसी अन्य अनपढ जगली को कही भेजकर उन्हे मँगवाना सभव ही था। अतः वह एक दिन सुबह भोजनादि से निबटकर मलाणे से मनाली की ओर चल पड़ा। मनाली का बाजार भुन्तुर और कुल्लू के बडे बाजारो से अपेक्षाकृत कम दूर भी था, और वहा इन चीजो के उपलब्ध होने की उमीद भी थी। 'चन्द्रखणी' जोत को लाघते हुए जाने मे बीस-बाईस मील की दूरी थी।

'चन्द्रखणी' की जोत तक बुढ्ढी भी साथ हो चली। जोत तक लगभग चार मील की खडी चढाई कम कठिन न थी। उस चढाई पर

अपने पति का झोला-झपटा उसने पीठ पर लाद लिया। परस्पर साथ चलने मे पग-पग पर प्यार की खूराक जैसे उनके श्रम को बिल्कुल कम किये जा रही थी। वे मुड-मुडकर नीचे घाटी मे बसे मलाणे को भी देख लेते। और फिर बुद्धी आदित्य के चेहर को देखती और आदित्य बुद्धी के चेहरे को। दो-चार दिनो का यह भावी अलगाव जैसे व्यथा की सृष्टि किये देता। लेकिन फिर भी वे मौन रहते। मानो बुद्धी की स्नेह भरी चितवन मे एक आशका भरा प्रश्न छिपा होता—"तुम फिर आओगे न परदेसी ?" और परदेसी जैसे अपनी स्निग्ध चितवन से उसके सरल भोले हृदय को आश्वस्त कर देता—"अवश्य आऊँगा ! अवश्य आऊँगा रानी ! तू विश्वास कर !"

बढती हुई ऊँचाई पर देवदारु का जगल समाप्त हो बाँज (ओक) जैसे छोटे वृक्षो का जंगल अब शुरू हो गया। और कुछ दूर आगे वह भी समाप्त। अब पगडडी के दोनो बाजुओ मे विविध जाति के छोटे-छोटे पेड-पौधो की झाडियाँ ही दिखाई देती। और उन पर जहाँ-तहाँ कई रग के खिले हुए फूल ! लेकिन लगभग तेरह हजार फुट की ऊँचाई की जोत पर पहुँचते ही जैसे सारा दृश्य एकाएक बदल गया। जोत की ढलानो पर 'कनेर' जैसे पौधो की झाडियो की कतारे और उनमे कनेर के फूल की शक्ल-सूरत के ही सफेद और बैगनी रग के खिले फूलो की सुषमा कम मुग्धकारी न थी। और धरती से चिपकी हुई अनेक ऐसी झाडियाँ भी फैली हुई थी जिनके सफेद-सफेद फूल, बेले के फूल जैसे, अपनी सुषमा और सौरभ को लुटाते से दीख रहे थे। जोत की ढलवान करीब फर्लांग भर चौरस हो चली थी। उस पर जडी-बूटियो की उगी हुई घासे, वर्षा के जल से सिक्त हो-होकर हाथ भर ऊँची हो अपने बहुरगी और विविध सुगन्ध भरे फूलो से लदी हुई थी जैसे उन घासो मे मुस्काती हुई प्रकृति नीले आकाश की ओर बहुगर्धा इत्र के फुहारे छोड रही हो ! हरे, नीले, पीले, लाल, सफेद और बैगनी रग के वे फूल बहुत कुछ यो

लग रहे थे ज्यो प्रकृति देवी की हरी झबरीली साडी मे विविध रग के गोटे जडे हुए हो ।

और उस जोत के चतुर्दिक की शिखर-शृखला तो देखते ही बन रही थी । उन शिखरो की दूरी पर्याप्त थी । वहाँ तक पहुँचने के प्रयास मे दिनो और सप्ताहो के लगने की सभावना थी । किन्तु 'चन्द्रखणी' जोत से देखने पर वे यो लग रहे थे ज्यो एक विशाल श्वेत वृत्त बनाकर वे सारी कुल्लू उपत्यका को घेरकर खडे हो । और नीला आकाश जैसे एक विशाल नीला छत्र बनकर उन हिममडित शिखरो को छूते हुए कुल्लू की उपत्यका को ढके खडा हो । और शिखरो से गल-गलकर नीचे बहते व लुढकते हिमनालो के दृश्य कुछ यो लग रहे थे ज्यो सफेद सूत की असख्य और अनन्त धारियाँ खिसकती हुई नीचे गिर रही हो ।

मलाणा ओझल हो चुका था, पर मलाणी नदी की सरोष हुँकार स्पष्ट सुनाई दे रही थी, और पहाडो के दर्रे से गुजरती उसकी धारा का एक धीमा धूमिल रूप भी दिखाई दे रहा था । कुल्लू उपत्यका की अनेक दूसरी नदियो और नालो का रूप यद्यपि वहाँ से दिखाई न दे रहा था, किन्तु उनके सरव सरोष शब्द अवश्य सुनाई दे रहे थे । और फिर जोत के बीच के जगलो मे से पक्षियो के मीठे-मीठे स्वर और कही से रेवडों के चरवाहो के मुँह की सीटी भी सुनाई दे रही थी । नीचे की ढालो पर देवदारु के घने जगलो के दृश्य तो और भी मनोरम बन चले थे, जैसे उन ढालो पर जगह-जगह हरी-हरी कालीने बिछी हुई हो । और इस जोत पर से कुल्लू की सारी घाटी कुछ यों दिख रही थी जैसे सिकुडकर बिल्कुल छोटी बन चली हो । मीलो दूर के कई गाँव दिखाई दे रहे थे । और छल्ली (मकई) की तैयार फसल के पीले-पीले खेत और धान के हरे-भरे खेत भी । और निकट दूर के भोज-पत्र के जगल भी ।

बुढ्ढी और आदित्यनाथ घास के मुलायम फरश पर बैठ गये । चार मील की कडी चढाई मे भूख लगनी ही थी । बुढ्ढी ने राह मे खाने के लिए गेहूँ की कुछ रोटियाँ और शहद से भरी एक बोतल आदित्यनाथ

के झोले मे रख दी थी। झोले से कुछ रोटियाँ निकाल और कटोरे मे कुछ शहद रख बुढी ने पति के आगे रख सस्नेह स्वर मे आग्रह किया—"खा ले परदेसी!"

अब वह आदित्यनाथ को 'भाउ' के बजाय परदेसी शब्द से ही सम्बोधित किया करती। इस सम्बोधन मे पार्थक्य का अर्थ होते हुए भी बुढी के मुख से सुनने मे आदित्यनाथ को जैसे सामीप्य का माधुर्य महसूस हुआ करता! पर किसी अन्य के मुख से उच्चरित यही शब्द जैसे अपने प्रकृत अर्थ को ही जताया करता। मलाणे के दूसरे लोग आपस मे उसे इसी शब्द से सकेत करते, परन्तु उसे सम्बोधित किया करते 'बाबा' इस अभ्यस्त पुराने शब्द से ही। किन्तु बुढी को यह 'बाबा' सम्बोधन बिल्कुल अच्छा नही लगा करता।

चद्रखणी का वह स्वर्गीय एकान्त वातावरण, और प्रियतमा के मुख से भोजन का यह सस्नेह आग्रह। आदित्यनाथ ने रोटी के टुकडे मे शहद भिगोकर बुढी के मुँह के निकट ले जाकर मुस्काते हुए सस्नेह आग्रह किया—"ले! आज मेरे हाथ से तू खा।"

मुँह को तनिक अलग करते हुए बुढी खिलखिलाकर हँस पडी। बोली—"मेरे क्या अपने हाथ नही?"

"तेरे हाथ मेरे, और मेरे हाथ तेरे! तू अपने हाथ से खा, और मै अपने हाथ से!"

बुढी समझदार थी। और आशय समझकर हँसते हुए ही झट बोल पडी—"तो आ मै तेरे को खिला दूँ। मगर मेरे को तो भूख नही। घर जाकर खाऊँगी।"

"अगर तेरे को भूख नही, तो मेरे को भी नही। आगे जहाँ भूख लगेगी वही खाऊँगा।"

भला एक स्नेहपूर्ण अन्नपूर्णा कबतक इस बाल-हठ के आगे टिक पाती। मुस्काते हुए बोली—"अच्छा तो पहले मै तेरे को अपने ही हाथ से खिला दूँ। बाद मे अपने हाथ से खुद खाऊँगी।"

और आदित्यनाथ ने झट उसका हाथ पकडते हुए कहा—"तेरे हाथ मेरे, और मेरे हाथ तेरे ! मेरा मुँह तेरा, और तेरा मुँह मेरा ! पहले मै अपने मुँह को खिलाऊँगा।"—कहकर उसने बुद्धी के हँसी से खिल-खिलाते मुँह मे रोटी का वह मीठा टुकडा कोच दिया।

बुद्धी ने प्रतिवाद नही किया। और स्वय झट रोटी का दूसरा टुकडा शहद मे भिगोकर पति के मुँह मे भी डाल दिया। आदित्यनाथ क्यो प्रतिवाद करता ? चाहता ही था यह। अब बुद्धी उसके मुँह मे ग्रास डालती, और वह बुद्धी के मुँह मे। और दो-चार ग्रास खा लेने के बाद बुद्धी ने आँखे तिरछी कर के मीठी झिडकी दी—"सब मेरे को ही खिला देगा ? तेरे को राह जो चलना है ? मैं अब नही खाती।"

"तो मैं भी नही खाता।"—कहकर आदित्यनाथ ने बुद्धी के ग्रास भरे हाथ से झट मुँह हटाते हुए हठ किया।

बुद्धी फिर खिलखिला पडी। हँसते हुए बोली—"अच्छा तो, तू मेरे को जरा-जरा खिला।"—कहकर उसने अपने हाथ के भरपूर ग्रास को पति के मुख मे अतिशय स्नेह के साथ रख दिया। सरस पति जैसे उसे अमृत समझकर निगलने लगा।

आदित्यनाथ बीच-बीच मे अचानक अतर्कित रूप मे कभी बुद्धी के कपोल और कभी ओठ भी चूम लेता। और बुद्धी सहसा लाल हो मीठी झिडकी देती—"यह क्या ? तू बडा बुरा लोग परदेसी ! ऐसा न कर ! पेट भर खा !"

और आदित्यनाथ हँसकर उसके गालो और ओठो को छूकर जवाब देता—"इनमे इस शहद से भी कोई मीठी शहद छिपी है बुद्धिए ! उससे भूख और जाग पडती है। पेट भर खाने के लिए ही तो ऐसा करता हूँ।" अच्छा, तू बुरा मान गई ? तो नही करूँगा ऐसा !"

और बुद्धी, आँखे तनिक तिरछी करके मुस्काते हुए जवाब देती—"अच्छा, तो जैसा तेरे को अच्छा लगे, वैसा कर ! मगर पहले पेट भर खा ले।"

दाम्पत्य जीवन की इस सरस क्रीडा-केलि को कोई लुक-छिपकर भी देखने वाला वहाँ न था। अत: इस स्वर्ग की ऊँचाई पर स्वर्गीय वातावरण की उन्मुक्तता जैसे रस-क्रिया और रस-बोध मे उद्दीपक बन चली थी। नाश्ते के बाद आदित्यनाथ तनिक और उत्तेजित होकर इस रस-क्रिया मे मशगूल हो चला। बुद्धी सभ्य ससार की पर्दा भरी सस्कृति मे पली न थी। मलाणे के समाज मे जिन अगो को नग्न रखने मे सकोच अनुभव नही किया जाता, उन अगो के प्रति भी आदित्यनाथ की रसभरी हरकतो ने उनमे जैसे अनजाने ही सकोच का भाव भरना शुरू कर दिया था। क्योकि सभ्यता के सकोच का उद्गम और विकास हुआ ही है इसी प्रकार। अत: दाम्पत्य जीवन मे प्रवेश के बाद से बुद्धी अपनी सुपुष्ट छातियो को भी छिपाने लग पडी थी। लेकिन इस क्षण आदित्यनाथ की हरकते बुद्धी के अग-अग बेपर्द करके उनसे जैसे अधिकाधिक रस खीचने के प्रयास मे लगी हुई थी। आदित्य की नसो मे बलात्कार का मीठा नशा उत्तेजित हो चला था, और बुद्धी की नसो मे बचाव का।

मनुष्य की रस ग्रहण की यह क्रिया कुत्ते द्वारा हड्डी चबा-चबाकर स्वाद लेने के प्रयास से यद्यपि भिन्न नही, पर मनुष्य के मन मे सदियो और पीढियो से रस-बोध के जिस सस्कार का निर्माण किया है, उससे कौन मुक्त रह सकता है? हब्शियो मे गाढा काला रग, गोरो मे हिम-श्वेत गोरा-रग, और हम भारतीयो मे गेहुँआ गोरा रग शरीर के लिए सुन्दर माना जाता है। नाक-नक्श के सम्बन्ध का सौदर्य-बोध भी जाति-भेद से भिन्न-भिन्न है। अर्थात् रस-बोध की ही भाँति सौदर्य-बोध भी सस्कार-जन्य है। पर तत्वत भ्रमजन्य! किन्तु व्यवहारत तत्ववेत्ता भी इन्ही भ्रमजन्य सस्कारो से परिचालित हुआ करते है। इसके बाद कही आती है अपनी-अपनी रुचि। "तस्य तदेव हि मधुर यस्य मनो यत्र सलग्नम्।" अन्यथा बुद्धी और बुद्धी की माँ आदित्यनाथ को इतनी तन्मयता से ग्रहण नही कर पाती। अस्तु।

सूर्य अब ठीक सिर के ऊपर आ चुका था। और आगे का मार्ग

उत्तरोत्तर उतराई का होने के कारण यद्यपि सरल था, पर दस-ग्यारह मील तक आबादी का कोई चिह्न न होने के कारण आदित्यनाथ के लिए अब प्रस्थान कर देना ठीक था। शृगार ने अब सहसा करुण का रूप ले लिया। बुद्धी की बडी-बडी आखो मे जैसे उसका बडा हृदय उतर आया।

भरी-भरी आँखो से पति को विदा देती हुई विह्वल कण्ठ से वह बोली—"जल्दी लौटके आना परदेसी ! कसम देवता की !"

मानो इन दो छोटे वाक्यो मे ही उसने सब कुछ कह दिया। बता दिया। अपनी आशका भी जता दी, प्यार का अनुरोध भी, और न लौटने पर जैसे देवता के कोप एव पत्नीत्यागजन्य पाप की याद भी दिला दी।

और तब आदित्यनाथ ने भी अश्रु-विगलित नेत्रो से उसे देख सहसा छाती से चिपकाकर प्यार-विह्वल स्वर मे जवाब दिया—"कसम देवता की। मै जल्द लौट आऊँगा रानी ! सिर्फ शरीर अलग रहेगा, मगर दिल हमेशा तेरे साथ।"

बुद्धी के ओठो और कपोलो को पुन एक बार चूमकर वह चल पडा। हृदय पर काबू पाने का भरपूर प्रयास करके भी बुद्धी फूटकर रो पडी। आदित्य ने पीछे मुडकर देखा। रुलाई के उफान को दबाते-दबाते वह लम्बे-लम्बे डगो से ढलानी पगडडी पर उतर चला। पर मुड-मुडकर बुद्धी को वह देखता भी जा रहा था। और बुद्धी वहाँ खडी-खडी एकटक से अपने प्रियतम को देखती रही। रोती रही।

प्यार का और मोह का बन्धन कितना कोमल होता है, और साथ ही कितना मजबूत।

◇ ◇ ◇

बुद्धी, आदित्यनाथ के आँखो से ओझल हो जाने के बाद अचानक थककर नीचे बैठ गई। सूनी आँखो से चारो ओर देखने लगी, पर आँखो से आदित्यनाथ के ओझल होते ही जैसे सब कुछ ओझल हो चला। चन्द्रखणी की सारी रमणीयता जैसे कही एकाएक खोकर विलीन हो

चली। कुछ क्षण पहले का स्वर्ग जैसे एकाएक उसके लिए नरक बन चला। उस सूनेपन मे जैसे नरक की भयानकता महसूस होने लगी।

अब वह उठकर चल पडी अपने गाँव की ओर। चलते-चलते रह-रहकर रुलाई उभर आती। और आदित्य की छवि जैसे हृदय से निकल-कर आँखो के आगे आ जाती। इस प्रकार कुछ दूर आगे चलकर सहसा कुछ याद कर ठिठककर वह खडी भी हो गई। अतिशय स्नेह अतिशय आशकाओ को जन्म देता है। उसे यह याद आ गया कि परदेसी अकेले चल पडा है। अब भी वह अकेले जा रहा होगा। पर राह के जंगलो मे भालू और बाघ-बघेरे खूब है। कही परदेसी को कुछ हो गया तो ?

इस आशका के उदित होते ही झट वह पीछे मुड चली। सोचने लगी—"दौडकर परदेसी को पकड सकती हूँ। क्या हुआ अगर मैं भी उसके साथ मनाली तक चली गई ? साथ लौट आऊँगी। परदेसी को कही कुछ हो गया तो कौन उसकी देख-भाल करेगा ? मगर मै साथ रहकर उसकी सेवा तो करूँगी। देख-भाल तो करूँगी।"—और इतना सोचते ही उसके पैरो मे तेजी आ गई। वह दौड-दौडकर उस ऊँचाई पर चढने लगी। जैसे अतिशय स्नेहजन्य आशका के नशे मे वह पागल हो खूब तेज हो चली। वह भूल चली कि मलाणे की कोई महिला बिना देवता की आज्ञा के किसी परदेसी के साथ, चाहे वह पति ही क्यो न हो, चन्द्रखणी अथवा घाटी की सीमा को लाँघ नही सकती।

"इस तरह किधर भागी जा रही बुद्धिए ?" वह दौडी जा रही थी कि पगडडी के बगल वाले जगल से उसे एक महिला का अतिपरिचित कण्ठ सुनाई दिया। जैसे दौडती तूफान-गाडी मे किसी ने एकाएक जजीर खीच दी हो। उसने सहसा रुककर देखा, उसकी अपनी ही बडी बहन वहाँ जगल मे काटी हुई लकडियाँ बटोर रही थी। वह ठिठककर खडी हो गई। पर सहसा कुछ जवाब देते नही बना।

उसकी बहन ने दूर से ही फिर प्रश्न किया—"तू परदेसी के साथ जोत पर गई थी न ?"

"हाँ !"

"गया परदेसी ?"

"हाँ !"

"तो फिर अब क्यो भागी जा रही उधर ?"

बुद्धी से फिर कुछ जवाब देते नही बना। लेकिन क्षणभर चुप रहकर वह बोली—"जोत पर एक चीज़ भूल आई हूँ, दीदी।"

"क्या चीज ?"

लेकिन बुद्धी के पास इस प्रश्न का कोई जवाब न था। और उसकी बहन अब पगडडी पर उसके पास आकर पुन उसी प्रश्न को दुहराते हुए बोली—"क्या चीज भूल आई बुद्धिए ?"

बुद्धी को इस बार भी कोई उपयुक्त उत्तर नही सूझा। उसकी यह सबसे बडी बहन 'मगरी' उम्र मे लगभग चालीस साल की थी। बुद्धी के ही नाक-नक्श की। बुद्धी उसकी गोद मे खेल चुकी थी। सबसे छोटी होने के कारण वह सभी बहनो की प्यारी और दुलारी थी। लेकिन जिस प्रकार कोई शिशु अपने माँ-बाप के सामने किसी अनपेक्षित प्रश्न का उत्तर न सूझने पर एकाएक रुलाई की शरण ले लेता है, उसी प्रकार अब बुद्धी की आँखे भी सहसा भरकर उमड पडी।

मगरी एकाएक वात्सल्य से विगलित हो उसकी ठोडी छू पुचकारते हुए फिर बोली—"क्या चीज भूल आई बुद्धिए ? मेरे को बता ! चल, मैं तेरे साथ चलती हूँ जोत पर।"

रुलाई के आवेग से बुद्धी की अब हिचकी भी बँध गई। बहन की छाती मे झट मुँह छिपाके हिचकभरे स्वर मे वह बोली—"परदेसी अकेले ही गया मनाली। राह मे जगल है, भालू और बाघ-बघेरे है।"

और तब मगरी उसका आशय समझकर उसकी पीठ पर प्यार का हाथ सहलाते हुए बोली—"दुत् पगली ! इसमे फिर रोने की क्या बात ? और डरने की क्या बात ? परदेसी तो जिन्दगी भर अकेले ही जगलो-पहाडो मे घूमता-फिरता रहा है। दिन का बखत है। रास्ता साफ है।

रास्ते मे जगह-जगह भेड-बकरो के रेवड वाले है। फिर डरने की क्या बात ? चिन्ता किस बात की ?"

बुद्धी तनिक आश्वस्त होकर बहन की छाती मे उसी प्रकार मुँह छिपाये खडी रही। मगरी ने फिर पूछा—"परदेसी कब लौटेगा ?"

और बुद्धी ने मुँह छिपाये ही जवाब दिया—"कह गया परसो-चौथ ?"

"और क्या कह गया ?"

"कह गया, कसम देवता की। कसम तेरी। जरूर से लौटूँगा।"

"परदेसी आदमी भला है। तू चिन्ता न कर। अच्छा, अब तू चल। घर लौट चल। किसी और से कुछ मत बोल। तेरी हँसी उडायेंगे। चल, तू भी एक बोझ लकडी लेकर चल। हेमन्त आ रहा है।"

कुछ देर बाद बुद्धी लकडी का बोझ लादे अपनी बहन के साथ गाँव वापस आ गई। लेकिन दूसरे दिन से ही गाँव मे काना-फूसी भी शुरू हो चली। पुरुषो मे भी, स्त्रियो मे भी। स्त्रियो मे टुडरी ने इस काना-फूसी का नेतृत्व किया, और पुरुषो मे पदच्युत भूतपूर्व कर्मिष्ठ जडा ने। एक मे उपेक्षाजन्य प्रतिशोध का भाव था, और दूसरे मे अपनी पदच्युतिजन्य प्रतिशोध का।

टुडरी अपनी सखी-सहेलियो मे बोलने लगी—"भाग गया परदेसी। कुछ दिन मजा उडा के भाग गया। अरी, बाबा फकीर भी कही औरत का बोझ सम्हाल सके है। उसकी तो कमाके नही, भीख माँग के खाने की आदत है। और इसी तरह जगह-जगह जाके औरतो को बहका के मजा उडाने की। मेरे को भी बहकाने की फिराक मे था। मगर मैं उसके हाथ न आ सकी, तो बुद्धी उसके फदे मे जा फँसी।"

"अरी, तो हो क्या गया ?"—उसकी एक सहेली ने झट जवाब दिया—"मलाणे मे क्या मरद नही ? बुद्धी को फिर एक छोड दस मिलेगे। है कोई उस जैसी खूबसूरत लडकी इस मलाणे मे ?"

लेकिन टुडरी ईर्ष्या से व्याकुल हो उठी। जैसे यह स्वय उसके अपने सौन्दर्य और यौवन का तिरस्कार था। क्या सभ्य और क्या असभ्य, मनुष्य का मौलिक मन तो सर्वत्र एक जैसा ही होता है। क्षुद्रता के क्षेत्र मे भी, और विशालता के क्षेत्र मे भी।

टुडरी मुँह चमकाकर बोली—"अरी, रहने भी दे खोणिए। जैसे दूसरी सब बदरियाँ हो यहाँ। ऐसी खूबसूरत थी तो क्यो जा पडी उस काले-कलूटे बदर के हाथ ?"

"उस बदर को दूसरी बदरियाँ भी तो फँसाना चाह रही थी ? जब फँस न सका तो बदर बन गया। यह सब ईरखा है, ईरखा !"

और उधर जडा भी बुजुर्गो की मडली मे बोल रहा था—"उस बाबा को गाँव मे जगह दे देना अच्छा नही हुआ बुआ भाउ। इन भिख-मगे बाबाओ का क्या विश्वास ? कुछ दिन कही आसन जमा दिया। खाया-पीया, मजा लूटा, और फिर हो लिए रमते-राम। सुना है, भाग गया बाबा !"

बुआ ने झट प्रतिवाद किया—"भागा नही रे ! मनाली गया है पोथी-पत्रा लेने। यहाँ बच्चो को पढायेगा न ? भला लोग है परदेसी !"

"अरे नही बुआ भाउ !"—जडा ने फिर जोर मारा—"वह जरूर से भाग चला है। घर-गृहस्थी का बोझा कही साधू-फकीर भी सम्हाल सकता है ? कुछ दिन मे ही टे बोल गई उसकी !"

और तब एक दूसरे बुजुर्ग ने पीक नीचे थूककर जवाब दिया—"गाँव ने देवता का हुकुम माना। देवता सब के मन की जानता है। अगर गलती की तो देवता ने, सही की तो देवता ने, भाग गया तो भी ठीक, लौट आया तो भी ठीक। सब कुछ देवता की मरजी से होता है।"

अपना पहला तीर निशाने से चूकते देख जडा ने एक और जहरीला तीर छोडा—"मगर कसम देवता की ! मैं सच कहता हूँ कल रात मैने एक सपना देखा। जमल भगवान् की सवारी निकली। वे लोगो से बोल

रहे है—'अगर तुम लोगो ने परदेमी से लिखना-पढना सीखा तो सारा गाँव बेईमान बन जायेगा। मलाणे का धरम मिट जायगा। पढा-लिखा लोग बडा बेईमान होता है। पढ-लिखकर गाँव मे अधरम फैलेगा। पाप फैलेगा। और उस पाप से जोतो की जडी-बूटियाँ सूखकर धरती मे समा जायेगी। बरखा बन्द हो जायगी। नाले से पानी बहना बद हो जायगा। और तब सारा गाँव भूखा और प्यासा होकर मर जायगा।' कसम देवता की ! मैंने सच मे कल रात यह सपना देखा।"

जडा का यह तीर निशाने पर जा बैठा। जीवन सबसे प्यारा होता है, और मृत्यु सबसे अधिक घृणित और भयानक। सभ्य और असभ्य सबके लिए। पर भोले-भाले असभ्यो पर ऐसी बातो का असर बहुत जल्द और जोर से पडता है।

वहाँ बैठे लोगो के चेहरो पर मृत्यु-भय की छाया जैसे एकाएक घनी हो उठी। और एक अन्य बुजुर्ग झट हाथ हिला-हिलाकर बोलने लगा—"मलाणे मे पढाई की नही जरूरत ! नही जरूरत ! पढा-लिखा लोग बडा बेईमान ! बडा बेईमान ! परदेसी भाग गया तो अच्छा हुआ ! अगर लौटकर आवे तो कहना होगा—'अगर तू इस गाँव मे रहना चाहे तो सीधी तरह हम लोगो की तरह रह ! अगर पढाई-लिखाई करना चाहे, तो भाग जा, चला जा इस गाँव से !'"

जडा घूमा-फिरा आदमी था। वह एक भारतीय शहर मे भी कुछ दिन रह आया था। जगलियो मे बाहर का सपर्क होने पर वहाँ की बुराई जल्द असर करती है। जडा पढा-लिखा न होने पर भी चालाकी मे वीरेन्द्र वर्मा की बिरादरी का बन चुका था। अपने तीर का इस तरह असर होते देख वह खूब खुश हुआ। फिर उस तीर मे और जोर भरने के विचार से फिर बोला—"गये साल हेमन्त मे मडी-सुकेत मे हम पर क्या बीती, याद नही तुम लोगो को ? जिसने हमे ठगा, वह भी तो पढा-लिखा ही था ? कैसी बेईमानी की उस बदमाश ने हमारे साथ ?"

घाटी मे और आस-पास की जोतो पर बरफ गिरने की शुरूआत

होते ही मलाणे के अधिकाश पुरुष अपने भेड-बकरे लेकर नीचे की ओर चल देते है । क्योकि बरफ गिरने पर भेड-बकरो के लिए वहाँ चारे की गु जायश नही रह जाती । और ये भेड-बकरे ही ऊँचे पहाडो पर रहने वाले लोगो की सबसे बडी पूँजी होते है । दूध-घी भी मिलता है, ऊन और मास भी। एक-एक के पास सौ-सौ तक भेड-बकरे । इन पशुओ की तादाद के आधार पर ही कोई अमीर और गरीब माना जाता है। अपने भेड-बकरो को लेकर वे मडी और सुकेत[1] के पहाडो तक जा पहुँचते हैं जहाँ सर्दियो मे भी बरफ नही गिरता । और फिर मई-जून मे भेड-बकरो के साथ आ पहुँचते है अपने गाँव मे । अच्छी कीमत मिलने पर वे जगह-जगह भेड-बकरो को बेच भी देते है ।

सो, गत वर्ष मडी-सुकेत के इलाके के एक बाजार मे उन्हे वीरेन्द्र वर्मा की बिरादरी का ही एक पढा-लिखा ठग मिल गया । उसने बाजार भाव से ड्योढी कीमत पर उनकी साठ भेडे खरीदी । और यह कहकर कि ये भेडे इतनी कीमत पर खरीदी गई है, इनका लिखा हुआ सबूत सरकार को दिखाना है, एक लिखित कागज पर उन भेड-मालिको के उसने अगूठे के निशान ले लिये । और बाद मे मूल्य चुकाने के समय झट छाती तानकर कह दिया—"पैसे तो सारे पहले ही दे दिये ! बडे बेईमान हो तुम जगली लोग ।" और तब उन जगलियो ने रियासत की अदालत और पुलिस के द्वार खटखटाये ! रोया-पीटा ! पर परिणाम कुछ निकला नही । क्योकि उस सभ्य सफेदपोश ठग के पास कीमत चुका देने का अगूठो का निशान वाला वह लिखा हुआ सबूत मौजूद था । और उस ठग ने सरकारी कर्मचारियो की पहले ही आव-भगत भी खूब कर दी थी !

सो, जडा द्वारा उस दुर्घटना की याद दिलाते ही उनके दिलो मे पढे-लिखे सफेदपोशो के प्रति, और पढाई-लिखाई के प्रति घोर घृणा

---

१. हिमाचल प्रदेश की भतपूर्व देशी रियासतें—मंडी और सुकेत ।

जाग उठी। घोर कोप जाग उठा। और फिर जड़ा ने जाकर गुर-पुजारी के भी कान भरे। गुर स्वय गाँव मे ग्रादित्यनाथ के बढते प्रभाव से मन-ही-मन कुछ जल रहा था। कुछ ग्राशकित भी हो उठा था। क्योकि शिक्षा-प्रचार के प्रकाश मे सब कुछ साफ और बेपर्द हो जाने का खतरा था।

सो, जब चौथे दिन सध्या को ग्रादित्यनाथ गाँव मे प्रविष्ट हुग्रा तो एकाएक हवा मे भारीपन महसूस हुग्रा। कुछ लोग गाँव मे मौजूद थे, पर उनकी चितवन मे स्वागत का कोई भाव दिखाई नही दिया। तटस्थता का भाव भी न था, बल्कि ग्ररुचि और वितृष्णा का। जो बच्चे उसे देखते ही खुशी से खिल उठते, उनकी सरल चितवन मे भी ग्राशका की रेखाएँ-सी तरगित हो उठी थी। क्योकि बच्चे ग्रपने बुजुर्गो के भाव को बहुत जल्द ग्रहण करते हैं। हाँ, उसके स्वागत मे बुढ्ढी ग्रवश्य घर के पास के चबूतरे पर बैठी दिखाई दी। ग्रादित्यनाथ उसके पास पहुँचा, ग्रपने पति को पुनः वापस ग्राये देख उसके चेहरे पर खुशी का उल्लास ग्रवश्य चमक उठा, पर घने बादलो के बीच ग्रचानक चमक उठी बिजली की तरह वह झट विलीन भी हो चला। चेहरे पर दुख और निराशा के बादल जैसे पुन घने हो उठे।

बुढ्ढी चुपचाप झट ग्रागे बढकर उसका झोला-झपटा ले झट घर मे प्रविष्ट हो पौडियो पर चढने लगी। और उन सँकरी पौड़ियों पर चुपचाप उसके पीछे-पीछे ग्रादित्यनाथ भी। वे दोनो ग्रपने कमरे मे जा पहुँचे। ग्रभी कमरा बिल्कुल खाली था। क्योकि परिवार के दूसरे सदस्य ग्रभी काम पर से लौटे न थे। लेकिन खाली कमरा पाकर भी ग्रादित्यनाथ को सहसा कुछ पूछने का साहस न हुग्रा। और बुढ्ढी झट चीड़ की डली जला ग्राँच फूँकने मे लग पडी, ताकि बाहर से ग्राये ग्रपने पति के पैर धोने के लिए पानी गरम कर सके।

"घर मे कुशल-मगल तो है?"—ग्रादित्यनाथ ने जैसे डरते-डरते प्रश्न किया।

"हाँ !"—बुद्धी ने आँच फूँकते-फूँकते ही जवाब दिया ।

"मगर तू इतनी उदास क्यो है ?"

बुद्धी ने सहसा कुछ जवाब नही दिया । पर पति के दुबारा आग्रह करने पर डबडबाई आँखो से उसे देखते हुए बोली—"पहले तेरे पैर धोने का पानी गरम कर दूँ । फिर बताऊँगी सब कुछ ।"

किन्तु आदित्यनाथ के मन मे इस उत्तर से और भी हडकम्प मच गया । अब उसे विश्वास हो गया कि अवश्य कुछ दाल मे काला है । और उस कालेपन का सम्बन्ध स्वयं आदित्यनाथ से है । अन्यथा गाँव मे प्रवेश करते समय अपने प्रति नागरिको के नेत्रो मे तीखेपन और टेढेपन का तात्पर्य क्या ? लेकिन सारी बाते स्पष्ट रूप से जानने का कौतूहल शान्त होने के बजाय और भी बढ चला । बडी उत्सुकता से पानी गरम हो जाने का इतजार वह करने लगा ।

पानी गरम हो चला । बुद्धी ने परात की बडी थाल ब्रह्मचारी के पैरो के आगे लाकर रख दी, और उसमे चूल्हे की तसली से गरम पानी को उँडेल दिया । तर्जनी से जल के ताप का अदाजा लगाकर पति के दोनो पैरो को स्वय उठाकर थाल मे डाल दिया । और तब धीरे-धीरे खूब स्नेह से तलवे से ठेहुने तक के भाग पर गरम जल डाल-डालकर वह मालिश करने लग पडी । पहले भी कई बार वह इसी प्रकार पति के पैरो और घुटनो पर गरम जल की मालिश कर चुकी थी । इस क्षण भी बुद्धी के हाथो मे आदित्यनाथ ने स्नेह के उसी बन्धन को महसूस किया । और कपन के अनुभव से उसके आशकाकुल हृदय को जैसे एकाएक तनिक शाति महसूस हुई ।

पति के पुन: आग्रह पर बुद्धी ने धीमी-धीमी आवाज मे जडा द्वारा आदित्यनाथ के प्रति फैलाये जहर की सारी कहानी कह सुनाई । और आम लोगो पर उसकी हुई प्रतिक्रिया की बात भी । सुनकर मारे घृणा, क्रोध, दुख और निराशा के आदित्यनाथ का हृदय क्षुब्ध हो उठा । चेहरा चंचल हो उठा ।

और बुद्धी पति के उस चचल चेहरे को भरी आँखो से देख गिड-गिडाते गद्‌गद स्वर मे अनुरोध करती हुई बोल उठी—"पैरो पडती हूँ तेरे ! तू अब पढाई-लिखाई का काम छोड परदेसी । भला करते-करते बुरा हो गया । यहाँ के जगली लोग क्या समझे अच्छी बात को ?"—कहते-कहते पति के पैरो पर बुद्धी की प्रार्थना के कई आँसू भी लुढक पडे ।

किन्तु आदित्यनाथ कुछ बोल न सका । जडवत् अपने पैरो को उसी प्रकार थाल मे टिकाये निष्पलक शून्य नेत्रो से बुद्धी को देखते हुए चुप-चाप बैठा रहा ।

◇ ◇ ◇

अन्धेरा होते-होते परिवार के सभी सदस्य घर आ पहुँचे । आदित्य-नाथ ने आगे बढकर माँ के चरण छुए । बुढिया ने उसे छाती से लगा लिया । लेकिन एकाएक वह कुछ बोल न सकी । वातावरण का भारीपन जैसे सब पर बोझ बनकर जा बैठा था । उधर बुद्धी भोजन बनाकर तैयार कर चुकी थी, दाल और भात और एक चटनी । और पति के लिए परोसा भी लगा चुकी थी ।

"बेटा !"—बुढिया ने आदित्यनाथ से सस्नेह अनुरोध किया—"तू खाइ ले ! तू रास्ते का थका है । और खाइके आराम कर, आराम ! और पढाई-लिखाई का काम छोड के सुख से यहाँ रह ! सुख से कमा और खा ! यहाँ का लोग जगली ! पढाई-लिखाई को बुरा मानता है । बुरा लोग । खराब लोग । क्यो मुफ्त का बैर मोल लेना ?" फिर जिह्वा को चटकाकर पुचकार भरे स्वर मे—"अब तू खाइले बेटा और सो जा। रास्ते का भूखा । इतने दिन कहाँ रहा ? कैसे खाया ? कहाँ सोया ?"—कहते-कहते बुढिया के स्वर मे गीलापन आ गया । पलकें भी भीग चली ।

लेकिन अपने आगे उस परोसे अन्न की ओर देखने को आदित्य का दिल नही कर रहा था । माँ के बार-बार सस्नेह आग्रह करने पर उसने खाना

शुरू कर दिया। पर हर ग्रास जैसे बडी कठिनाई से गले के नीचे उतर पाता। अन्त मे आदित्यनाथ ने बहाना किया—"माँ! मैं रोटी बना के साथ लेता आया था। जोत पर बैठ के सारी रोटियाँ खा गया। पेट मे जगह नही रही। ज्यादा खाने से बीमार पड जाऊँगा। कल से फिर खूब खाया करूँगा।" कहकर उसने एक बनावटी हँसी भी हँस दी।

अब उस जूठी थाली को लेकर बुढ्ढी खाने बैठ गई। और उसी क्षण उसी मकान की निचली मजिल से खुड्ड का चाचा वहाँ आ पहुँचा। नगे फरश पर ही वह आदर से बैठा दिया गया। बुढिया ने हुक्का भरकर उसके हाथ मे थमा दिया। हुक्का पीते-पीते ही उसने ससुर के स्नेह से आदित्यनाथ से कुशल-क्षेम पूछा। और फिर स्वरो मे हित-चिन्ता के भाव भर कर बोला—"अब तू यह काम छोड दे भाई! उस बदमाश जडा ने गाँव के लोगो का मन खराब कर दिया। लोग कहते है—'मलाणे मे पढाई-लिखाई की नही जरूरत। पढाई-लिखाई से यहाँ का लोग भी बेईमान बन जावे। चोर, डाकू और ठग बन जावे। बेईमानी फैलने से यहाँ भी रोज चोरी होवे। रोज डाका पडे। हर घर मे ताला-चाबी लगाना पडे।' सो, तू छोड यह काम भाई। दुनिया मे सबसे प्यारी चीज है रोटी। उसके बाद अपनी औरत। और उसके बाद बाल-बच्चा! मेहनत से कमा के ईमान की रोटी खा। ईमान से अपनी औरत को प्यार कर। और सुख से यहाँ रह। मगर पढाई का काम छोड दे भाई। मलाणे के इस जगल में पढाई से क्या फायदा? रोटी के लिए तो फिर भी सब को जानवर की ही तरह काम करना होगा। और जानवर की ही तरह एक रोज मर भी जाना होगा।"

आदित्यनाथ ने चुपचाप इस आदेश-उपदेश को सुन लिया। बूढा कुछ देर बाद उठकर अपने घर को चल दिया। और बुढ्ढी ने पति के लिए चूल्हे के एक किनारे बकरी के ऊन की खुरदरी दरी फैलाकर बिछौना कर दिया। क्योकि घाटी मे अब सर्दी जोर की शुरू हो जाने के कारण बाहर बरामदे मे सोना उनका बन्द हो चुका था।

घर के दूसरे लोग खा-पी रहे थे, और बुढ्ढी सरसो के तेल से फिर एक बार पति के पैरो की मालिश करने लगी थी। मिट्टी के तेल के अभाव मे चीड की तेलदार डालियाँ जला-जलाकर कमरे मे रोशनी की जा रही थी। किसी तरह खाना-पीना सबका पूरा हुआ। बरतन-भाडे को धो-धाकर उसे सुच्चा (पवित्र) करने के ख्याल से आग की चिनगारियाँ उनमे डाल दी गई। और कुछ क्षण मे ही कमरे मे अन्धेरा छा गया। दिन भर की मेहनत-मशक्कत के बाद फरश पर पशुओ की तरह जहाँ-तहाँ लुढककर लेटते ही जैसे नीद ने सब को दबोच लिया। एकाएक खर्राटो की सबल, सुपुष्ट, सामूहिक ध्वनि से कमरे का कोना-कोना गूँजने लग पडा।

बुढ्ढी भी पति की बगल मे दुबककर लेट गई। लेकिन आज वह पति के मन मे उस सरस उत्तेजना को न जगा सकी, जिसे इस क्षण हर रोज जगा देने की क्षमता उसमे कूट-कूटकर भरी थी। लेकिन सो पडने के बावजूद आदित्यनाथ को नीद न आ सकी। समस्या अपने पूरे रूप मे सामने आ खडी हुई। समस्या सामान्य न थी। एक प्रकार से इस समस्या के साथ उसके जीवन और मृत्यु का प्रश्न जुडा हुआ था। जीवन की महत्वाकाक्षा की मृत्यु बडी करुण होती है। दाम्पत्य-जीवन उसके जीवन का उद्देश्य न था। आहार, निद्रा और मैथुन का भाव हर जीव के साथ स्वभावत जुडा होने के कारण वह जीवन का उद्देश्य नही बन सकता। मानव-जीवन की महत्वाकाक्षा किसी उच्चतर उद्देश्य मे निहित होती है। और जीवन के इस उद्देश्य की ओर कदम बढाकर वह कुल्लू मे बडे दयनीय रूप मे असफल हो चुका था। और उसी प्रकार की असफलता अब यहा भी उस पर व्यग्य भरे कटाक्ष किये जा रही थी।

तरह-तरह के तर्क-वितर्कों से उसका मन आन्दोलित होने लगा। अपने ससुर के मुख से अभी-अभी सुने मलाणे के लोगो के वे शब्द उसके मन मे ध्वनित होने लगे—"मलाणे मे पढाई की जरूरत नही। पढाई-

लिखाई से यहाँ का लोग भी बेईमान बन जावे। चोर, डाकू और ठग बन जावे। बेईमानी फैलने से यहाँ भी रोज चोरी होवे। रोज डाका पडे। हर घर मे ताला-चाबी लगाना पडे!" किसी एक पढे-लिखे ठग ने इन भोले-भाले दिलो को किस प्रकार विषाक्त बना दिया है। लेकिन झट उसे उस समय की अपनी मनोदशा याद आ गई जब वह स्वय भी स्वामी सत्यकेतु और वीरेन्द्र वर्मा जैसे पढे-लिखे ठगो के फदे मे फँसकर इस प्रकार के ही उद्गार निकालने लगा था। वह स्वय विद्वान् और अनुभवी होते हुए भी जब उस प्रकार विचलित और बेचैन हो सकता था, तो उन भोले-भाले जगलियो के लिए तो ऐसा सोचना और समझना बिल्कुल ही स्वाभाविक था।

आदित्यनाथ के मन मे अब स्वामी सत्यकेतु प्रकट हो पडे। सिर पर वे ही लम्बे बाल, वे ही दाढी-मूँछें, वही भव्य व्यक्तित्व, और ओठो पर हरदम थिरकती हुई कपट की वही मुस्कान! वह सोचने लगा—"यह सच है कि स्वामी सत्यकेतु को 'महिला-विद्यापीठ' के सचालन मे सफलता न मिल सकी। जरा-सी गलती के कारण ही वह कामयाब न हो सका। पर यदि उस गलती के बावजूद उसे समाज के सेठो और श्रीमन्तो का सरक्षण और साहाय्य मिल गया होता, तो विद्यापीठ के चल निकलने मे बाधा क्या थी? समाज मे अर्थ सबसे बलवान होता है। और इसी लिए कहा भी गया है—'द्रव्येण सर्वे वशा।' अपनी सभी चारित्रिक त्रुटियो के बावजूद इस द्रव्य के बल पर वह कुल्लू के लोगो का पूज्य बना ही रहता। और तब प० अमीरचन्द्र और हीराचन्द्र शास्त्री जाति से ब्राह्मण और आस्था से सनातनी होते हुए भी उस खत्री-कुल के आर्य-समाजी स्वामी के हर समय चरण चूमा ही करते। लाला रामनाथ वकील जैसे सभ्य-सफादे अपने स्वार्थवश हमेशा हाथ जोडे उसका मुँह जोहा ही करते। और तब शायद वीरेन्द्र वर्मा भी वहाँ बना रहता। किन्तु इन स्वार्थी ठगो के गठ-जोड और सहयोग से जिस शिक्षा और संस्कृति का आलोक इस कुल्लू प्रदेश मे फैल पाता वह मलाणे के इन

जगलियो की धारणा को ही तो पुष्ट करता ?"

उसके मन मे वीरेन्द्र वर्मा का व्यक्तित्व पुन उभर आया । और वह पुन· सोचने लगा—"आखिर यह वर्मा हिमालय के ही एक पिछड़े प्रदेश का निवासी है ! उस पिछडे प्रदेश मे अमेरिकी मिशनरियो द्वारा वर्षो से बिखेरे जा रहे शिक्षा के आलोक की ही एक उपज है । जाने कितने ऐसे वर्मा इस आलोक की खाद से पैदा और पुष्ट हुए होगे उस पिछडे प्रदेश मे । और इस वर्मा-बिरादरी के ही किसी पढे-लिखे ठग ने ठगा होगा इन भोले-भाले मलाणियो को मडी-सुकेत के उस पिछडे पहाडी प्रदेश मे ! ऐ ! भारत के सामाजिक जीवन मे कितना परिवर्तन हो गया !"

अब सहसा उसे याद आ गया सौ-डेढ सौ साल पहले का, 'कर्नल स्लीमैन' नामक एक अग्रेज जज का सस्मरण जिसमे उसने तत्काल की भारतीय समाज की अद्भुत ईमानदारी पर प्रकाश डाला था । उसने लिखा था—"मेरे सामने ऐसे सैकडो अभियोग उपस्थित हुए जिनमे अभियुक्त का मान-सम्मान धन-दौलत और जीवन-मरण केवल एक बार झूठ बोल देने पर निर्भर करता था, पर फिर भी उसने झूठ बोलने से साफ इनकार कर दिया ![१] और फिर उसे याद आ गई काशी के एक वृद्ध बुजुर्ग की बात जो आज से वर्षो पहले उसने बडे व्यथा-भरे स्वर मे आदित्य से बताई थी—"आज का यह छल-कपट और दगा-फरेब तो अग्रेजी राज और अग्रेजी शिक्षा का फल है बेटा ! समाज मे कहाँ थी पहले ऐसी जोर की बेईमानी ! अपने बचपन और जवानी के युग को जब याद करता हूँ, और आज के युग को देखता हूँ, तो बड़ा

१. "I have had before hundreds of cases in which a man's property, liberty, and life has depended upon his telling a lie and he has refused to tell it"
—Col Sleeman ('India, What Can It Teach Us'
(by Maxmooler.)

आश्चर्य होता है बेटा ! घोर अतर आ गया ! घोर कलियुग !"—इतना कहकर अपने मत की सुपुष्टि के लिए उसने उत्तराखड की ही अपनी नई-पुरानी यात्राओ के कई सस्मरण भी सुना दिये ।

उस वृद्ध ने अपनी एक पुरानी यात्रा का सस्मरण सुनाते हुए कहा था—"तब रेलगाडी यहाँ बनी भी न थी ! घर से ही हमने पैदल बदरी-केदार की यात्रा की थी । हरद्वार से आगे बदरी और केदार तक जगह-जगह चट्टियाँ थी, और आज भी है, जहाँ यात्री रात को टिका करते हैं, चट्टी वालो से सामान खरीदकर खाना बनाते और आराम करते है । जब मैने पहली बार की यात्रा की तो हर चट्टी मे देखा करता—चट्टी का दुकानदार अपनी सारी दुकान निर्धोक यात्रियो को सौपकर रात को अपने घर चले जाया करता ! चलते समय सेर-बटखरा बता देता, भाव बता देता और पैसे रख देने की जगह भी । फिर जिस यात्री को जितनी जरूरत होती खुद तौलकर सामान ले लेता, बताये स्थान पर पैसे रख देता, और दूसरे दिन दुकानदार के आने से पहले ही मुँह-अघेरे आगे चल देता । इतना ईमान और विश्वास था उन दिनो लोगो मे !"

फिर एकाएक दोनो हाथ से कपार धुनकर व्यथा-भरे स्वर मे उसने फिर कहा—"अभी-अभी पिछले साल मैं दुबारा उस यात्रा पर गया था बेटा ! सोचा, अब चलाचलन्ती के दिन है । दुनिया से कूच करने के पहले बदरी-केदार के फिर दर्शन कर आऊँ । मगर क्या बताऊँ बेटा ! वही उत्तराखड और वे ही चट्टियाँ ! मगर अन्तर आकाश और पाताल का ! न तो यात्रियो मे वह सचाई और ईमानदारी रह गई, न उन चट्टी वालो मे ! अब क्या मजाल कि किसी चट्टी का कोई दुकानदार अपनी दुकान को किसी यात्री के हवाले कर दे ! और उन चट्टी वालो की बेईमानी देख तो और भी दग रह गया । सोचा, अग्रेजी राज की बेईमानी पहले मैदानी इलाके मे फैली, और बाद मे व्याज सहित इन पहाडो और तीर्थों मे । कही कोई धर्म और ईमान अब नही रह गया बेटा !"

आदित्यनाथ सोचने लगा—"ऐ ! क्यो कर्नल स्लीमैन के युग का

भारत आज इतना बदल चला ? क्यों उस वृद्ध का पहले देखा हुआ उत्तराखड अब इतना बदल गया ?" और इस प्रश्न का जैसे सही उत्तर उस बूढे ने ही दे दिया था—"अंग्रेजी राज की स्थापना और अंग्रेजी शिक्षा का व्यापक प्रचार।"

"अंग्रेजी राज और अंग्रेजी शिक्षा ने यह दुष्परिणाम क्यो पैदा किया ?"

क्योकि भारत मे अंग्रेज प्रविष्ट हुए थे बनिया के रूप मे। और अंग्रेजी शासन और शिक्षा बनियावादी, यानी बाजारू सस्कृति के आधार पर समाज मे प्रविष्ट हुई थी। अत शिक्षोपार्जन का मुख्य उद्देश्य पैसा बन गया! और यही जीवन का मुख्य उद्देश्य भी। जीवन 'धनोपार्जन' के रूप मे परिणत होते ही अन्य उद्देश्य गौण हो जाते हैं या समाप्त! इस बनियावादी सस्कृति पर आधारित विद्या ज्ञान का साधन तो बन सकती है, पर वह ज्ञान मानवता या नैतिकता के उत्थान का साधन नही बन पाता। इस ज्ञान से या तो केवल पैसा कमाया जा सकता है, अथवा सरकार मे अधिकार का कोई पद भी। इस प्रकार यह शिक्षा भौतिक मूल्यो से रहित हो निजी स्वार्थ मे सीमित हो जाती है। और निजी स्वार्थ मे सीमित होने का स्पष्ट परिणाम होता है समाज के व्यापक हितो की उपेक्षा! इस प्रकार यह अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति समाज-विरोधी तत्त्वो के उत्पादन का जबर्दस्त कारखाना बन जाने के सिवा और कुछ रह नही गई!"

अब सहसा उसके स्मृति-पट पर अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति के कई भारतीय कर्णधारो के रूप भी उभर आये। प्रिंसिपल सी० एस० शर्मा, प्रोफेसर डी० एन० अग्रवाल और प्रो० सक्सेना के जाने-पहचाने व्यक्तित्व जैसे सामने प्रकट हो पडे। प्रिं० शर्मा किसी प्रख्यात कालेज के आचार्य, प्रो० अग्रवाल एक गवर्नमेट कालेज के विभागीय अध्यक्ष और प्रो० सक्सेना एक युनिवर्सिटी मे 'रीडर' थे। ब्रह्मा, विष्णु, महेश का यह दल इतना प्रबल था कि जहाँ अपने प्रान्त के युनिवर्सिटी-शिक्षा-बोर्ड पर ,इसका पूरा

आधिपत्य हो चला था वहाँ प्रान्त के बाहर के कतिपय ऐसे बोर्डों पर भी काफी प्रभाव था। फलस्वरूप इनके द्वारा लिखित, सम्पादित पुस्तको का अनेक विश्वविद्यालयो के पाठ्य-क्रमो मे निर्धारित होना सहज और सरल बन चला था। फलत बडे-बडे प्रकाशक इनकी मुट्ठी मे थे। प्रकाशको से रिश्वत के रूप मे घर बैठे ही इन्हे प्रचुर पैसे प्राप्त होते। क्योकि बिना इनकी कृपा के कोई प्रकाशक अपनी पुस्तक पाठ्य-पुस्तक निर्धारित कराने मे सफल नही हो पाता। इन प्रकाशको मे कुछ लोग ऐसे भी थे जो निर्धन-असहाय लेखको से साग-सत्तू पर पाठ्य-पुस्तके लिखाया करते। और इन पुस्तको की रायल्टी की सारी रकम उनके मूल लेखको के बजाय इसी त्रिमूर्ति के कदमो मे बतौर रिश्वत के अग्रिम पेश कर देते। मूल लेखको को केवल अपने छपे नामो पर ही सदा के लिए सतोष कर लेना पडता। क्योकि असतुष्ट और क्रुद्ध होकर भी वे प्रकाशक का क्या बिगाड सकते थे जबकि न्यायालय मे जाने के लिए भी उनके पास पैसे न थे?

आदित्यनाथ अत्यन्त दुखी हृदय से विक्षुब्ध स्वर मे बोल पडा—"तो जिस शिक्षा-पद्धति के कर्णधारो और सहचारियो मे ऐसे लोग हो, उससे किस नैतिक उत्थान की उमीद की जा सकती है? जिसके मूल मे ही अनैतिकता के घुन लग चुके हो उससे किस सुन्दर फल की आशा की जा सकती है? शिक्षा के ऐसे कारखानो से निकलने वाले लोग सामाजिक जीवन मे प्रविष्ट हो इन्ही त्रिमूर्ति जैसे लोगो को ही तो अपने जीवन का आदर्श मानेगे? 'यद्‌यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन.' गीता का यह वाक्य नि सार तो नही? भारत के प्राचीन शिक्षा-पद्धति के सचालको और कर्णधारो के अनेक विचार भले ही आज के युग के अनुपयुक्त हो, पर उनके जीवन का त्याग और बलिदान तो किसी भी युग के लिए आदर्श बन सकता है। उस युग मे विद्या को पैसे से बेचना अथवा पैसे से उसका मूल्य आँकना घोर घृणाजनक माना जाता था। वृत्तिकाजीवी विद्वानों को उस समय घृणा की दृष्टि से देखा जाया करता था। इस

आदर्श से रहित किसी बाजारू शिक्षा-पद्धति से नैतिकता के उत्थान की उमीद केवल बालू का महल खडा करने जैसा ही उपहासजनक है। और इसी प्रकार राष्ट्र के शासन-तन्त्र के सचालक भी स्वय अपने जीवन मे बलिदान-वृत्ति को अपनाये बिना राष्ट्रीय जीवन मे केवल नारो और उपदेशो के सहारे नैतिकता की सक्रिय भावना को नही जगा सकते। उनके समक्ष भी गीता का यह वाक्य प्रश्न रूप मे ही खडा होगा—"यद्-यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।'

खैर! यह तो केवल क्षुब्ध हृदय का आक्रोश था। इस आक्रोश से आदित्यनाथ के सामने अभी खडी समस्या का समाधान होना सभव न था। मलाणे के लोग जगली है। आदिम जीवन की सरलता उनमे कूट-कूटकर भरी हुई है। यह सरलता बहुत जल्द विश्वाम भी ग्रहण करती है, और बहुत जल्द अविश्वास भी। विश्वास से दया-ममता की भावना भी बडे वेग से जाग उठती है, और अविश्वास से उसी मात्रा मे क्रूरता और परायेपन का भाव भी। आदित्यनाथ इसे जानता था। और इस क्षण सतोष का यही एकमात्र सबल उसके पास शेष रह गया था कि उसकी बुद्धी के हृदय मे अविश्वास का विष अभी पैदा नही हुआ। उसकी धर्म-माता के हृदय से स्नेह-वात्सल्य का स्रोत अभी नही सूख सका। और इस स्नेह-वात्सल्य के प्रवहमान स्रोत से ही सस्नेह परामर्श के वे वाक्य भी फूट पडे थे—' ' पढाई-लिखाई का काम छोडके सुख से यहाँ रह! सुख से कमा और खा!..'

लेकिन सुख से केवल कमाना-खाना ही तो उसके जीवन का उद्देश्य नही है। बुद्धी जैसी पत्नी का प्राप्त हो जाना तो उसके जीवन का एक आनुषगिक प्रसग था। वह कतई इस उद्देश्य से मलाणे आया नही था। और आनुषगिक रूप मे ही एक स्नेहशीला धर्म-माता भी उसे मिली और अपनी उसी धर्म-माता के स्नेह की डोर ने और बुद्धी के आकर्षण ने उसे मलाणे मे रहकर ही कुछ करने की प्रेरणा दी! 'देवो भूत्वा देव यजेत्' के अनुसार उसने मलाणे का नागरिक बनकर मलाणे को

नव सस्कृति और नव सभ्यता के रग मे रगने का सकल्प किया ! लेकिन प्रथम ग्रास मे ही मक्खी पड जाने पर जैसे भोजन से अरुचि हो जाती है, उसी प्रकार उसे अपने जीवन से एकाएक अब वितृष्णा और निराशा हो चली !

वह बार-बार निराशा भरे हृदय से सोचने लगा—"मेरा यह सारा अध्ययन और अनुभव क्या इस रोटी और यौन जीवन के जाल मे उलझ कर बरबाद हो जायगा ? क्या इस जगली जीवन मे ही स्वय खो जाना पडेगा ? इससे बढकर मेरे जीवन की व्यर्थता और हो क्या सकती है ?" —सोचते-सोचते उसके नेत्रो मे आँसू भर आये। निराशा के आवेग से हृदय आन्दोलित हो उठा।

बुद्धी उसकी बगल मे लेटी पडी थी। पता नही वह भी पति की तरह चिन्ता मे उलझकर जाग रही थी, अथवा घर के अन्य प्राणियो की तरह निद्रा मे डूब चली थी। पर बुद्धी की ओर ध्यान जाते ही आदित्य-नाथ फिर सोचने लगा—"मेरे मन मे पहले यह आशका प्रकट हुई थी कि कही यह बुद्धी मेरे जीवन की जजीर न बन जाय ! तो क्या इसी जजीर मे उलझकर शेष जीवन से निराश होना पडेगा ? इस जजीर मे अब भी स्नेह की वह सबल स्निग्ध शक्ति ज्यो की त्यो मौजूद दिखाई दे रही है ! तो क्या मै भी राजकुमार सिद्धार्थ की ही तरह एक अन्य करुणा के प्रचार के उद्देश्य से इस करुणा को लात मारकर इस जजीर को तोड चलूँ ? नही ! ऐसा नही हो सकता ! यह तो घोर कायरपन और विश्वासघात होगा ! मैने तो बुद्धी के निष्कपट सुषुप्त चेहरे को चूमते हुए अपने हृदय का दृढ वचन दिया था—'मै तेरे साथ ऐसा विश्वासघात कभी कर नही सकता !' पर इन जगलियो के मन मे अविश्वास और घृणा के फैलाये जहर को जल्द मिटा सकना भी तो आसान नही ? लेकिन एकाएक हथियार डाल देना भी तो कम कायरपन नही ?"

उसने फिर सोचा—"क्या हर्ज है यदि कुछ समय के लिए चुपचाप

पराजय स्वीकार कर ली जाय ? फिर धैर्य के साथ धीरे-धीरे जनमत को अपने पक्ष मे मोडने का प्रयास किया जाय ? सघर्ष मे भी विजय और पराजय की कडियाँ तो उसी प्रकार जुडी रहती है जिस प्रकार जीवन मे सुख-दुख की। लेकिन जीवन-सघर्ष मे अन्त मे सफलता वरण करती है उस व्यक्ति को जो पराजय की ठोकरे खा-खाकर भी उसे सदा के लिए स्वीकार नही करता। सदा के लिए उसके आगे घुटने नही टेक देता।" —यह सोचते ही जैसे हृदय मे अचानक आशा-किरण-सी चमक उठी। निराशा का अन्धकार उत्तरोत्तर जैसे दूर होने लगा।

अब विश्व के कोने-कोने मे ईसाई मिशनरियो द्वारा किये जा रहे शिक्षा-प्रचार के अथक-अटूट प्रयास भी उसे याद आ गये। कितने धैर्य के साथ, कितनी कठिनाइयाँ सहते हुए वे विश्व की विभिन्न पिछड़ी जातियो मे सैकडो वर्षो से अपने धर्म, सस्कृति और सभ्यता का प्रचार इस शिक्षा-प्रचार की आड मे किये जा रहे है ? लेकिन झट उसे उन मिशनरियो के अपार साधन-सबल की भी याद आ गई। इन मिशनरी सस्थाओ के पास प्रचुर धन है। और देशी-विदेशी ईसाई सरकारो और सेठो का प्रबल सरक्षण और सहयोग भी उन्हे प्राप्त है। बिना इस धन-बल और सरक्षण-सहयोग के उनका प्रयास इस प्रकार सफल कभी नही हो पाता।

और तब एकाएक उसके मन मे इसी प्रकार के सरक्षण और सहयोग की आकाक्षा भी जाग उठी। वह सोचने लगा—"क्यो न इस शुभ उद्देश्य की सिद्धि के निमित्त भारत के श्रीमन्तो का द्वार खटखटाया जाय ? यदि इस कार्य के लिए अर्थ-सग्रह मे कुछ सफलता मिल गई, तो बडी आसानी से इन जगलियो के मन को मोडा जा सकता है, इनके दिल को जीता जा सकता है। सभ्य और असभ्य हर समाज का मन सदा से अर्थ-तन्त्र से परिचालित होता आया है। और इसी अर्थ-तन्त्र के सहारे वे ईसाई मिशनरी भी इतने सफल हो सके है। धर्म से मनुष्य का मोह बड़ा प्रबल होता है। मलाणे के लोग हिन्दू है। धर्म-परिवर्तन कराने

की समस्या मेरे सामने नही है। केवल समस्या है पढाई-लिखाई की ओर इनके मन को प्रवृत्त करने की। और इस कार्य मे यदि अर्थ-बल का सहयोग मुझे मिल जाय, तो कुछ समय मे ही मैं मलाणे को स्वर्ग मे बदल दूँ।"

अर्थ-पतियो के जिस वर्ग के प्रति उसके मन मे गहरी घृणा थी, अब उसी वर्ग से साहाय्य-सहयोग के लिए उसका मन उत्कठित हो उठा। काफी घूमे-फिरे होने के कारण विभिन्न नगरो मे अपने परिचित विशिष्ट व्यक्तियो के चेहरे भी उसकी नजरो मे चमकने लगे जिनके सहयोग से अर्थ-संग्रह मे सफलता की काफी उमीद थी। अब वह बहुत कुछ निश्चिन्त हो निद्रा को अपनी ओर खीचने के प्रयास मे लग पडा।

◇ ◇ ◇

"डिम्-डिम्-डिमाक्! डिमाक्!! डिमाक्!!!"

"द्रोय घटके! द्रोय घटके!! द्रोय घटके!!!"

दूसरे दिन सध्या को मलाणे के हर मुहल्ले की गली इन आवाजो से गूंजने लग पडी। गाँव के अधिकाश लोगो को देवता के दरबार से इस बुलावे का तात्पर्य मालूम हो चुका था। और शेष लोगो ने तात्पर्य को अनुमान से ही समझ लिया। इस आवाज ने बहुतो को प्रसन्न कर दिया। उनमे एक टुडरी भी थी। किन्तु कुछ लोग तटस्थ भी थे। पर खुड्डू की माँ, बुद्धो और आदित्यनाथ इस आवाज को सुनते ही बेचैन हो उठे। इस ढोल की चोट और आवाज मे जिस द्रोह और द्रोही की ओर सकेत किया गया था उसे समझने मे उन्हे बाधा न रही।

जडा स्वय मुख्य वादी बनकर चबूतरे पर जा बैठा था। गुर-पुजारी की हमदर्दी उसने हासिल कर ली थी। गाँव के आठ प्रतिनिधियो के कान भी वह भर चुका था। अत अपने अभियोग के अतिम निर्णय के सम्बन्ध मे उसे सदेह कतई न था। आदित्यनाथ ने पढाई-लिखाई के अपने कार्य को स्थगित करने की खुली घोषणा अभी नही की थी। लेकिन जडा को उसकी भनक मालूम हो चुकी थी। किन्तु वह आदित्य-

नाथ को उस गाँव मे बने रहने देने को तैयार कतई न था। अतः अपना मोर्चा ठीक से दुरुस्त करके वह वादी के चबूतरे पर जा ही बैठा।

टुड्री अपनी सखी-सहेलियो और अन्य महिलाओ को बडे उत्साह से बटोरती हुई मन्दिर की ओर चल पडी। देवता के आह्वान का अपमान या उपेक्षा कर देने की हिम्मत वहाँ किसी मे भी न थी। सब-के-सब मन्दिर की ओर रवाना हो पडे। खुड्ड का सारा परिवार भी वहाँ जा पहुँचा। बडे चबूतरे पर ज्येष्ठाग और कनिष्ठाग के सदस्य जा बैठे। परिवार के प्रमुखो से पत्थर का वह बैंच भी भर चला। और सारा आँगन अन्य नागरिको से।

अछूत बजनिया भी गले मे ढोल बाँधे सबसे दूर हटकर खडा था। प्रथा के अनुसार उसने ढोल पर चोट दी। और पूर्व-कथित ढग से गुर, पुजारी और कर्मिष्ठ के अग काँपने लग पडे। अर्थात् देवता का अश अपने प्रतिनिधियो के अगो मे उतर आया। और ढोल की आवाज़ शांत होने पर जडा ने खडे हो हाथ जोड आदित्यनाथ के विरुद्ध अपना अभियोग उपस्थित किया—

"मलाणे पर जमल भगवान् का राज है! मलाणे के लोग जमल भगवान् की प्रजा है, सतान है। यहाँ धरम का राज है। इस धरम के राज मे पाप का कोई भी काम कभी हुआ नही। इसीलिए मलाणे की नदी मे जल है, मलाणे के नाले मे जल है, मलाणे के खेतो मे अन्न पैदा करने का रस है, और मलाणे के लोगो के गुजारे के लिए यहाँ की जोतों पर जडी-बूटियाँ हैं। यह सब धरम का परताप है। अगर मलाणे से धरम का नाश हो जावे तो न यहाँ की नदी मे जल रह जावे, न यहाँ के नाले मे, और न खेतो मे रस रह जावे, और न जोतो पर जडी-बूटियाँ। और तब मलाणे के सारे लोग अन्न-जल के बिना तडप-तडप कर मौत के मुँह मे जा पहुँचे।"

उसके अभियोग पेश करने के ढग पर बुढिया और बुढ्ढी के रोम-रोम सिहर उठे। पर आदित्यनाथ अब भी कणाश बोली का जानकार

न बन सकने के कारण शातभाव से बैठा रहा। टुडरी का चेहरा खुशी से खिल उठा। और दूसरे लोग जडा के कथन को खूब ध्यान से सुनने लगे।

गला खखारकर जडा ने आगे कहा—"दुनिया मे सबसे बढकर प्यारी है जान, और इसी जान को पालने के कारण सबसे प्यारी चीज है रोटी ! कहा भी है—जान है तो जहान भी है। जान की ही खातिर हम धरम का पालन करते है। क्योकि जान से ही हम अपनी रोटी पैदा करते है। और मलाणे मे अभी हमे रोटी इसलिए मिल रही है कि यहाँ के लोग सचाई से अपने धरम का पालन करते है। अपने सत पर अटल रहते है।"

जडा के समर्थन मे अब भीड से अनेक आवाजे भी आने लगी—

"जडा ठीक कह रहा है !"

"जब सत नही रहा तो धरम कैसे रहेगा ?"

"धरम नही रहेगा तो रोटी कैसे मिलेगी ?"

"और रोटी नही मिलेगी तो जान कैसे बचेगी ?"

भीड मे बैठे कुछ लोग चिलम पी रहे थे, और कुछ लोग हथेलियो पर सुरती चुना रहे थे, और कुछ लोग खाई हुई सुरती की पीक भी थूक रहे थे। और आपस मे विभिन्न प्रकार के अभिमत भी जताये जा रहे थे।

लेकिन अभी जनता के मन्तव्य पर ध्यान न दे जडा बोलता जा रहा था—"मगर अब मलाणे मे पाप की हवा आ घुसी है। वह हवा हमारे बच्चो और औरतो मे फैलने लग पडी है। अगर हम अभी से सचेत न हो जायँ तो पाप की यह हवा मलाणे के धरम को उडा देगी। और साथ ही हमारी जान को, और हमारे बाल-बच्चो की जान को भी। और तब सारा मलाणा मशान बनकर रह जायगा। हम मे है कोई मलाणे को मशान बनने देने को तैयार ? उसे मशान बने देखने को तैयार ?"

"कोई नही !"

"कोई नही !"

एक साथ ही जैसे अनेक आवाजे गूँज उठी। जडा प्रोत्साहित हो आगे बोला—"मगर हमारे गाँव मे कुछ ऐसे लोग भी है जो सारे मलाणे को मशान बनाने पर तुले हुए है !"

"कौन ?"

"कौन ?"

एक साथ फिर अनेक आवाजे बोल उठी। और तब जडा ने एक तरफ तर्जनी का इशारा करते हुए कहा—"और कोई नही। सिरफ खुड्ड का घर और उस घर के लोग। खुड्ड, खुड्ड की माॅ और खुड्ड की बहन जिसने एक परदेसी को अपने घर मे जगह देकर, और उसे अपनी लडकी देकर इस गाॅव मे बैठा लिया, और गाँव मे पाप की हवा फैलाने का उसे मौका दिया !"

भीड मे खलबली मच गई। और खुड्ड की माँ अपने सारे परिवार पर लगाये इस झूठे अभियोग से क्रुद्ध हो पड़ी। वह झट उठकर हाथ जोड जडा का प्रतिवाद करते बोल उठी—"जडा झूठ बोले है, बिल्कुल झूठ ! जडा अभी खुद झूठ बोल के यहाँ पाप की हवा फैला रहा है। सबको मालूम है कि गाॅव मे परदेसी को जगह मिली देवता की दया से। देवता के हुकुम से। परदेसी का बुद्धी से ब्याह भी हुआ खुद देवता के सामने। खुद देवता को साच्छी बना के। फिर यह पाप कैसे हो गया ? क्या हमारा जमल भगवान् पहले से नही जानता था कि परदेसी को गाॅव मे बसाने से पाप फैलेगा ? जमल भगवान् खुद अन्तरजामी ! सब के मन की सच्ची बात खुद जाने है। फिर जडा क्या जमल भगवान् को ऐसा बेवकूफ समझे है कि ऐसी पाप की बात बोला करे है ?"

"ठीक ! खुड्ड की माँ ठीक कहती है !"

"देवता खुद सब के मन की जानता है।"

"जडा झूठ बोलता है। देवता को अनजान कहके खुद पाप फैलाता है।"

अब भीड मे से इस तरह की उठती विरोधी आवाजे सुनकर जडा एकाएक झेप चला। डर भी चला। उसे लगा जैसे उसका फेका तीर ही कही मुडकर उसी पर न चल जाय। वह अपने को गाँव मे सबसे चतुर-चालाक समझे बैठा था, पर यह सीधी-सादी बुढिया जैसे उससे भी चालाक अभी साबित हुई।

अब गुर ने स्वय हस्तक्षेप करना ठीक समझा। इशारा हुआ। ढोल पर चोट पडी। सभा पर झट खामोशी छा गई। गुर, पुजारी और कर्मिष्ठ के अग काँपने लगे। अपने अगो को कँपाते हुए ही गुर सभा को सम्बोधित करते हुए बोला—"देवता सब कुछ जानता है। देवता सब कुछ समझता है। वह सबको एक समान नजर से देखता है। मगर उसके दरबार मे जब जैसी बिन्ती की जाती है, तब उसी के मुताबिक वह फैसला भी देता है। आज भी वह उसी के मुताबिक फैसला करेगा। खुड्डू की माँ को भी बाद मे बिन्ती करने का हुकुम दिया जायगा। मगर मै जानना चाहता हूँ कि जडा की बिन्ती पूरी हो गई ?"

जडा की विनती अभी पूरी हुई न थी। अत वह अब भी खडा था। हाथ जोडकर बोला—"मेरी बिन्ती अभी पूरी नही हुई। अभी बहुत कुछ अरज करना बाकी है!"—कहकर गला खखारकर वह फिर बोला—"मलाणे गाँव का सनातन से रिवाज है कि गाँव मे कोई नया काम शुरू करने से पहले देवता का हुकुम लेना चाहिए। हुकुम न लेने से पाप लगता है। अधरम होता है। मगर परदेसी ने देवता से हुकुम लिये बिना ही मलाणे मे पढाई-लिखाई का काम शुरू कर दिया। और फिर बिना हुकुम लिये ही चल पडा मनाली को पोथी-पत्रा खरीदने। क्या यह देवता का अपमान नही है? देवता की बेइज्जती नही है? मलाणे पर देवता का राज है! किसी आदमी का नही! यह क्या मामूली अपराध है?"

भीड से फिर अनेक आवाजे आने लगी—

"परदेसी ने सच मे बडा अपराध किया !"

"परदेसी को दड दो !"

"परदेसी को गाँव से बाहर कर दो !"

बुढिया और बुद्धी फिर सिहर उठी। इस अभियोग का क्या जवाब दे, कुछ सुझाई दिया नही। लेकिन जडा का उत्साह बढ चला। गला खखारकर वह फिर बोला—"पढाई-लिखाई का काम तो यो भी बडा पाप है। पढ-लिखकर आदमी बेईमान बनता है। चोर, डाकू और ठग बनता है। गये साल मडी-सुकेत मे एक पढे-लिखे ठग ने हम मलाणियो को जिस धोखे से ठग लिया सो अब भी हमे याद है। परदेसी मलाणे मे हमारे बच्चो को पढा-लिखाकर बेईमान बनाना चाहता है। चोर, डाकू और ठग बनाना चाहता है। देवता के राज मे अधरम और पाप फैलाना चाहता है। और जब मलाणे से धरम-करम ही उठ गया, दीन-ईमान ही उठ गया, फिर रह क्या जायगा ? देवता का कोप बरसेगा। बरबादी बढेगी। कुछ दिन मे ही मलाणा बिल्कुल सूना मशान बन जायगा !"

भीड पर इस अभियोग का बडा जबर्दस्त असर पडा। एक साथ अनेक आवाजे फिर गूँजने लगी—

"पढा-लिखा लोग बडा बेईमान।"

"पढा-लिखा लोग बडा पापी।"

"पढाई-लिखाई की नही जरूरत !"

"परदेसी को दड दो।"

"परदेसी को गाव से भगा दो।"

जडा अपना पूरा अभियोग पेश करके चबूतरे पर बैठ गया। उसके चेहरे पर खुशी का उल्लास चमक रहा था। लेकिन बुद्धी के काटो तो खून नही। भीड का रुख देख आदित्यनाथ भी अब खूब घबरा गया। और जब उसके पास बैठी बुद्धी ने उसे सब कुछ समझा दिया तो वह और भी घबराया।

ढोल की आवाज गूँजने लग पडी थी। गुर, पुजारी और कर्मिष्ठ के अग काँपने लग पडे थे। और फिर ढोल की आवाज शान्त होते ही बुढिया हाथ जोडे उठ खडी हुई। मारे भय और घबराहट के उसके अग-अग काँप रहे थे। ओठो पर पपडियाँ पड रही थी।

जीभ से ओठो को बार-बार भिगोते काँपते स्वर मे यह बोलने लगी—"जमल भगवान् बडा दयालु ! बडा दयालु ! बडा धर्मिष्ठ ! वह सबका राजा ! सबका बाप ! परदेसी को उसीने गाँव मे बसाया। उसी ने मौत के मुँह से बचाया। परदेसी भी उसका बेटा। अनजाने मे बेटा कोई कसूर भी करे तो बाप माफ कर देता है। परदेसी अब पढाई-लिखाई का काम छोड देगा। वह आज से कोई भी काम देवता के हुकुम के बिना नही करेगा। देवता इस बार बेटे के कसूर को माफ कर दे। जमल भगवान् बडा दयालु। बडा धर्मिष्ठ।"—इतना कहकर बुढिया नीचे बैठ गई।

फिर ढोल पर चोट पडी, और फिर गुर, पुजारी और कर्मिष्ठ के अंग काँपने लग पडे। और ढोल की आवाज शात होने पर गुर ने उसी लहजे मे अपने अगो को नचाते हुए कहना शुरू किया—

"मलाणे पर जमलू देवता का राज है। वह यहाँ का राजा है। राजा की नजर मे सब लोग समान। वह दया के समय दया भी करता है, और कोप के समय कोप। अपराध करने पर वह सबको दड देता है। अपराध न करने पर दया करता है। अगर वह अपराध को माफ कर दे, तो पाप बढता है, अधरम फैलता है। और एक के पाप और अधरम का फल सबको भुगतना पडता है। परदेसी ने जब शरण माँगी, देवता ने दया करके शरण दी। जगह-जमीन दी। औरत दी। मगर बाद मे उसने अपराध करना शुरू कर दिया। एक तो पढाई-लिखाई जैसा पाप का काम, और सो भी बिना देवता के हुकुम के ! और फिर वह देवता का हुकुम लिये बिना ही चला गया मनाली पोथी-पत्रा लाने। यह देवता का अपमान है। देवता की बेइज्जती है। और पढाई-लिखाई का काम तो

है ही घोर पाप। परदेसी पढा-लिखा आदमी है। पढा-लिखा लोग बेईमान होता है। अधरमी होता है। इसी से उसने देवता का ऐसा अपमान किया। ऐसा अपराध किया। देवता माफ नही कर सकता। वह दण्ड जरूर देगा। अब वह परदेसी को दी हुई सारी चीजें छीन रहा है, शरण छीन रहा है, जगह-जमीन छीन रहा है, औरत छीन रहा है। वह हुकुम दे रहा है कि कल सुबह ही परदेसी को गाँव से निकाल दिया जावे। भगा दिया जावे।"

देवता का यह हुक्म सुनते ही बुद्धी और बुढिया चिग्घाड मारकर रो पडी। आदित्यनाथ का सिर नीचा हो गया। खुद्द हक्का-बक्का भौचक्का रह गया। दूसरे प्रतिनिधियो ने भी इस फैसले पर सर्वसम्मति की मुहर लगा दी। और जनता का रुख तो पहले ही खूब विरोधी बन चला था। सभा विसर्जित हो गई। बुद्धी और बुढिया रोती-पीटती घर वापस आ गईं।

चतुर्थ खण्ड

आदित्यनाथ को मलाणे से निर्वासित कर ही दिया गया। अन्ध-विश्वास के सबल सिहासन पर आसीन जमलू देवता के निष्करुण आदेश पर उसकी शरण छीन ली गई, जगह-जमीन छीन ली गई और उसके हृदय की देवी सहधर्मिणी भी। जब गाँव के चारो चुगो के पगुरदार (पहरेदार) उस अपराधी को गाँव की सीमा से बाहर खदेडने के निमित्त लिये जा रहे थे, सीमान्त तक खुड्ड का सारा परिवार और उसकी सारी बहने भी साथ आई थी। शासन के पहरेदारो मे उस क्रूर आदेश के परिपालन की क्रूरता थी, तो इन शेष जनो मे जैसे परिवार के किसी सदस्य के सदा के लिए वियुक्त होने की कठोर वेदना। बुद्धी रो रही थी, बुद्धी की माँ रो रही थी, और शेष जनो की पलकों पर जैसे हृदय उतर-कर उस निष्करुण दृश्य का मूक साक्षी बना हुआ था।

सरल हृदयो मे परिस्थिति की चरमता के समय या तो अतिशय प्रेम उत्पन्न होता है अथवा अतिशय घृणा। विदा की वेला मे बुद्धी पति से लिपटकर अश्रु-गद्गद् स्वर मे केवल इतना बोल सकी थी—"देवता ने तेरे को जरूर मेरे से अलग किया, मगर मेरा दिल कभी तेरे को अलग न कर सकेगा परदेसी! तू विश्वास रख।"

ये शब्द जैसे ममता और करुणा के तीर बनकर आदित्य के हृदय मे जा चुभे। अब तक मूक धैर्य का प्रतीक बना हुआ उसका हृदय एका-

एक कुछ यो आलोड़ित हो उठा ज्यो किसी जडीभूत हिम-सरोवर मे पहाड टूटकर गिर पडा हो। बडे जोर से वह रो पडा। और तब धर्म-माता झट आगे बढकर खुरदरे हाथो से उसके आँसू पोछते हुए लडखडाते स्वर मे बोलने लगी—"भाग मे यही लिखा था बेटा! तू अब रो मत। तू यही कही, जरी-भुन्तुर के बाजार मे रहकर पढाई-लिखाई कर। कभी-कभी जाके तेरे को देख आऊँगी। बुढ्ढी भी देख आयेगी। मेरा देवता बडा दयालू। बडा दयालू। अभी उस पर कोप सवार हो गया। मगर फिर कभी बिन्ती करूँगी। दया पलटेगी। फिर तेरे को बुलाऊँगी। तू रो मत। धीरज रख बेटा।"

बुढिया के इस वाक्य ने जैसे आशा की एक रश्मि उसके हृदय मे डाल दी। और इस आशा-रश्मि ने ही जैसे उसके किंकर्तव्य-विमूढ हृदय मे अग्रगति के पथ को आलोकित भी कर दिया। उन सबसे विदा ले वह पहाड की उस ऊँचाई से उतरते हुए नदी के किनारे आ गया। और लगातार नदी के किनारे से, जगलो और पहाडो के बीच से गुजरती ऊबड-खाबड पगडडी पर वह बढ चला। चलते-चलते बुढ्ढी के वे वाक्य रह-रहकर हृदय मे ध्वनित होते। 'बुढ्ढी के दिल से कभी कोई उसे छीन नही सकता'—इस वचन और सदेश मे उसे एक बहुत बडा सहारा महसूस हो रहा था। बुढ्ढी के उन वाक्यो मे जगली हृदय की दृढता और पवित्रता जैसे ध्वनित हो रही थी। जैसे उन वाक्यो मे सीता और सावित्री के सकल्प मुखरित हुए थे। यह उसके भावुक मन के लिए, जीवन के लिए सामान्य सबल न था। प्रेम मे सामान्य सजीवनी नही होती। वह चलते-चलते ही उच्छ्वसित हो-होकर सकल्प कर रहा था—"मै भी जीवन भर अपनी सीता का राम बनकर रहूँगा। राज-शासन की कठोरता मे आकर अपनी सीता को निर्वासित करके भी राम उसे कभी भूल न सका था। अपनी सीता मे बँधा हुआ उसका हृदय किसी अन्य नारी की ओर कभी आकृष्ट न हो सका था।"

आदित्यनाथ को यह मालूम हो चुका था कि बुद्धी गर्भवती बन चुकी है। पति-पत्नी के मानसिक सबन्ध को अधिकतर सुदृढ बनाने की सुकोमल पर पुष्ट जजीर बुद्धी के उदर मे पड चुकी थी। मलाणे के आदिम समाज मे यद्यपि इस जजीर का कोई अधिक महत्व नही माना जाता, किन्तु बुद्धी और आदित्य के लिए उसका कम महत्व न था। सीताएँ और सावित्रिया हर समाज मे कम ही होती है, और राम भी कम, किन्तु उन दोनो के हृदय तो स्वाभाविक रूप से सीता-राम के प्रतीक थे।

चलते-चलते ही आदित्यनाथ का मन अपनी भावी सतान के लिए आकुल हो जाता।

और फिर अपनी धर्म-माता के वाक्य उसे याद आ जाते। माँ ने जरी या भुन्तुर के बाजार मे ही कही रहकर शिक्षा-प्रचार का परामर्श उसे दिया है। और तब एकाएक उसे स्वामी सोमानन्द याद आ जाते, और पार्वती के किनारे का वह चौरस, रमणीय, प्राकृतिक उपवन याद आ जाता। स्वामी सोमानन्द की सचाई पर उसका विश्वास दृढ हो चला था। "फिर क्यो न इस सच्चे मत के सरक्षण और सहयोग से पार्वती के किनारे उसी उपवन मे एक विद्यापीठ की स्थापना की जाय? क्यो न वही पर अपने जीवन के उद्देश्य को मूर्तिमान बनाने का प्रयास किया जाय? स्वामी सोमानन्द का आस-पास के गाँवो पर प्रभाव भी है। पर वह प्रभाव अभी उस असश्लिप्ट रज-वीर्य की तरह है, जिसमे प्रजनन की क्षमता होते हुए भी बन्ध्यात्व है। क्यो न स्वामी सोमानन्द के उस प्रभाव और क्षमता को गतिशील और रचनात्मक बनाया जाय? भुन्तुर का बाजार बिल्कुल पास है वहाँ से। मलाणे की ओर से उसी के किनारे से वह कच्ची सडक बाजार की ओर जाती है। वहाँ रहते हुए कभी माँ को भी देख सकूँगा। और बुद्धी को भी। और अपने उस आनेवाले शिशु को भी।"

तनिक चौरस मैदानी क्षेत्र मे प्रविष्ट होते ही मलाणा नदी का प्रवाह फैलकर छिछला और मंद पड़ जाता। जैसे प्रकृति की उस गोद मे क्रीडा

करता-सा प्रतीत होता। और फिर दोनो ओर के सकुचित पहाडी दर्रे मे प्रविष्ट होते ही वह अत्यन्त सरव और सवेग बन जाता। जैसे मार्ग के सकुचित अवकाश को कुचलते हुए वह फैलाव की ओर बढने के लिए सरोष और सवेग बन जाता। आदित्यनाथ प्रवाह की उस गति को देख सोचने लग जाता—"क्या मनुष्य के सघर्ष की कहानी भी ऐसी ही नही है ? हर प्रतिभावान मनुष्य अपने जीवन का विस्तार चाहता है। जीवन मे गति चाहता है। इस गति और विस्तार के पथ मे आये हुए अवरोधो और सकोचो को कुचलने के सघर्ष मे क्या वह भी इसी प्रकार क्षुब्ध और सवेग नही बन जाता ? और इतने ऊँचे और सशक्त जड पहाड भी क्या कभी प्रवाह के मार्ग को रोक सकने मे समर्थ हो सके ? इन सबल अवरोधो के कारण प्रवाह को भले ही अपना मार्ग बदल देना पडे, पर उसकी गति क्या कभी रुक सकी ? क्या हुआ यदि अब तक के मेरे कतिपय प्रयास सफल नही हो सके। क्या हुआ यदि समाज के अवरोधक तत्त्वो ने मुझे मार्ग बदलने को मजबूर कर दिया ? किन्तु जीवन का प्रवाह तो जारी रहना चाहिए। निराशा की विशाल मरुभूमि मे प्रविष्ट हो उसे नष्ट होना न चाहिए।"

इस प्रकार के तर्क-वितर्को मे खोया हुआ वह दिन के तीसरे पहर जरी के बाजार मे आ पहुँचा। जरी से मील-भर पीछे ही मलाणा नदी पार्वती मे मिल चुकी थी। जरी के बाजार मे कुछ पका-खाकर वह भुन्तुर की ओर जाने वाली कुछ चौडी कच्ची सडक पर चल पडा। दूसरे दिन, दिन के भोजन के वक्त वह स्वामी सोमानद की कुटिया मे पहुँच गया।

विद्यापीठ की स्थापना मे स्वामी सोमानद का सहर्ष सहयोग उसे मिल गया। स्वामी के प्रभाव और प्रयास से बहुत जल्द वह जमीन भी मिल गई। क्योकि सरकारी तहसीलदार ही जब स्वामी सोमानन्द का शिष्य ठहरा तो इस परती सरकारी जमीन के प्राप्त होते देर क्या ? लोगों का सहयोग भी प्राप्त होने लगा। दो-तीन छोटे-छोटे कच्चे मकान भी

बात-की-बात मे तैयार हो गये। छात्रो का सग्रह और सचय भी आरम्भ हो गया।

कुछ लोग पीठ-पीछे उस प्रयास पर छींटा-कशी भी किया करते—"देख तो लिया हमने कुल्लू मे स्वामी सत्यकेतु के विद्यापीठ को! यह सब ठगी है, ठगी! दुकानदारी! खाने-पीने का बहाना!" और चुगलखोर तत्त्व इन आलोचनाओ मे नमक-मिर्च लगा स्वामी और आदित्य के पास झट पहुँचा भी देते। आदित्य का भावुक मन मर्माहत हो जाता। और तब स्वामी सोमानन्द हँसकर उसे धीरज देते—"बकने दो उन मूर्खो को! हमे तो अपना काम धैर्य और साहस से चालू रखना चाहिए। हाथी चले बाजार, कुत्ता भौके हजार! और उन मूर्खों को ही क्यो दोष दिया जाय? एक चावल का एक ही पका दाना उस हाँडी के समस्त चावलो के पके होने का सबूत होता है। स्वामी सत्यकेतु और वर्मा के व्यक्तित्व की कसौटी पर ही यदि हमे भी वे कसे तो नाराज न होकर चुपचाप अपने काम मे इस तेजी से लग जाना चाहिए ताकि जनता की परीक्षा मे पूरे अक के साथ हम उत्तीर्ण हो सके। इस प्रकार की आलोचनाएँ तो हमे और भी बल देती है आदित्य!"

आदित्यनाथ ने मलाणे मे अपने जीवन की समस्त घटनाएँ खोल-खोलकर स्वामी सोमानन्द से बता दी थी। फलस्वरूप उन दोनो मे दूरी की दीवार ढह चुकी थी। आदित्य के प्रति स्वामी सोमानन्द के हृदय मे वात्सल्य जाग उठा था। उन्हे लग रहा था जैसे स्वय उनका पुत्र ही आज आदित्यनाथ के रूप मे उनके पास पहुँच गया हो जिसे वे साधु-जीवन के पथ पर भाग निकलते समय घर पर त्याग आये थे। इस उपलब्धि का आनन्द इस वृद्ध-जीवन मे उन्हे कम अनुभव नही होता।

आलोचनाओ से आहत आदित्यनाथ के मन को इस प्रकार भी समझाया करते—"हमारे पास फौज, पुलिस, धन-दौलत और अखबारो का सबल आवरण या कवच भी नही कि जिसकी आड मे हम अपने को सुरक्षित महसूस करे। लेकिन हमेशा याद रखो आदित्य, कि चरित्र का

कवच इन सभी झूठे कवचो से कही सशक्त होता है। अन्त मे विजय उस व्यक्ति की होती है जिसका व्यक्तित्व चरित्र के कवच से सुरक्षित हो। क्या सभ्य, और क्या असभ्य, मनुष्य का मौलिक मन सर्वत्र एक जैसा होता है। यह मन सदा से ही पवित्र चरित्र की पूजा करता आया है। पूजा करता रहेगा।"

आदित्यनाथ ने विद्यापीठ का नाम रखा था "हिमालय विद्यापीठ।" इस भारी-भरकम नाम पर भी खूब आलोचनाएँ हुआ करती। कुछ पढे-लिखे लोग स्वामी सोमानंद और आदित्यनाथ के सामने ही कहा करते—"इस छोटे-से विद्यालय का इतना बडा नाम रखने की क्या जरूरत स्वामी जी? इससे तो उल्टे जग-हँसाई होती है आप दोनो की।"

और तब सोमानद जी ठठाकर हँस पडते। और फिर मुस्कराते हुए उनसे प्रश्न करते—"अच्छा, बताओ बचपन का नाम तुम्हारा क्या था?"

"वही जो अब है!"

"लेकिन अब तो तुम बडे बन चुके हो?"

"तो इससे क्या?"

"बचपन के इस छोटे-से नाम को बदलकर कोई बडा नाम क्यो नही अपना लेते?"

उन लोगो से कोई जवाब देते नही बनता। तब स्वामी जी मुस्काते हुए फिर कहते—

"गाधी, जवाहर और सुभाष के नाम आज कितने बडे हो चुके है? लेकिन उनके बचपन मे भी नाम तो उनके ये ही थे? ससार के कितने महापुरुष तो गरीब की झोपडी मे पैदा हुए। ईसामसीह का जन्म हुआ था एक घुडसाल मे। सो भी एक क्वाँरी के गर्भ से! हमारे अपने ऋषि वशिष्ठ भी वेश्या के गर्भ से वेश्या के घर मे पैदा हुए थे। और रूस का स्टालिन पैदा हुआ था एक चमार की झोपडी मे! पर देखो, आज स्टालिन की एक हुँकार पर दुनिया कैसी थर्रा उठती है! उसी प्रकार आज दो-तीन झोपडियो वाला यह 'हिमालय विद्यापीठ' भी

यदि किसी दिन सारे हिमालय का गर्व बन जाय तो आश्चर्य क्या ? तुम लोग आलोचना करने के बजाय मिलकर यहाँ काम करो। अपने कुल्लू के इस गौरव-शिशु को पाल-पोसकर बडा करो। कुछ वर्ष बाद तो तुम्हे स्वय विश्वास होने लग पडेगा। अभी धीरज धरो !"

स्वामी जी व्यवहार-चतुर थे। किसी तार्किक को भी तर्क मे परास्त कर देने की स्वाभाविक क्षमता थी। फिर उन अधकचरे पढे-लिखो की बिसात क्या ?

छात्रो की सख्या दिनोदिन बढने लगी। स्वामी जी विद्यापीठ के लिए भिक्षा-सग्रह करने के साथ छात्र-सग्रह भी कर लाते। एक छात्रावास भी बन गया। दूर के गाँवो के छात्र उसमे रहने लगे। गरीब छात्रो को मुफ्त का भोजन भी दिया जाने लगा। मुफ्त-भोजन के लोभ ने छात्रो की सख्या एकाएक बढा देने मे बडी मदद की। और इस बढी हुई सख्या ने भिक्षा-सग्रह के कार्य को बढाने मे। अनेक पढे-लिखे उत्साही नवयुवको का मुफ्त सहयोग भी मिलने लग पडा। बडे धडल्ले से विद्यापीठ का कार्य चल निकला।

◇ ◇ ◇

आदित्यनाथ को बच्चो को पढाने मे मलाणे मे ही अनेक नये अनुभव प्राप्त हुए थे। उन अनुभवो को वह यहाँ भी लागू करता, दिन-दिन उन्हे परिष्कृत भी करता और स्वामी जी स्वय भिक्षा-सग्रह मे दिन-रात मशगूल रहते। विद्यापीठ का परिवार उनका अपना परिवार बन चुका था। उस परिवार को समृद्ध व सुपुष्ट किये जाना ही उनके शेष जीवन का एकमात्र लक्ष्य बन गया। उनकी तन्मयता और विद्यापीठ के उत्तरोत्तर बढते कार्य के देख कुछ श्रीमन्त लोग भी आकृष्ट होने लगे। स्वय वहाँ आ-आकर आदर और सम्मान भी जताने लगे। कुछ मास मे ही वह स्थान क्या से क्या बन गया। महेन्द्र व नायब तहसीलदार के सहयोग व प्रयत्न के बिना उतनी जल्दी वह सारा स्थान विद्यापीठ को मिल पाना आसान न था। और उन दोनो के सहयोग व प्रयत्न से ही

विद्यापीठ का आरभिक कार्य भी सुचारु रूप से चल निकला था। आदित्यनाथ के अथक श्रम और सुरुचि ने भी वातावरण मे आकर्षण भर दिया था। उन झाडियो को बिल्कुल काटे व उजाडे बिना ही परिष्कार के द्वारा अद्भुत उपवन का रूप दिया जा चुका था। और नीचे से पार्वती उस आकर्षण मे रग भरे जा रही थी और चतुर्दिक पहाडो पर प्रकृति की हरी-भरी मुस्कान भी।

काम बढने के साथ कुछ नये अध्यापक भी नियुक्त हुए। छात्रो को पुस्तकीय ज्ञान के साथ हाथ के काम भी सिखाये जाने लगे। ऊन की कताई और बुनाई कुल्लू के किसानी जीवन का विशेष अग होने के कारण शिक्षा मे उसकी उपेक्षा कतई न की जाती। आस-पास के किसी भी गाव के 'जुआर' मे वे छात्र अवश्य शामिल होते। क्योकि आदित्य-नाथ के इस मत से स्वामी सोमानन्द खूब प्रभावित और प्रसन्न हुए कि, यदि विद्यापीठ को किसानो के सहयोग व साहाय्य पर ही चलना है, तो यह कम आवश्यक नही कि विद्यापीठ के सारे छात्र किसानो के 'जुआर' मे शामिल होवे। उनके सामूहिक श्रम मे सहायता पहुँचावे। एक पथ अनेक काज। क्योकि इस प्रकार एक तो विद्यापीठ के प्रति कृषको मे सहानुभूति व आत्मीयता पैदा होती, दूसरे, विद्यापीठ अपना ऋण भी अदा करने का कुछ अवसर पा लेता, तीसरे, छात्र-छात्राओ को किसानी जीवन और कार्य का प्रशिक्षण मिल जाता; और चौथे, उन बच्चो का मन बहलाव भी होता। सारे अध्यापको के साथ स्वामी सोमानन्द स्वय अपनी बानर-सेना का नेतृत्व करते। उस बानर-सेना के साथ खेलने-कूदने और नाचने मे भी पीछे न रहते। बुढापा मानो बचपन बनकर उन बच्चो मे मिल जाता। मानो बच्चो मे से बचपन निकलकर उस बूढे की रग-रग मे समा जाता।

उस बूढे का साथ पाकर बच्चे कितना प्रसन्न हो जाते! कितना मग्न हो जाते! और यही हाल होता उस बूढे स्वामी सोमानन्द का भी। तभी तो एक दिन उन्होने भावना भरे स्वर मे कहा था—"आदित्य! यदि

भगवान् कही है तो बच्चो मे। शिशुओ मे। इन शिशुओ से परे भगवान् का अस्तित्व मै नही मानता। सच कहता हूँ आदित्य, जिसने शिशुओ को रिझा लिया, रिझाकर उन्हे पा लिया, उसने सचमुच भगवान् को पा लिया। तुम मेरे वास्तव मे गुरु हो! आखिर तुमने ही तो मुझे इन भगवानो से मिलने का मौका दिया! इन भगवानो मे मिला दिया और फिर एकाएक अश्रुसिक्त नेत्रो से विह्वलता व वात्सल्य भरे स्वर मे—"तुम स्वय भी किसी भगवान से कम नही हो ओ मेरे आदित्य! मेरे जीवन की सध्या मे प्रकाश भरने वाले।"

और आदित्यनाथ झट शरमाकर वहाँ से अलग हो गया। पर आँखो मे उभरते आँसुओ को वह दबा न सका।

अध्यापको मे वहाँ कोई दलबन्दी न थी। कोई ईर्ष्या या द्वेष न था। क्योकि स्वय सचालक का मन अधिकार या बडप्पन की आकाक्षा से रिक्त था। कितने विद्युद्वेग से विद्यापीठ का कार्य बढता जा रहा था। क्योकि विद्यापीठ के हर व्यक्ति का मन एक बन चुका था। और जहाँ मन एक होता है, उस मन का काम बिजली से भी तेज होता है। और मन सब का इसलिये एक बन चुका था कि सारा श्रेय या परिणाम किसी एक या दो व्यक्ति द्वारा बटोरे जाने की वहाँ प्रवृत्ति न थी। वैसी मनोवृत्ति न थी।

अब तो प० हीराचन्द्र शास्त्री व अमीरचन्द्र जी भी जब-तब आकर हाजिरी दे जाया करते। बडे विनम्र भाव से श्रद्धा-भक्ति जता जाया करते। और धीरे-धीरे वे लोग भी अब आने लगे जो कभी स्वामी सत्यकेतु के दरबार की शोभा बढाया करते। बडे विनय से हाथ जोडे "मेरे लायक सेवा?"—कहते वहाँ से विदा होते।

"देखो न?"—और उनके विदा होते ही स्वामी सोमानन्द एक दिन मुस्कराते हुए बोले—"देखा न, आदित्य? गुड की डली पर किस प्रकार मक्खियाँ मंडराने लगी? भिनभिनाने लगी? मन्दिर जब तैयार हो गया, किस प्रकार भक्तगण भिन्न-भिन्न भावनाएँ लिये जाने लगे? पर सब

की मूल भावना एक है। क्योकि ब्रह्म एक है, भगवान् एक है और ससार एक है ।"—कहते-कहते वे जोर से हँस भी पडे ।

"सुना आदित्य ?"—एक दिन मुस्कराते हुए वे बोले—"अभी विद्यापीठ तुम्हारा छोटा है, इसलिए ये छुटभैये ही अभी मँडराया करते हैं यहाँ। इनके बडभैये तो बडी चीजो पर ही हाथ साफ करते है। लेकिन उनकी नजर हर तरफ दौडा करती है। क्या धर्म, क्या राजनीति, क्या साहित्य और क्या शिक्षा वे किसीको भी अछूता नही छोडते। हर मन्दिर के द्वार की चाभी पर वे अपना कब्जा जमाये रखना चाहते है। लेकिन जानते हो, सबसे बडा मदिर कौन है ?·· अरे, सबसे बडा मन्दिर है राजनीति का। क्योकि उसी मे सबसे बड़े देवता निवास करते हैं। और भगवान् के महान् भक्तो की नजर इस मन्दिर पर ही सबसे अधिक रहा करती है।"

फिर मुस्कराते हुए बोले—"जानते हो, भगवान् के महान् भक्त कौन हैं ? · तुम तो हँस रहे हो भाई। अरे, भगवान् के महान् भक्त वे हैं जिन पर भगवान् की परम प्रिया श्री लक्ष्मी महारानी की अपार कृपा है। और इन लक्ष्मी-पुत्रो की तरकस मे वो-वो तीर होते है आदित्य, जिनके वार का पता भी न चले, पर घाव गभीर करे। यदि एक बार भी इनके तीर का निशाना बन जाओ, फिर तो ऊपर से आदर दिखाते हुए भी वे मन-ही-मन तुम्हे अपना खरीदा टट्टू ही मान लेंगे। जाने कितने राजनीतिक दलो व नेताओ को अपने तीर का निशाना बना लिया इन्होने। जानते हो न आदित्य, उन सेठ जी का नाम जिनके नाम की घटी बजाने वालो की आज कमी नही ? जिनकी कोठियो मे राष्ट्र के महान्-से-महान् वे नेता भी जा विराजते है, जो राजनीतिक जीवन मे भी सादगी और सतपन का दिखावा करके जनता की आँखो मे धूल झोका करते हैं।" कहते-कहते उनके चेहरे पर क्षण भर के लिए एक वितृष्णा की रेखा उभर आई।

क्षण भर चुप रहकर वे फिर मुस्कराते हुए बोले—"और बताऊँ तुमसे। दो सगे भैया है कृष्ण-बलदाऊ की तरह। लक्ष्मी के अपार कृपा-

पात्र। दोनो भाइयो मे गहरा समझौता है, और समझौते के अनुसार दोनो के तीर विभिन्न दिशाओ मे चला करते है। एक भाई ने देश की साम्प्रदायिक शक्तियो को फाँस रखा है और दूसरे ने राष्ट्रवादी दलो को। अर्थात् इन विभिन्न दलो के नेताओ की पूजा-अर्चा करके उन्हे वे फाँस चुके है। और जब नेता फँस चुके तो नेताओ की पूँछ से बँधी पार्टियाँ भी तो आप-से-आप फँस चुकी भैया। बेईमानी से उपार्जित लाखो-करोडो के एक अल्प अश की ही यह करामात है आदित्य। इन सेठ-साहूकारो और श्रीमतो के जीवन का एकमात्र उद्देश्य है प्रभुता और सुख। चाहे कोई भी दल शासन पर कब्जा जमाये, पर 'चित्त भी मेरी, पट भी मेरी।' और अभी अग्रेज प्रभुओ की छत्र-छाया मे चाँदी तो काट ही रहे है ये। सो, तुम अभी से सावधान रहना भाई। इनके छुटभैये तो अभी से टूटने लग पडे, बडभैयो की पारी तो आगे है।" कहकर वे खूब जोर से हँस पडे।

लेकिन विद्यापीठ के काम मे दिन-रात मशगूल रहने के बावजूद आदित्यनाथ अपनी बुद्धी को दिल से दूर न कर सका। वह उसे भूलने का प्रयत्न अवश्य करता, पर भूल न पाता। अवकाश के किसी भी क्षण स्मृति के आकाश मे विद्युत् की तरह बुद्धी का अरुणाभ गोरा चेहरा चमककर उसके मन को आदोलित कर देता। उसे बुद्धी का वह वचन याद आ जाता—"मेरे दिल से तेरे को कोई अलग नही कर सकता!" और यह याद आते ही उसकी बडी-बडी आँखों मे भरी हुई वेदना उसके मन मे उभर आती। फिर तो आदित्य की आँखे भी भरे बिना न रह पाती। वह दूसरो से छिपकर कुछ क्षण के लिए अकेले मे अपने पर काबू पाने का प्रयत्न करता। किंतु दूसरे ही क्षण विदा के वक्त का माँ का चेहरा याद आ जाता। जब वह वृद्धा उसके सिर और कपार को चूमकर उस पर मौन स्नेह और आशीष की वर्षा कर चुपचाप वापस चल पडी थी, वह दृश्य याद आते ही आदित्य का हृदय और भी उच्छ्वसित हो जाता। उसके हृदय मे बार-बार यह शब्द ध्वनित होने

लगता—"इन्सान ! इन्सान ! प्रकृति का कितना सुन्दर और श्रेष्ठतम विकास ! स्नेह की इस असीमता मे यदि सारा विश्व विलीन हो उद्वेलित हो उठे। क्या यह सम्भव नही कि विश्व-मानव का मानस इसी असीमता मे सीमित वनकर अपने हृदय के बोल को व्यवहार मे परिणत करे ?"

फिर वह दत्तचित हो काम मे लग जाता। विद्यापीठ के बच्चो मे मिलकर अपने मन को शैशव की पवित्रता मे आबद्ध कर देता। उसे लगता जैसे उन शिशुओ के प्रसन्न चेहरो पर उसका अपना भावी शिशु ही मुस्करा रहा हो। भुन्तुर के क्षेत्र मे भी घाटियाँ बरफ की चादरो से ढक चुकी थी। किसी-किसी दिन तो भूमि पर भी दिन का धवल पट बिछकर लोगो मे आलस्य भी और उल्लास भी भर देता। विद्यापीठ के बच्चे कितने मजे मे उस धवल पट पर खेलते व मचलते। और फिर सूर्य के प्रखर प्रकाश का सपर्क होते ही बरफ की वह साडी मानो डरकर कुछ समय बाद ही धरती से विलीन हो जाती। कभी-कभी दिन मे ही बरफ की वर्षा का दृश्य जब आदित्य देखा करता तो प्रकृति के विशाल इन्द्रजाल पर वह मन-ही-मन मुग्ध हो जाता। लगता जैसे धरती और आकाश एक होना चाह रहे है। एक मे मिलकर मानो विश्व को एकत्व का सदेशा दे रहे हो। कितने अनोखे दीख रहे थे धरती और आकाश के बीच देवदूत और देवसेना की तरह बरफ के उडते हुए टुकडे। धुनी रुई के सफेद-सफेद फाहे की तरह।

भुन्तुर के इस हिम-पात का दृश्य उसके मन को मलाणे की ओर ले जाता। दस-ग्यारह हजार फुट की ऊँचाई पर बसा वह सारा गॉव जैसे बरफ मे डूबा हुआ दीखता। और गॉव के घरो मे बन्द नर-नारी जैसे बन्दी का जीवन बिताते हुए। बुद्धी भी आज बन्दी बनी अपने पति के वियोग मे तडप रही होगी ! उत्तरोत्तर उसका विकसित होता गर्भ अपने पति की याद उसमे ताजी करता होगा। और यह याद आते ही आदित्य की आँखे भर आती। वह बडी उत्सुकता और बेचैनी से वसत और ग्रीष्म के आगमन की प्रतीक्षा करने लग जाता।

वसत भी आ गया। चोटियो के सिर पर हिम की बिछी गाढी चादर फट-फटकर अलग होती जा रही थी, और भीतर से चीड व देव-दारु के तरुओ की हरी-घनी अवलियाँ भी प्रकट होने लगी थी। शैशव की मुस्कान की पवित्रता को बिखेरती-सी जनता के जीवन मे नई जान आ गई। आश्विन-कार्तिक मे बीजे हुए गेहूँ के पौधे अब धरती के गर्भ से निकल-निकलकर उसकी गोद मे मुस्काने लगे। और इनके साथ ही कुल्लू के देवतो मे भी जान आ गई। क्योकि जगह-जगह अब मेले लगने शुरू हो चले। और वसत के आगमन के साथ ही आदित्य के मन मे यह आकाक्षा बडे जोर से सुगबुगाने लगी कि यदि वह माँ की एक झाँकी ले पाता। यदि बुद्धी को इस राह से चलते एक बार देख पाता। उसके शिशु को देख पाता पर अब भी काफी देर थी। मलाणे के पथ से बरफ के रोडे अब भी हटे न थे। पर ज्यो-ज्यो गर्मी बढती जा रही थी अपने कार्यरत निरलस जीवन मे भी इस आशा को वह बिसार न सका कि जडी-बूटी लेकर कभी-न-कभी वे इस रास्ते से गुजरेगे अवश्य। और इस आशा मे उस राह से गुजरते लोगो पर निगाह रखने की आकाक्षा भी वह दबा न पाता। पर दूर से ही उनके सिर पर मलाणे की अनोखी टोपी न देख निराश भी हो जाता।

स्वामी सोमानद की वृद्ध व अनुभवी आँखो से आदित्य की मनोदशा छिपी न रह पाती। उनके हृदय मे एक साथ वात्सल्य और सहानुभूति का उच्छ्वास उमड आता। पर फिर भी वे खुलकर कुछ कह न पाते। कुछ कहते-कहते ही जैसे रुक जाते।

वसन्त के बाद ग्रीष्म भी आया। आदित्य का मन अब अधिक उत्कठित हो चला। बुद्धी को देख पाने की उत्कंठा जैसे मन के रेशे-रेशे मे व्याप गई। वह प्रतिदिन शाम-सवेरे भुन्तुर बाजार का चक्कर लगा आता। पर किसी मलाणी की सूरत उसे दिखाई न देती। अब उसका अवचेतन मन भी बुद्धी की ओर अग्रसर हो चला।

उसके अवचेतन मन मे विद्यापीठ व विद्यापीठ के सचालन के भाव

ही अधिकतर चक्कर काटते, पर अब वहाँ स्नेह का वह विशेष सूत्र भी सजीव बन चला। एक दिन रात्रि के पिछले पहर उस मन मे बुद्धी और माँ दोनो ही मौजूद हो पडी। बुद्धी का चेहरा देखते ही आदित्यनाथ चौक पडा। व्याकुल होकर बोल पडा—"यह क्या ? ऐसी तेरी दशा क्यो ? क्यो बुद्धी तू बीमार थी क्या ? यह क्या हो गया तुझे ?"—यह कहते-कहते ही वह बुद्धी की ओर दौड भी पडा था। परन्तु बुद्धी यह कहते पीछे हट चली—"बेदरदा ! बेईमान ! अब तू पूछ रहा कि तेरी यह दशा कैसे ?" और तब उसी क्षण बुद्धी व आदित्य के बीच मे आ खडी हुई माँ। आदित्य ने झट झुककर माँ के पैर छुए, और माँ ने पुत्र को उठाकर छाती से चिपका उसके सिर और कपार चूम उसी प्रकार अपने स्नेह व आशीष की वर्षा करने लगी, जिस प्रकार उस दिन विदा की वेला मे कर चुकी थी।

आदित्य की आँखे सहसा खुल गई। पर आँखो मे स्वप्न-सम्मिलन के आँसू अब भी मौजूद थे। नीद का खुलना उसे कतई अच्छा न लगा, पर देखा कि भोर होने मे अब देर काफी नही है। लेकिन फिर भी उसने जबरन नीद लाने की कोशिश की, ताकि माँ और बुद्धी को कुछ देर और वह देख सके। कुछ देर और उनकी बाते सुन सके। पर खेद कि नीद वापस न आ सकी। वह सपना वापस न आ सका। फिर उठकर वह चला गया। शौचादि के लिये, प्रातर्भ्रमण के लिये। लेकिन रास्ते मे रह-रहकर उसके कानो मे बुद्धी का वह कटु उपालम्भ ध्वनित होने लगा—'बेदरदा ! बेईमान।' और साथ ही रूठकर उसके पीछे हट जाने का वह दृश्य भी स्मृति को रह-रहकर कुरेदने लगा। बुद्धी के निराश व उदास चेहरे पर अकित वियोग-व्यथा का निदारुण चित्र याद आते ही उसका हृदय व्याकुल हो पडा। आँखो मे रह-रहकर आँसू उभरने लगे। उसके हृदय के हर ततु से जैसे प्रार्थना के ये शब्द ध्वनित होने लगे—"यह स्वप्न मेरा झूठा हो। झूठा हो ! सहस्र बार झूठा हो।" किन्तु बार-बार सोने का

प्रयत्न कर उस स्वप्न को फिर वापस ले आने का कुछ देर पहले का अपना प्रयत्न याद आते ही सकुचित भी हो चला। लेकिन सकोच के विनष्ट होते देर भी न लगी। क्योकि आपत्-विपत् मे विभिन्न प्रिय जनो को देखने की आकाक्षा न अस्वाभाविक होती है, न अनुचित।

सो उसके मन मे अब यह आकाक्षा प्रबल होने लगी कि वह स्वय मलाणा जाकर उन्हे देख आये। उनकी एक झाँकी ले आए। गाँव की सीमा मे भले ही उसका जाना निषिद्ध हो, पर ग्राम के रास्ते पर जाना तो निषिद्ध नही? ग्राम की सीमा के पास पहुँचना तो प्रतिषिद्ध नही? गॉव की सीमा के बाहर देवदारु के तरुओ की छाया मे बैठ किसी राह-गुजरते से सदेशा भिजवाकर उन्हे बुलवा तो सकेगा? उनकी एक बार झाँकी तो ले सकेगा? उन्हे तोष-भरोसे व आश्वासन तो दे सकेगा?

इस प्रकार की जाने कितनी बाते सोचता वह काफी दूर आगे बढ आया। फिर एक समय पार्वती की धारा से सटे एक काले शिलाखड पर, एक विशाल वृक्ष की छाया मे बैठ गया। मलाणा के लिये अपने पुन प्रस्थान के औचित्य पर बार-बार विचारने लगा। कभी वहाँ मुडकर जाने के विचार से सकोच होता। कभी वह सकोच सम्मिलन की आकाक्षा के आवेग मे बह जाता। और बगैर स्वामी सोमानन्द को बताये और उनसे इजाजत लिये वहाँ जाना भी न तो सम्भव था, न उचित। फिर आदित्य की इस उतावली पर स्वामी जी क्या सोचेगे? वे क्या समझेगे? सोचेगे 'आदित्य कितना कामुक है! कितना बेहया है! कितने दुर्बल हृदय का व्यक्ति है! क्या कर सकेगा यह जीवन मे? कैसे विद्यापीठ का सचालन कर सकेगा?' फिर इस सकोच के बोझ के नीचे एकाएक वह आकाक्षा उसकी दब जाती, बिला जाती। लेकिन फिर जब माँ और बुद्धी के स्नेहिल व व्याकुल चेहरे मानस-पट पर उभर आते, एकाएक उसका चित्त उद्विग्न हो जाता। बेचैन हो जाता। सम्मिलन की आकाँक्षा पुनः प्रबल हो जाती। सकोच का वह सारा बोझ मानो उडकर हवा मे बिला जाता।

लेकिन अन्त मे उसने निश्चय कर लिया मलाणा-प्रस्थान करने का। स्वामी सोमानद जी से जब जीवन का वह कुछ भी नही छिपाता, फिर इस बात को ही छिपाकर वह अविश्वास व दुराव का अपराधी क्यो बने ? तादात्म्य और घनिष्ठता मे दरार डालने की बेवकूफी क्यो करे ? सोमानन्द की उदारता पर उसका विश्वास दृढ था। इजाजत मिल जाने की पूरी उमीद थी।

आज वह काफी दिन चढे विद्यापीठ मे वापस आया। किन्तु विद्यापीठ के आँगन मे कदम रखते ही वातावरण मे उसे परिवर्तन प्रतीत हुआ। सबके चेहरे पर कुछ कहने व सुनाने का भाव जैसे दबकर बिखरता हुआ-सा मालूम पडा। लेकिन फिर भी किसी ने कुछ कहा नही। मानो उनके मुँह मे किसी विशेष आदेश व अनुशासन का ताला लगा दिया गया हो।

पर अपने कमरे की ओर कदम बढाते ही अन्दर कुछ देख वह चौक-सा पडा। स्वामी सोमानन्द के समक्ष बैठी जिन दो मूर्तियो पर दृष्टि उसकी पडी, सहसा आँखो पर विश्वास न हो सका। क्या आज रात के पिछले पहर का वह सपना उसके कमरे मे ही तो पडा नही रह गया ?

पर क्षण-भर ही उसके मन की यह अवस्था रह सकी। "माँ !"—कहता हुआ झट वृद्धा के चरणो पर माथा रख बिल्कुल भूमि मे लेट गया। माँ ने उसे उठाकर झट छाती से चिपका लिया। आदित्य ने अनुभव किया कि माँ के गरम-गरम आँसुओ के कुछ बूँद उसके सिर पर लुढक पडे। उसे लगा मानो मातृ-हृदय के अखंड स्नेह और असख्य आशीषो की राशि उन आँसुओ के बूँदो से होकर उसके सिर पर लुढक पडी हो। आदित्य का हृदय कृतकृत्य हो गया। वह कृतार्थ हो गया।

अब माँ से हटकर उसके लज्जा भरे नेत्र बुद्धी की ओर पहुँचे। बुद्धी शरमाई हुई-सी दूसरी ओर मुँह कर के पल्थी मारे बैठी थी। अकस्मात् उसकी गोद से एक शिशु के रो पडने का शब्द ध्वनित हुआ। जैसे एकाएक आदित्य के हृदय पर अमृत का फुहारा पड गया। पर संकोच

ने भावो को दबा दिया। और बुढिया झट बुद्धी की गोद से उस शिशु को लेकर आदित्यनाथ के आगे करती खुशी से चमकते अपने पीले दातो को दिखाते हुए बोली—"बेटा ! यह तेरा बच्चा। ले इसे सम्हाल। और बुद्धी को भी सम्हाल ! देवता मान गया ! बुद्धी को तेरे पास आने का हुकुम दे दिया। बुद्धी बडी रोई। बडी कलपी। देवता को दया आ गई। देवता बडा दयालू ! बडा दयालू ! मेरे को मालूम हो चुका था कि तू यहाँ है। ले, सम्हाल ले इसे !"

इस सम्मिलन की स्वर्गिकता पर स्वामी सोमानन्द के नेत्र भी सजल हो उठे। इस क्षण उनकी स्मृति सुदूर अतीत मे बँध चुकी थी। इस क्षण, उन्हे वह क्षण याद आये बिना न रहा, जब पत्नी की गोद मे अपने सोते पुत्र को छोड महाप्रस्थान पथ पर अग्रसर वे हो चुके थे। इस क्षण उनका हृदय आदित्यनाथ मे और आदित्य के उस शिशु मे मानो उसी क्षण को याद कर रहा था।

झट आँखे पोछकर वे आदित्यनाथ से वात्सल्य भरे स्वर मे बोले—"बेटा, तुम से बताया तो न था, पर विश्वास मेरा दृढ था, हृदय कह रहा था कि बुद्धी बिटिया आयेगी जरूर। बिटिया को देखने की मेरी लालसा बडी प्रबल हो चली थी। कई बार सोचा भी कि किसी दिन दौड पडूँ मलाणे की ओर। जमल भगवान से निवेदन कर फिर बिटिया को बुला ले आऊँ आदित्य के पास। पर जमल भगवान ने जैसे हृदय का निवेदन यही से सुन लिया। आज मैं कितना, कितना खुश हूँ आदित्य !"—कहते-कहते उनके नेत्र पुन सजल हो उठे। स्वर मे खुशी का भारीपन आ गया।

◇ ◇ ◇

विद्यापीठ के वातावरण मे बुद्धी बिल्कुल रम चली। माँ फिर वापस चली गई मलाणे को। अब वे जडी-बूटी बेचने के बहाने सप्ताह-दो सप्ताह बाद वहाँ आ ही जाती। अपनी बिटिया और बेटे की प्रसन्नता की झाँकी लेकर प्रसन्न हो जाती। क्योकि अब बुद्धी का स्वास्थ्य भी वापस

आ चुका था, सौन्दर्य भी। आदित्यनाथ के चेहरे पर भी खुशी और सतोष की एक आभा दमका करती। बुद्धी के स्वभाव और व्यवहार से विद्या-पीठ का हर व्यक्ति प्रसन्न था, सतुष्ट था। बच्चो की बडी बहन बनकर ही वह उनसे पेश आती, अध्यापको से छोटी बहन बनकर, और स्वामी सोमानन्द से उनकी प्रिय पुत्री बनकर। और आदित्य के हर काम मे हाथ बटाने की आकाक्षा रखती हुई भी हर काम मे वह दक्ष अभी न बन सकी थी। लेकिन जितना कुछ भी वह मदद करती, उससे आदित्यनाथ को गति मिलती ही। और वह शिशु तो जैसे सारे विद्यापीठ का प्यारा खिलौना बन चला।

विद्यापीठ के दिनोदिन बढते काम को देख स्वामी सोमानन्द को विश्वास हो चला कि वे कुल्लू-समाज को कुछ दे के रहेगे। पर यह दान निश्चित रूप से उस दान से भिन्न होगा जिसे स्वामी सत्यकेतु इस समाज को देना चाह रहे थे, देने के प्रयत्न मे थे। किन्तु प० हीराचन्द्र शास्त्री से जब उन्हे आज यह मालूम हुआ कि स्वामी सत्यकेतु जी महाराज पुन कुल्लू पधार चुके है, पुन कुल्लू-समाज को कुछ देने के प्रयत्न मे सन्नद्ध हो चुके है, तो उनकी चिन्ता की सीमा न रही। और वे क्या कुछ देन आये थे, और क्या कुछ दिये जा रहे थे, इसकी सूचना भी सक्षेप मे प० हीराचन्द्र जी देते गये थे। क्योकि वे कुल्लू-काग्रेस-कमेटी के जेनरल सेक्रेटरी थे। और स्वामी सत्यकेतु जी महाराज जनता मे जिस प्रसाद का वितरण किये जा रहे थे, वह काग्रेस की नीति के विरुद्ध होने के साथ इन्सानी हृदय के विरुद्ध भी था। प० हीराचन्द्र जी कुछ-कुछ नारदमुनि के स्वभाव के अवश्य थे, पारिवारिक परिस्थितियो से मजबूर हो ऐसे काम भी कर बैठते थे जो नैतिकता की कसौटी पर खरे न थे। पर उनके दिल मे क्रूरता या कमीनापन न था। देश के साम्प्रदादिक वातावरण को देखते हुए स्वामी सत्यकेतु की हरकतो पर उनका हृदय भी कम सशक न था। क्योकि कई प्रमुख काग्रेसी भी साम्प्रदायिकता के तूफान मे बहे प्रतीत हो रहे थे।

हिन्दू-मुस्लिम दगे की आग एक बार कलकत्ते मे बडे जोर से भभक-कर अब देश के विभिन्न प्रान्तो को भी अपनी लपटो मे लपेटे जा रही थी। क्योकि उस आग मे पानी डालने वाली शक्तियाँ उन शक्तियो के समक्ष उस समय काफी कमजोर पड चुकी थी जो बडे उत्साह और उदारता से उस आग मे घी के घडे उडेले जा रही थी। स्वामी सत्यकेतु जैसे लोगो की तो बन ही आई थी। हिन्दुओ व मुसलमानो के सत्यकेतुओ मे कोई अन्तर न रह गया था। ऐसे सैकडो सत्यकेतु आज जनता के नायक व नेता बने स्वच्छन्द विचर और चर रहे थे। भाषा व शब्दो की भिन्नता के बावजूद उनका राग एक था, तात्पर्य एक था, धर्म-मजहब एक था, हृदय एक था, मस्तिष्क एक था।

पहली बार कुल्लू मे परास्त होकर स्वामी सत्यकेतु पजाब के अन्य नगरो मे जा चुके थे। अपनी बिरादरी के अन्य लोगो की तरह वे भी पजाब की जनता मे दगे की आग सुलगाए जा रहे थे, घी डाले जा रहे थे। पाकिस्तान बनने के महीनो पहले से ही यह सब हो रहा था, और पाकिस्तान की पैदायश से पहले ही जब वह आग खूब भभक चुकी तो उसकी लपटो की लपेट मे स्वय आ जाने के भय से बडी वीरता से भागकर वह पुन कुल्लू आ चुके थे। पहली बार की पराजय की याद अब भी ताजी थी। उस पराजय के प्रतिशोध का भला इससे अनुकूल अवसर और हो क्या सकता था? और उनकी जान को कोई खतरा भी न था। क्योकि कुल्लू उपत्यका मे हिन्दुओ के मुकाबले मुसलमानो की सख्या दाल मे नमक के बराबर भी न थी। और उस समय कुल्लू की जनता साम्प्रदायिकता के नशे मे आकर स्वामी सत्यकेतु के पूर्व अपराधो व कमजोरियो को ठीक उसी प्रकार भुलाती जा रही थी, जिस प्रकार आज भारत की काग्रेसी सरकार, गद्दी नशीन बने रहने की आकाक्षा मे, आकाक्षा के नशे मे उन सभी बडे अफसरों के अपराध माफ कर चुकी है, भुला चुकी है जिनकी सेवा और सहयोग के बल पर ही भारत मे

अंग्रेजी राज कायम था। भारत माता के गले मे गुलामी की जंजीरे मजबूत बनी हुई थी।

आज भुन्तुर का मेला था। कुल्लू के विभिन्न मेलों मे स्वामी सत्यकेतु के दल का प्रचार खूब जारी था। आजकल एक राजनीतिक सस्था के स्वय-सेवको का पूरा सहयोग होने के कारण भी उनका नेतृत्व खूब-खूब चमक उठा था। भुन्तुर के मेले मे भी उनका कैम्प लगा हुआ था। और स्वामी सत्यकेतु जी महाराज मच पर खडे हो बडे जोर-शोर से हिन्दू सस्कृति और सभ्यता की चिनगारियाँ अपने मुँह से बरसाए जा रहे थे। पर आश्चर्य कि भारत की अंग्रेजी सरकार की पुलिस भी उन भाषणो को बडी रुचि से सुना करती, हस्तक्षेप करने की जरूरत जरा भी महसूस न करती। बल्कि इसके विपरीत हिन्दू व मुस्लिम कास्टेबलो मे अक्सर इस प्रश्न पर आपस मे ही मुठभेड भी हो जाती।

खैर, बिल्कुल पडोस मे होने के कारण आदित्यनाथ भी अपने दल के साथ वहा पहुँचा था। उद्देश्य केवल मेला देख लेना था। प्रचार या विज्ञापन का उद्देश्य न था। अपने कार्यो से वह जनता मे स्वयं आदृत बन चुका था। किन्तु आज स्वामी सत्यकेतु को उस प्रकार धुआँधार भाषण देते देख उसका धैर्य कायम न रह सका। बल्कि मारे क्रोध के उसका चेहरा लाल हो उठा। जनता की भरी सभा मे ही खडे होकर वह बोल उठा—

"कुल्लू के इन्सानो! मै आपकी · "—इतना कहते ही जैसे सभा मे खलबली मच गई। आदित्यनाथ के शब्द मानो बम के धडाके की तरह एकाएक बरस पडे। लेकिन झट जनता उसे सुनने को सावधान भी हो गई। क्योकि आदित्यनाथ अब ढाई-तीन साल पहले का, स्वामी सत्यकेतु के पीछे घूमने वाला ऐरा-गैरा ब्रह्मचारी न था। आज जनता उसे जान चुकी थी, मान चुकी थी, अत वह उसे भी उतनी ही आकाक्षा और आदर से सुनने लगी, जितने आदर से वह स्वामी सत्यकेतु को सुन रही थी। और स्वामी सत्यकेतु भी कम घुटे-घटाल न थे, अतः

प्रकट रूप से विरोध करने का वे साहस न कर सके, यद्यपि मन-ही-मन बेचैन अवश्य हो उठे।

"कुल्लू के इन्सानो!"—कोलाहल शात होते ही आदित्यनाथ ने फिर कहना आरम्भ किया—"मै आपकी इन्सानियत पर पूरा भरोसा रखते हुए, आपके इन्सानी दिल से अपील करना चाहता हूँ, कि यह कहाँ का इन्साफ है कि माधो के अपराध की सजा माधो को न देकर किसी बेगुनाह साधो को दी जाय? और यह कहाँ की इन्सानियत है कि बेगुनाहो का बचाव न कर उन्हे हैवानो की मौत मरवाने के लिये इन्सानो मे हैवानियत का जहर फैलाया जाय? आप लोग आज ठडे दिल से मेरी इस बात पर गौर करे, विचार करे कि यदि स्वामी सत्यकेतु जी महाराज के मन मे जरा भी ईमान होता, अपने हिन्दू भाई-बहनो के लिये दिल मे जरा भी दर्द होता तो वे आज कुल्लू मे कतई न होते, जहाँ हिन्दुओ की जान-माल या इज्जत-आबरू पर मुसलमान गुण्डो से कोई भी खतरा नही है, बल्कि आज वे पजाब के उन शहरो मे ही मौजूद होते जहाँ हिन्दू अबलाओ की लाज और जान आज गुण्डो की हैवानी हवशो की आग मे खाक बनती जा रही है। आप जरा पूछिये स्वामी सत्यकेतु जी महाराज से कि वहाँ से दुम दबाकर यहाँ क्यो भाग आये? उचित तो यह था कि वहाँ रहकर अपनी हिन्दू माँ-बहनो की लाज बचाने का मिलकर प्रयत्न करते अथवा उसी जद्दोजहद मे उन माँ-बहनो के साथ वही कुर्बान हो जाते! अपना काला मुँह लिये आज कुल्लू मे न आते?"

फिर एकाएक अत्यन्त क्रोध मे आकर स्वय स्वामी सत्यकेतु को सबोधित करते वह बोला—"खुद अपनी जान बचाकर भाग आने वाले कायर! अब आये हो यहाँ आग लगाने। यहाँ के बेगुनाहो से बदला चुकाने! छीः! तुम यहाँ के मुसलमानो को मरवाने नही आये, बल्कि सही माने मे, तुम पाकिस्तानी क्षेत्र के हिन्दुओ को मरवाने आये हो यहाँ! छीः! अफसोस! यदि जनता इस सचाई को समझ पाती!"

आदित्यनाथ की इस ललकार पर स्वामी सत्यकेतु का चेहरा पहले

काला पड गया, किन्तु फिर सम्हलते भी देर न लगी। क्योकि उनके समर्थको का दल वहाँ मौजूद था, अत भय की कोई बात न थी। वे उठे किन्तु आश्चर्य तो यह कि आदित्यनाथ को खुले आम इतना-कुछ कह जाने का मौका उन्होने दे कैसे दिया? पर आश्चर्य की कोई बात नही। क्योकि अकस्मात् के आक्रमण का आघात बडा प्रबल होता है। आदित्यनाथ के आक्रमण मे सचाई की प्रबल शक्ति मौजूद थी। और साथ ही अपने व्यक्तित्व की शक्ति भी। सो, सबने मिलकर उसे इतना-कुछ कह लेने दिया। किन्तु स्वामी सत्यकेतु की अक्ल भी कमजोर न थी। आखिर इस अक्ल की रोटी खाते-खाते ही तो वे बूढे हो चुके थे? अब मौत के मुँह मे एक पैर भी रख चुके थे?

उन्होने भी सम्हलकर आक्रमण कर ही दिया।

"कुल्लू के लोगो!"—उठ खडे होकर अपनी लम्बी दाढी पर हाथ फेरते जोरदार शब्दो मे वे बोले—"मेरे प्यारे हिन्दू भाइयो! कितनी बेशरमी से यह पाखडी और चोर यह सब बोल गया, परन्तु आप लोग चुपचाप सुनते ही रह गये? मै तो भूल ही गया था आप लोगो से बताना, कि यह तो पक्का चोर है चोर! पिछली बार जब मै कुल्लू से नीचे गया था, तब कुछ लोगो ने बताया था इन महाशय के बारे मे! श्रीमान ब्रह्मचारी आदित्यनाथ जी महाराज एक बार चोरी के अपराध मे सजा भी पा चुके है, सज्जनो! और उसके बाद ब्रह्मचारी का वेश बनाकर, लम्बे-लम्बे बाल बढाकर आ पहुँचे कुल्लू के भोले-भालो को ठगने और बहकाने! देख तो लिया ही आप लोगो ने। सबूत की जरूरत क्या? हाथ के कगन को आरसी की जरूरत क्या? देख ही तो लिया कि कहाँ की एक छोकडी फँस गई फन्दे मे। ब्रह्मचारीपन खत्म हो गया। लम्बे बाल कट गये, दाढी-मूँछे साफ हो गईं। और फिर बन गये घरबारी। विद्यापीठ की दुकान भी खडी हो गई। लग पडे दुनिया को ठगने और बहकाने। यह तो ठीक वैसी ही बात है भाइयो, कि उलटे चोर कोतवाल को डाटे। चोरी भी और सीनाजोरी भी।" कहकर वे चुप हो गये।

लेकिन आदित्य का चेहरा मारे क्रोध के काँप चला। वह स्वामी सत्यकेतु पर शेर की तरह टूटना ही चाह रहा था कि झट से स्वामी सोमानन्द जी आगे आ गये। वे कुछ देर बाद आये थे। पर आदित्य और सत्यकेतु की 'तू-तू मैं-मैं' सुन चुके थे।

आदित्य के हाथ पकडकर रोकते हुए बोले—"बसकर, बेटा। इस क्षणिक दुर्बलता मे शैतान का सिर ऊँचा न होने दे। जरा मुझे तो खबर लेने दे।"—कहकर वे झट आगे बढ गये।

जनता को सम्बोधित करते अपने स्वभावसिद्ध मजाक के स्वर मे बोले—"तो कुल्लू के भले लोगो ! जरा मुझ बूढे की भी सुन लो। जरा पूछो तो आप लोग मेहरबानी कर स्वामी सत्यकेतु जी महाराज से कि क्या आपने स्वय ये लम्बे बाल और लम्बी दाढी-मूँछे बढा रखी है किसी छोकडी को फँसाने के ख्याल से ही क्या ? तो मै ही आप लोगो की ओर से अरज कर देता हूँ स्वामी महाराज की सेवा मे कि छोकडियो के फँसाने की उम्र तो कब की ढल चुकी आपकी। लेकिन यदि कोई बुढिया ही आपके फँदे मे फस जाय तो कृपया मुझे न भूल जाना आप। पुरोहिताई के लिये मुझसे भला व्यक्ति शायद ही कोई मिल सके आपको। कैसा भला रहे भाइयो अगर बूढे के ब्याह मे बूढा पुरोहित" सुनकर सभी जोर से हँस पडे। किन्तु स्वामी सोमानन्द जी उस सामूहिक हँसी का स्वर शान्त होने से पहले ही बडे जोर से हाथ उठाकर बोल उठे—"बोलो भाइयो हिन्दू धर्म व हिन्दू सस्कृति की जै। जो बोले सो अभय !! हर-हर नारायण !!!"

पुन एक बार सबकी सम्मिलित हँसी से मेले का कोना-कोना गूँज उठा। और स्वामी सोमानन्द जी स्वामी सत्यकेतु को एक विशेष अदब के साथ नमस्कार करते हुए पुनः बोले—"ढाई-तीन साल पहले तो आप कुल्लू वालो को अपना पूरा परिचय दे ही गये है स्वामी जी पर अफसोस कि ये लोग बहुत जल्द आपके पुराने रूप को भूल गये। पर ब्रह्मचारी आदित्यनाथ जी को जनता के सामने अपना परिचय और परीक्षा देने

की आवश्यकता नही रही अब। अब जनता उन्हे पूरी तरह जान भी चुकी है, मान भी चुकी है।' अच्छा नमस्कार।"—कहकर वे आदित्य का हाथ पकडकर चलने को तैयार हो गये।

लोगो ने फिर ताली पीटी। जनता अब आदित्यनाथ के पक्ष मे थी। स्वामी सत्यकेतु के स्वयसेवक भी कुछ करने का साहस न कर सके। स्वामी सत्यकेतु का मुँह उस समय बिल्कुल चोगा बन गया।'' उनके समर्थक मुँह छिपाकर दूर हो गये। स्वामी सोमानन्द जी अपने दल के साथ अपने विद्यापीठ वापस आ गये।

लेकिन उस दिन सारी रात आदित्यनाथ को नीद न आई। स्वामी सत्यकेतु की उस समय की मुद्रा और व्यवहार याद कर उसके हृदय मे रह-रहकर क्रोध की आग धधक जाती। यदि सोमानन्द जी ने उसका हाथ न पकडा होता, जाने क्या हो गया होता आज। वह रह-रहकर स्वामी सोमानन्द जी पर मन ही मन नाराज हो रहा था कि क्यो उन्होने उसे रोक दिया ? क्या बुरा होता आखिर ? यही तो कि सत्यकेतु की हत्या के अपराध मे उसकी अपनी भी हत्या हो जाती, पर असख्य बेगुनाहो की हत्या का प्रयत्न और षड्यन्त्र तो मिट जाता ? उस शैतान की हत्या से अनेक इन्सानो की हत्या तो रुक जाती ? कितना बडा अपराध कर दिया आज स्वामी सोमानन्द जी ने, यह सोचते ही वह पुन:-पुन उन पर क्रोध से अधीर हो जाता।

वह बार-बार नाराज होता रहा। पछतावे के मारे मन मसोसता रहा। फिर वह बिछौने से उठकर कमरे मे चहलकदमी करने लगा। सोचने लगा—"ऐ ! आखिर यो ही तो, इस प्रकार ही तो, शैतान इन्सान को अप्रतिभ करता है ? पराजित करता है ? उसे जनता की नजरो मे गिरा देता है ? गनीमत थी कि स्वामी सोमानद जी ठीक मौके से पहुँच गये। गनीमत थी कि विद्यापीठ का सारा परिवार वहाँ मौजूद था। और गनीमत थी कि मैने जनता मे कभी किसी के साथ धोखा या दगा नही किया। जनता मुझे जान और पहचान चुकी है। अन्यथा क्या

सचमुच वह शैतान मुझे ही शैतान बनाकर खुद जनता की नजरो मे आज उठ न गया होता ! महान् न बन चुका होता !"

यह सोचते ही स्वामी सोमानद के प्रति उसका सारा क्रोध और शोक क्षणमात्र मे विनष्ट हो चला। उनके प्रति श्रद्धा और कृतज्ञता से उसका हृदय सहसा गद्गद् हो उठा। पितृत्व और वात्सल्य से भरा उनका चेहरा मन की आँखो मे नाच गया। और सहसा फिर मलाणे की उस माँ का रूप भी इस क्षण मानस-मच पर उपस्थित हो गया। इन सब मे कितना स्नेह ! कितना वात्सल्य ! कितनी मानवता !

अब वह कृतज्ञता व श्रद्धा के आवेश मे अवश हो बिछौने पर फिर बैठ गया। उसका हृदय गद्गद् स्वर मे बोल उठा—"यदि समाज से इन इन्सानो का अस्तित्व नष्ट हो जाय, फिर ससार मे रह क्या जाय जीने के लिये ? फिर तो शैतानो से भरे समाज मे सिवा शैतानो के और किसी के लिये चारा न रह जाय। और इसलिये ही तो ससार के शैतान शायद हिन्दू-मुस्लिम झगडे जैसे अनेक झगडे पैदा कर इन्सानो के अस्तित्व को संसार से मिटा देना चाह रहे है। मनुष्यता के समस्त ऊँचे आदर्शों को विनष्ट कर देना चाह रहे है। वे चाह रहे है कि यदि ससार में कोई रहे तो उन जैसा बनकर ही रहे। अथवा बिल्कुल मूर्ख बनकर रहे।

हृदय उसका व्यथा से विमूढ हो चला। हिन्दू-मुस्लिम दगे की समस्या पर सोचते-सोचते ही उसका हृदय एक समय बोल पडा—"जिस प्रकार मलाणे की उस वृद्धा ने एक अपरिचित पीडित परदेसी पर अपना सारा मातृत्व उँडेलकर उसे स्नेह के सबल सूत्र मे बाँध लिया, और जिस प्रकार स्वामी सोमानद अपने उज्ज्वल वात्सल्य के स्निग्ध डोर मे उसके हृदय को बाँध चुके है ; और जिस प्रकार विद्यापीठ का सारा परिवार, राग-द्वेष-विहीन स्नेह की कडी मे बँधा हुआ स्वल्प काल मे ही प्रगति की अनेक पौडियो को पार कर गया ; क्या उज्ज्वल मानवता और स्नेह का यही आदर्श हमारे देश के समस्त हिन्दू-मुसलमानो को एक नही बना

सकता ? तबूरे के तार अलग-अलग रहकर भी वादक की अगुलियो के सम्पर्क से एक सम्मिलित रागिनी पैदा कर जिस प्रकार अपने चारो ओर एक मोहक माधुर्य की सृष्टि कर देते है, उसी प्रकार क्या हिंद के सारे निवासी पृथक्-पृथक् रहते भी हृदय की एक सम्मिलित रागिनी द्वारा सारे विश्व मे माधुर्य को बिखेर नही सकते ? विदेश की मिट्टी पर 'आजाद हिद फौज' के स्वल्पकालीन जीवन मे 'जयहिंद' के नारे के रूप मे, जिस प्रकार यह सामूहिक रागिनी आकाश मे गूँज उठी थी , अंग्रेज साम्राज्यवादियो के दिल दहला चुकी थी , क्या वही नज़ारा, वही दृश्य पुन: इस भारत भूमि पर प्रकट न होगा ? किसी नेता मे क्या यह सामर्थ्य नही कि वह सबके दिलो मे पैठकर प्रेम और सम्मिलन की सामूहिक ध्वनि से हिन्द के कोने-कोने को गुँजा दे ?

उसका हृदय कुछ देर इसी प्रकार वेदनामय भावनाओ मे बहता रहा। फिर एकाएक बोल पड़ा—"मन मे साम्प्रदायिकता, क्षुद्रता को छिपाये ऊपर से एकत्व का नारा लगाकर कैसे कोई सबके दिलो के तार छेड सकने का सामर्थ्य प्राप्त कर सकेगा ? ये बने हुए नेता सब छली हैं, कपटी है, ईमान के गद्दार है, और उसी का परिणाम है यह हिन्दू-मुसलमानो का विनाशकारी वैमनस्य ।"

वह पुन: अपने-आप मे खोया, कुछ देर नीरव-निस्तब्ध बना रहा। फिर क्रमश उसके मानस-पट पर हिन्दू-मुसलमानो के उन सभी नेताओ व दलो के चित्र उभरते व विलीन होते रहे जिनकी नीयत, नीति और प्रयत्न से ही आज राष्ट्र और मानवता के समक्ष ऐसी दु खद परिस्थिति पैदा हो सकी, पैदा होकर सवर्द्धित व परिपुष्ट होती रही। उसका मन मारे घृणा और वितृष्णा के विकुंचित हो उठा। मारे क्रोध के हृदय उसका बोल उठा—"एक दिन जब सारा देश स्वस्थ बनेगा ; तुम लोगों द्वारा पैदा की हुई परिस्थितियो के नशे मे जनता की अधी बनी आँखे जब पुन स्वस्थ बनकर तुम शैतानो के सही रूप को देख व परख लेगी, उन आखो मे जब तुम शैतानो के कपट-नाट्य का पर्दा-फाश हो जाएगा,

तो देश की जनता और विश्व की मानवता तुम्हे क्षमा नही करेगी, पापियो !"

आदित्यनाथ के इस व्याकुल अभिशाप मे वही स्वर था, वही बेकली थी, वही क्रोध और विक्षोभ था जो किसी दिन आदिकवि की वाणी मे उतरकर फिर करुणा का रूप ले चुका था। आदित्यनाथ का हृदय भी करुणा से आलोडित हो अब वेदना की वीथियो से गुजरता हुआ एक समय श्रात होकर निद्रा की विश्राति मे विलीन हो गया।

◇ ◇ ◇

पाकिस्तान बन चुका। और भारत आजाद हो गया ; और स्वय ही दोनो ओर की वे ताकते भी कुछ दिनो के लिये आज़ाद बन गई जो इतिहास के पन्नो को हमेशा बेगुनाहो के खून के छीटो से रगती आई है। आज दो दिन से कुल्लू-उपत्यका का इतिहास भी खून की पिचकारियो से रगा जाने लगा। लूट, बलात्कार और हत्याओ की आकस्मिक बाढ मे मानवता का सारा ज्ञान और विवेक मानो बह चला। वेदो का वृहत् विवेक, उपनिषदो का ज्ञान, गौरव और ऋषियो का सारा उच्च आदर्श आज ऋषियो की सतानो के पैरो तले ही कुचले जाकर मानो दुनिया के सामने उद्घोष करने लगे—"सारा झूठ ! सारा पाखड ! सारा छल-छद्म !"

विद्यापीठ का वातावरण भी काफी गम्भीर हो चला था। लगभग दो दर्जन मुस्लिम नर-नारी शरणार्थी बनकर वहाँ आ चुके थे। कुछ और आते जा रहे थे। क्योकि स्वामी सोमानद और आदित्यनाथ की इन्सानियत पर, ईमानदारी पर उन्हे कम विश्वास न था। और यदि कुछ आशका हो भी तो दूसरा उपाय क्या था ? उनके लिए तो डूबते को तिनके का सहारे की तरह अभी विद्यापीठ बना हुआ था। कुछ नवयुवक उनकी रक्षा पर तैनात थे। और विशेषकर निगरानी की सारी जिम्मेदारी बुद्धी को सौपी गई थी। बुद्धी को यद्यपि यह सब अनोखा

दीख रहा था, पर निरपराधो के प्राण खतरे मे देख उसकी अपनी इन्सानियत प्रबुद्ध हो चली थी।

कुछ नवयुवक ऊँचे आदर्श से प्रेरित होकर स्वामी सोमानद और आदित्यनाथ का साथ दे रहे थे। बिरछूराम नामक एक शिक्षित नौजवान अभी कल रात के एक बडे दर्दनाक दृश्य का बयान किये जा रहा था।

"स्वामी जी !"—वह बोल रहा था—"आप तो जानते ही होगे अखाडे बाजार के मियाँ बरकत अली को ! कैसा भला आदमी था बेचारा ! अपने विद्यापीठ की भी तो चदे से काफी मदद की थी उसने। और सुलतानपुर की कई हिन्दू अबलाओ को तो बेटी मानकर परवरिश भी कर रहा था। और मुस्लिम लीग का कट्टर विरोधी भी था। पर शैतानो ने उस सारे परिवार का सफाया कर दिया रात। और अफसोस तो यह कि शैतान यह सब किये जा रहे है 'हिन्दू धर्म और हिन्दू सस्कृति की जै !' के नारे लगा-लगाकर।"

अब वह एकाएक उत्तेजित होकर बोल उठा—"लेकिन उन शैतानो ने अपने विद्यापीठ के अहाते मे अगर पैर भी रखा तो मैं गला मरोड़ दूँगा, गला ! और खुद मरूँगा तो मरूँगा, पर शैतानों को माफ नही करूँगा स्वामी जी !"

"शात ! शात !"—स्वामी जी ने दाये हाथ से उसे शात रहने का आदेश दिया—"इस तरह उतावली मे नही बहते बेटे ! हमे सावधान और तैयार अवश्य रहना चाहिए पर उतावली न दिखानी चाहिए। अच्छा तो शैतानो ने उस सारे परिवार का सफ़ाया कर दिया ? उफ् !"

"हाँ गुरुजी ! और सो भी बडी बेदर्दी से। हमारे गाँव का एक आदमी आँखो देखा हाल बता रहा था। पहले तो बदमाशो ने अखाडे बाजार के मुसलमानो की सारी दुकाने जला डाली। बहुतो को धधकती आग मे जिंदा ही जला डाला। और कुछ लोग जान बचाकर ढालपुर के थाने मे पनाह लेने आ गये। पर अफसोस ! पुलिस खामोश देखती रही। और गुण्डो ने एक-एक कर सबका सफाया कर दिया। उफ् !"

क्षरण भर चुप रहकर वह फिर बोला—"और वे हत्यारे थे भाडे के टट्टू गुरु जी। बिल्कुल भाडे के टट्टू। गाँवो के कुछ बदमाश नौजवानो को शराब पिलाकर, हाथ मे बदूके देकर जाने कौन वहाँ ले आया था, पता नही! सुना कि उन्हे रुपये भी दिये गये थे। खैर, मगर बरकत अली आखिर तक इन्सान ही बना रहा गुरु जी! इन्सान ही! जब उसने देख लिया कि मौत से बचने का कोई चारा अब न रह गया, तो परिवार के एक-एक व्यक्ति को शहादत का कलमा पढा-पढाकर हत्यारो के सामने वह स्वय पेश करता गया। और सबके अत मे स्वय शहादत का कलमा पढकर, हत्यारो के सामने आँखे मूँद छाती तानकर खडा हो गया। आँखे शायद इसलिये मूँदी ताकि अत समय शैतानो के उन निर्दय चेहरो को वह देख न सके।"

स्वामी सोमानद की आँखो मे अश्रु छलक आए।

"गुरु जी! गुरु जी!"—बिरछूराम स्वरो मे बेचैनी और विक्षोभ भरकर बोला—"जब से यह सुना, तभी से मेरा तो विश्वास हो गया कि ईश्वर-परमेश्वर आदि की बात बिल्कुल झूठ है, बिल्कुल पाखड! बिल्कुल दगा! बिल्कुल फरेब! अगर ईश्वर है, अगर वह सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक है; अगर वह सबको प्रेरित करता है, तो क्या यही उसकी ईश्वरता है? क्या यही उसकी सर्वशक्तिमत्ता और सर्वव्यापकता है? और यही उसकी प्रेरणा है? नही गुरु जी, नही! यह ईश्वर फिश्वर कुछ नही। कुछ नही। सब धोखा है। फरेब है। छल है। कपट है!"

क्रोध और व्यथा के आवेश मे बिरछूराम जैसे पागल हो चला था। क्रोध और क्षोभ मे आकर मनुष्य का मन ऐसे सत्यो का उद्घाटन कर देता है, जो शात मन के बूते की बात नही होती। सचमुच, निरपराधो का वह निर्दय सहार क्या बिरछूराम की आकस्मिक नास्तिकता को सही साबित नही कर रहा था?

"शात रहो बिरछू बेटा!"—मगर स्वामी जी उसके मन को शात

ारने के विचार से बोले—"आवेश मे आकर बिल्कुल नास्तिक मत ।नो बेटा। 'ईश्वर है', और 'ईश्वर नही है' हजारो वर्षो से यह विवाद ग्ला आ रहा है, पर लाभ कुछ हो न सका। ईश्वर को मानकर भी इन्सान इन्सान न बन सका, और ईश्वर को इनकार करके भी। बौद्ध नोग नास्तिकता का व्यापक प्रचार करके भी इन्सान को जिस प्रकार इन्सान न बना सके, उसी प्रकार गौतमादिक ऋषियो के तर्क-जाल और वाग्-जाल से ईश्वर को सिद्ध करके भी जहाँ के तहाँ ही रहे। परन्तु मैं तो पक्का आस्तिक हूँ बेटा! लेकिन फिर भी तुमने आवेश मे आकर अभी जो कुछ कहा है उससे असहमत कैसे हो सकूँगा भला? असहमत होकर अपने दिल-दिमाग को नास्तिकता के पक से कैसे निबोड़ूँगा भला?"

स्वामी जी की बातो मे स्पष्ट असगति देख वहाँ सबके चेहरो पर आश्चर्य की रेखाए उभर आई।

"किन्तु"—किन्तु स्वामी जी उनके चेहरो पर उभरे आश्चर्य को भाँपते हुए स्पष्ट करते फिर बोले—"यह समझना बिल्कुल गलत होगा कि मै आस्तिको के प्रचलित विश्वास से रचमात्र भी सहमत हूँ, अथवा उस विश्वास के उदर से पैदा हुए ईश्वर को मैं तनिक भी मानता हूँ। नही बेटा, नही। मै मनुष्य और मनुष्यता से परे किसी भी ईश्वर को नही मानता। सामर्थ्यवान् मे मनुष्य की असीम सहृदयता और असीम सामर्थ्य मे अखड विश्वास रखने के कारण ही पक्का आस्तिक हूँ। प्राणियो के इस श्रेष्ठतम विकास 'मनुष्य' को अनत सामर्थ्य का स्रोत मानकर ही मै मनुष्य और मनुष्यता का पूजक हूँ। जिस दिन ससार से यह आस्तिकता बिल्कुल ही मिट जाएगी, उस दिन फिर मानव-समाज के पास जीवित रहने के लिए रह ही क्या जायगा? जहाँ यह मनुष्यता नहीं, वहाँ मनुष्य भी नही, और जहाँ मनुष्य नही वहाँ ईश्वर भी नही। ईश्वर, धर्म और सस्कृति के नाम पर जिस अत्याचार और उपद्रव को तुम लोग देख रहे हो, अभी उसमे न मनुष्यता है, न मनुष्य है, न ईश्वर है। और इसीलिये धर्म या सस्कृति भी नही है, आस्तिकता भी नही है। इस

अन्याय-अत्याचार को प्रेरित और उत्तेजित करने अथवा उसमे सहयोग देने से बढकर मानव-जीवन की नास्तिकता और कुछ नही बेटे ! हिन्दू-धर्म और सस्कृति का, और इस्लाम का नारा लगा-लगाकर ऐसे अधम कार्य करने वाले लोग न तो हिन्दू है, न मुसलमान । वे सब नास्तिक है, पशु है, शैतान है, गुण्डे है ।" कहते-कहते ही उनका गला भर आया, नेत्र सजल हो उठे ।

इतने मे एक नवयुवक बेतहाशा साइकिल दौडाता, विद्यापीठ के आँगन मे एकाएक खडे हो, हाँपते हुए बोला—"सावधान ! आ रहे है गुण्डे । वे ढालपुर से रवाना भी हो चुके है । उन्हे मालूम हो चुका है कि विद्यापीठ मे दर्जनो मुसलमान छिपे बैठे है । केवल मुसलमानो को कत्ल करने के लिए ही नही बल्कि सारे विद्यापीठ को जलाकर खाक कर देने का सकल्प लिये भी वे बढे आ रहे है । स्वामी सत्यकेतु स्वय तो नही आ रहा, क्योकि दूर-दूर से तमाशा देखने मे ही वह मजे ले रहा है, परन्तु उसका शिष्य वीरेन्द्र वर्मा अवश्य आ रहा है, उस गुण्डा-गिरोह का नेता बना हुआ है ।"

इतना कहकर उसने साइकिल एक तरफ पटक दी, और बुढ्ढी से पीने के लिये एक गिलास पानी माँगा ।

"अच्छा !"—आदित्यनाथ ने अत्यन्त आश्चर्य भरे स्वर मे पूछा—"तो यह वर्मा कहाँ से आ गया फिर ? और दोनो गुरु-चेलो का सम्मिलन कैसे हो गया फिर ?"

नवयुवक ने एक साँस मे ही गिलास का सारा पानी पीकर कुछ स्वस्थ स्वर में जवाब दिया—"सम्मिलन ? सम्मिलन पूछते हो आदित्य भाई ! शैतानो मे सम्मिलन होते देर क्या भला ? वर्मा की कारगुजारियो की जो सूचना मिली है मुझे, उसे सुनाऊँ तो दंग रह जाओगे आप लोग । परन्तु मेरे विचार मे सबसे पहले विद्यापीठ के सभी बच्चो को यहा से अलग कर देना ठीक रहेगा । क्यो ? क्या ख्याल है, आप लोगो का ?"

"हाँ ! ठीक कहते हो चन्द्रकान्त ।"—स्वामी सोमानन्द जी एकाएक

उससे सहमत होकर बोले—"और उनके साथ ही मुसलमान बच्चो को भी किसी सुरक्षित स्थान मे पहुँचा दिया जाय तो ठीक। और स्त्रियो को भी। क्यो, क्या विचार है तुम लोगो का ?"

"विचार तो ठीक है।" चन्द्रकान्त ने समर्थन किया।

पर लोगो ने बडे आश्चर्य से उधर देखा कि बुद्धी दो-तीन मुस्लिम तरुणियो को साथ लेकर पार्वती के किनारे की ओर चल पडी।

"जरा सुन तो बिटिया! कहाँ चल पडी ?"—स्वामी सोमानन्द ने पुकारा उसे।

और बुद्धी झट मुडकर सामने उनके आ खडी हुई। बोली—"पत्थर इकट्ठे करने जा रही हूँ मै, बापू!"

"क्यो ?"

"गुण्डे आ रहे है न ?"

"फिर ?"

"उन्हे पत्थर मार-मारकर भगाऊँगी। खूब सबक सिखाऊँगी आज! मैने अपनी बहनो को तैयार भी कर लिया है अभी!"

चन्द्रकान्त मारे खुशी के उछल उठा। बोला—"बुद्धी बहन की बुद्धि तो हम सबो से हमेशा आगे रहती है स्वामी जी! ठीक तो है! स्त्रियाँ अगर आगे चल पडी, तो हम पुरुष ही क्यो पीछे रहे ? साथ चलकर हाथ तो बटाये इनका। मिलकर पत्थरो से ही युद्ध करेगे आज। और गुण्डो को सिखा देगे आज कि हर जगह गुण्डागीरी का ही हाथ ऊपर नही रहता।"

"पर बच्चो को तो अलग कर देना ही ठीक रहेगा भाई ?"—स्वामी जी बोले—"और उन स्त्रियो को भी, जिनकी गोद के बच्चे अब भी दूध पीना नही छोड सके।"

स्वामी जी के साथ सबने सहमति जताई। चन्द्रकान्त कुल्लू का ही एक पढा-लिखा आदर्शवादी नवयुवक था। विद्यापीठ मे अध्यापक था। कुल्लू मे ही सारी सूचना पाकर विद्यापीठ को सूचित करने दौड पडा था।

अब वह बच्चो को पृथक् करने की व्यवस्था मे लग पडा। हिन्दू बच्चो को पास के गॉव मे भेज दिया और मुस्लिम बच्चो को चार-पॉच औरतो व पुरुषो के साथ पार्वती के उस पार की ऊँची चोटी के पीछे के जगल मे। पार्वती नदी मे चौडाई के बावजूद एक जगह गहराई न थी। धार मे खूब तेजी भी न थी। अतः नदी पार करने मे अधिक कठिनाई न हो सकी। सप्ताह भर की खुराक उनके साथ कर दी गई। किंतु फिर भी नेत्रो मे निराशा और व्यथा लिये ही वे विदा हुए। विदा का वह दृश्य कम दर्दनाक न था।

लेकिन सारी मुस्लिम तरुणियाँ बुद्धी की ललकार पर मोर्चे पर ही तनकर खडी हो गई। कुछ देर पहले का भय और आतक मानो मन से विदा हो पडा।

"बहनो!"—बुद्धी ने ललकारते हुए कहा था—"कहाँ जाना चाह रही हो? मौत से अपने को बचाने के लिये? जीने के लिये? मगर दुनिया मे है कोई ऐसी जगह जो मौत से खाली हो? और उस जिन्दगी को क्या जिन्दगी कहेगे जो मौत के सामने से भागकर जीना चाह रही हो? जिन्दगी वही है बहनो, जो मौत से जूझते हुए जीना चाहे, मौत से भागकर नही। आओ। मिलकर मौत का सामना करे। मिलकर मरेगे और मिलकर ही जियेंगे। मगर गुण्डो के आगे नही झुकेगे। नही झुकेगे।"

स्वय आदित्यनाथ भी आश्चर्यचकित रह गया बुद्धी के इस साहस पर। समझ और विवेक पर! बुद्धी मे इस प्रकार की महानता और विशालता छिपी हुई है, यह सोचते ही वह अपने सौभाग्य पर आप ईर्ष्या कर उठा। उसका हृदय उससे बोल पडा—"मूर्ख! यदि इन नारी मे वह विशालता न होती तो कैसे तुझ अनजाने अपरिचित पर अपने को कुर्बान कर देती? अपनी जननी-जन्मभूमि से रिश्ता-नाता तोडकर इस प्रकार तेरे पास दौड आती? मलाणे की स्त्रियो को पुरुषो की क्या कमी है? और खासकर बुद्धी जैसी सुदरी व तरुणी को? और फिर वह तो उस

महान् माँ की पुत्री है जिसका अनुपम मातृत्व तुझ पीडित परदेसी पर पलमात्र मे पिघल पडा था। उस विशाल और महान् की संतान मे ऐसी विशालता और महानता का न होना ही आश्चर्य है। किताबो के पन्नो मे विशालता छिपी नही होती आदित्य ! केवल किताबो के पन्ने पढकर विशालता नही आती भाई।"

उन भय-विकम्पित मुस्लिम पुरुषो को सम्बोधित करते हुए अब चन्द्रकान्त भी बोला—"डरते नही मित्रो। बुद्धी बहन ने सिर्फ बहनो को ही नही, हमे भी सही रास्ता बता दिया है। तो फिर तैयार हो जाओ। आज मोर्चे पर हम मिलकर मरे भी और मिलकर जिये भी।"—कहकर उन पुरुषो के साथ वह भी पार्वती के किनारे बढ चला। पत्थर के चिकने व घिसे-पक्के टुकडे एकत्र करने जिनके एक बार के वार से ही किसी भी योद्धा का कचूमर निकल जाय।

"हाँ तो वर्मा की कारगुजारियो की बात बता दूँ दादा !"—पत्थर एकत्र करते-करते ही वह आदित्य से बोला—"सुना कि जनाब उस बार कुल्लू से निराश होकर सीधे जा पहुँचे कलकत्ता। अपनी स्वस्थ और सुन्दर आकृति के जोर पर किसी फिल्म-कम्पनी मे अभिनेता व मुख्य अभिनेता पद हथियाने की बडी कोशिश की, पर सफलता जाने क्यो नही मिल पाई। बेचारे एक्स्ट्रा के एक्स्ट्रा ही रह गये। पर इनके सौभाग्य से, मुस्लिम लीगी सरकार की कृपा से हिंदू-मुस्लिम दगा वहाँ चालू हो चला फिर तो जनाब रातोरात किसी गुरुद्वारे मे जाकर अमृत छक आए। कडा, कच्छा और कृपाण धारण कर नीली पगडी के बल पर अकाली बनकर धर्म योद्धाओ मे शामिल हो चले। फिर तो पुत्र के साथ माँ लक्ष्मी भी प्रसन्न हो चली। मुसलमानो पर इनकी कृपा कृपाण बन कर बरस ही रही थी और हिन्दू सेठो पर भी दृष्टि इनकी जा ही पड़ती। हिन्दू सर्राफो की दुकानो से जाने सोने-चाँदी के कितने जेवर लूट ले आए, इसका न उन सेठो को पता चला, न उस अंग्रेज़ पुलिस-कमिश्नर के किसी पुलिस को। खैर, जो भी हो, पर अब तो कडा, कच्छा,

कृपाण, केश और कघे को बिल्कुल परित्याग कर कुल्लू उपत्यका मे हिन्दू धर्म और सस्कृति की सुरक्षा के लिए ही फिर आ पधारे है। और यहाँ भी सुना है, कल रात जो भीपण हत्याकाड और अग्निकाड हुआ, उसमे भी खूब लूटा और बटोरा है जनाब ने। साथियो को यह आदेश भी दिया है श्रीमान ने, कि कुल्लू के सारे मुसल्लो की दौलत लूटकर उनके पास सुरक्षित रखी जाय ताकि वे उस धनराशि से हिन्दू धर्म और सस्कृति की सुरक्षा के निमित्त इसी हिमालय मे, इसी विद्यापीठ की समाधि पर एक विशाल 'गुरुकुल' खोलकर सारे जगत् को चकाचौध मे डाले बिना न रहेगे।" कहते-कहते वह बडे जोर से ठठाकर हँस भी पडा।

"आने तो दो आज शैतान को!"—एक दूसरी आवाज बोल पडी—"उसकी स्वय की ही समाधि न बन जाए तो कहना। दिन-दिन की शैतानी का आज सच्चा सबक यहाँ उसे न सिखा दूँ तो नाम बदल देना मेरा भी!"—कहकर वह तनकर उठ खडा हुआ।

"शाबास बिरछू भाई।"—चन्द्रकात ने भी तनकर उसे वचन दे दिया—"इस काम मे मै भी तुम्हारे साथ रहूँगा भैया! देखना कि शिकार कही निकल न भागे हाथ से आज। यदि एक शैतान की हत्या से लाखो वेगुनाहो के प्राण बचते हो तो उसे हत्या नही कहेगे भइया!"

"भाई जान!"—मियाँ अलीखाँ पत्थर बटोरते हुए ही मसोसते मन से बोला—"जीने की उम्मीद तो अब नही रही। और शैतानो से भरी इस दुनिया मे जीने की तबीयत भी अब नही रही। मगर अन्त बेला मे इस यकीन को लिए ही अल्ला के घर जाऊँगा कि सभी हिन्दू काफिर नही होते, और न सभी मुसलमान मुसलमान। और अल्ला से अरज करूँगा—'पाक परवरदिगार! आखिर क्यो इन काफिरो को मुसलमान कहते तू बर्दाश्त किये जा रहा है? क्या यह तेरे मे ताकत नही कि इन काफिरो पर एकाएक कुफ्र गिराकर सबको एक साथ भेज दे जहन्नम मे?'

बेईमान ! अल्ला का नाम लेकर, 'इस्लाम खतरे मे' के नारे लगाकर हम बेवकूफो को गुनहगार बनाकर साले खुद भाग चले पाकिस्तान को। हम बेगुनाहो के खून मे लथपथ गद्दी पर बैठ मजे मारेगे वे ठग ! और इन ठगो की खातिर कुर्बानी का बकरा बनने जा रहे है आज हम बेवकूफ। या अल्ला ! कैसे यकीन लाऊँ कि तेरे घर इन्साफ भी है ?"—कहते-कहते ही उसकी आखो से आँसुओ के कई बूँद लुढक पडे।

"उफ !"—आँखे पोछकर वह फिर बोला—"अगर पहले अक्ल आई होती ! मियाँ बरकत अली मनाकर हार गये कि मत वोट दो इन हरामियो को ! इन मुसल्ले काफिरो को !" मगर हरामियो ने मजहब के भरम मे भरमा ही लिया भाइयो ! और वो सर इस्माइलखाँ नून, जो उस दिन अपने लैक्चर मे आग उगल रहा था, किस तरह जान बचाकर भाग चला पाकिस्तान को ? अंग्रेजो का आदमी ठहरा। यहाँ से तो मडी तक गया मोटरकार मे जान बचाकर, और सुना कि मडी मे उस हरामी को लेने के लिये स्पेशल हवाई जहाज आया था लाहौर से। या अल्ला !"—कहते-कहते वह इस बार रो भी पडा।

"रोओ मत मियाँ जी !"—चन्द्रकांत ने धीरज बँधाया—"यह हाल सिर्फ मुस्लिम हरामियो का ही नही, बल्कि इस मामले मे हिंदू हरामी भी अपने उन मुस्लिम भाइयो से पीछे नही है जो पहले हिंदुओ को छत्रपति शिवाजी, महाराणा प्रताप और गुरु गोविन्दसिह की वीरता की याद दिलाते नही थका करते थे, पाकिस्तान की पैदाइश से पहले ही हवाई जहाजो पर चढ-चढकर अपने बाल-बच्चो के साथ भाग निकले दिल्ली को, हरद्वार को, और उन सभी शहरो की ओर जहाँ उनकी जान-माल को कोई खतरा न था।"

"चोर-चोर मौसेरे भाई", आखिर यह कहावत झूठी तो नही।" —उधर से बिरछूराम ने भी सहमति जाहिर की। फिर खडे होकर पश्चिम की ओर देखकर बोला—"अब तो सूरज भगवान् भी डूब चले। और चोरो के पहुँचने का समय भी हो चला।" फिर एकाएक कुछ

देखकर सबको सावधान करते—"वो देखो ! वो देखो ! उस पार ! भुँतुर के बाजार की ओर। आ गया शैतानो का दल ! आ गई शैतानो की सेना !"

और सचमुच सबने सिर उठाकर ध्यान से देखा। बाजार के एक किनारे की मुस्लिम दुकान से एकाएक उठती हुई आग की लपटो के साथ ही उन्होने 'हर-हर महादेव' का सामूहिक नारा भी सुना। क्षणमात्र मे सब सावधान हो पडे।

आदित्यनाथ ने उन मुस्लिम शरणार्थियो को आदेश दिया—"आप सब चले जायँ कमरे के अन्दर। हम कोशिश करेगे, उन्हे मनाकर लौटा देने की। लेकिन फिर भी अगर न मानकर शैतानी पर वे तुल ही गये, तो हमारी मुँह की सीटी के साथ ही आप लोग पूरी होशियारी और बहादुरी के साथ टूट पडियेगा शैतानो पर !" फिर बुद्धी की ओर मुडकर—"हाँ भई बुद्धी ! तो सम्हालना इन्हे। और पूरी होशियार रहना। अच्छा !"

"अच्छा !"—कहकर बुद्धी भी सतर्क और सावधान हो गई।

◇ ◇ ◇

"क्यो वर्मा साहब ?"—आदित्य ने आगे बढकर धर्म-योद्धाओ के नेता श्री वीरेन्द्र वर्मा से पूछा—"यह क्या कर रहे है आप ?"

"अच्छा ! तो आप ? ब्रह्मचारी साहब ?"—वर्मा जी ने हँसकर व्यग्य भरे स्वर मे बिल्कुल लापरवाही के लहजे मे जवाब दिया—"वही जो दिल को अच्छा लग रहा है।"

"अच्छा ! तो यह सब अच्छा समझकर कर रहे है आप ?"—आदित्यनाथ ने आश्चर्य भरे स्वर मे पूछा।

वीरेन्द्र वर्मा ने शराब भी पी रखी थी। और अक्सर शराब के नशे मे लोगो की प्रतिभा कुछ तीव्र हो जाती है। दिल का छिपा भाव भी प्रकट होने लगता है। सो वर्मा इस समय बिल्कुल खुले दिल से व्यग्य-भरे स्वर मे बोलने लगा—"आश्चर्य क्या ब्रह्मचारी साहब ? हम कुछ

दिन साथ रहकर भी यदि एक-दूसरे को न समझ सके तो क्या बताऊँ आपसे ? लेकिन इतना भी आप नही समझते कि अच्छे-बुरे का विवेक मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता के सिवा और कुछ नही ? जिसे आप अच्छा मानते है उसे मैं बुरा मान सकता हूँ, और जिसे आप बुरा मान रहे हैं उसे मैं अच्छा मानूँ तो बुराई क्या ?"—यह कहकर बडे जोर से ठठाकर वह हँस भी पडे ।

आदित्य से कोई सटीक उत्तर देते न बना, किन्तु उसके मुख से यह वाक्य निकल ही गया—"शैतानी मस्तिष्क इन्सानी मस्तिष्क से कही तेज होता है, भाई ! क्योकि शैतान के हृदय नही होता । क्योकि हृदय भी मस्तिष्क मे ही विलीन हुआ होता है ।"

इस उत्तर पर वीरेन्द्र वर्मा पुन. जोर से हँस पडे । उसके मन मे इस क्षण इस प्रतिद्वन्द्वी को बौद्धिक रूप से भी पराजित करने की आकाक्षा प्रबल हो उठी ।

"अच्छा !—हँसते हुए ही वह बोले—"शैतानी मस्तिष्क क्या और इन्सानी मस्तिष्क क्या, इसका सही विवेक कर सकना तो शैतान और इन्सान दोनो के ही बूते से बाहर की बात दीख रही है, पर एक बडे अच्छे लेखक की कही हुई बात ही मैं दुहरा देना चाहता हूँ । क्योकि मैं उस लेखक को बहुत ही अच्छा मानता हूँ । नाम तो इस समय उसका नही याद आ रहा, पर उसके कहे वाक्य अवश्य याद आ गये । कितना अच्छा कहा है उसने—'ससार मे पाप कुछ नही है, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है ।' और—'हम न पाप करते हैं, न पुण्य करते हैं । हम केवल वह करते है जो हमे करना पडता है ।' कितना अच्छा कहा है उसने ब्रह्मचारी साहब ? सो आपसे साफ बता दूँ श्रीमान जी, कि हम भी इस समय वही करने आये है जो हमे करना पड रहा है । हर मनुष्य सुख चाहता है । हम भी सुख चाहते है । सुख-दुख का दृष्टिकोण भी भिन्न होता है । कुछ सुख को धन मे देखते है । कुछ सुख को व्यभिचार मे देखते है । कुछ त्याग मे देखते है, पर सुख प्रत्येक व्यक्ति चाहता है ।

और आजकल हम जो कुछ किये जा रहे है उसमे हमे सुख भी मिलता है और सुख की सम्भावना भी दीखती है। समझे ब्रह्मचारी साहब ?" —कहकर वह पुन ठठाकर हँस पडा। बोला—"तो अब सीधी राह आप बगैर किसी विलम्ब के उन मुसल्लो को सौप दे हमारे हाथ। वरना ।"

"वरना ?" —आदित्य ने भी अब कडे स्वर मे उस शब्द को प्रश्न के लहजे मे दुहरा दिया।

वर्मा इस बार व्यग्यभरी धमकी के स्वर मे जरा जोर से बोला—"वरना हम आततायियो का साथ देने वालो को भी आततायी मानकर उनके साथ भी वही व्यवहार कर बैठेगे जो हम अन्य आततायियो के साथ करते आये है। 'नाततायि बधे दोषः।' समझे ब्रह्मचारी साहब ? ऋषि दयानन्द ने हमे बहुत पहले ही बता दिया है।"

"हाँ, समझ गया !" —आदित्यनाथ ने भी इस बार व्यग्य-भरे स्वर मे जवाब दिया—"अच्छा, तो आपने स्वय बता ही दिया कि 'आततायियो के वध मे कोई दोष नही।' और अच्छे-बुरे का विवेक भी मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता के सिवा और कुछ नही।' और 'हम केवल वह करते है जो हमे करना पडता है।' तो आप वह करना शुरू कीजिये जो आपको करना पड रहा है, और हम भी अब वही करने जा रहे है जो हमे करना पड रहा है।" —कहकर उसने पूरे जोर से मुँह की सीटी बजा दी।

लहमे-भर मे घमासान मच गया। बिरछूराम ने वर्मा को सावधान होने का जरा-भी मौका न देकर उसकी पेडू पर इतने जोर से सिर की टक्कर दे मारी कि वह चारो खाने चित्त हो लुढक पडा। बिरछूराम झट उसकी छाती पर सवार हो उस पर कसकर एक मुक्का लगाते व्यग्य-भरे स्वर से बोला—"नाततायि बधे दोष । अब हम भी वही करने जा रहे है जो हमे करना पड रहा है। समझे वर्मा साहब ? आप इस विद्यापीठ की ही समाधि पर हिमालय-गुरुकुल बनाने के सपने ले रहे है न ? अच्छा, तो अनत निद्रा की गोद मे बैठकर ही लेते रहिये अनत काल तक अपने

जीवन के सारे मीठे सपने !" इतना कहकर उसने ज्यो ही उसकी छाती पर कसकर एक दूसरा मुक्का प्रहार करना चाहा कि झट दूसरी ओर से बदूक की एक गोली आकर उसकी कुहनी के किनारे को छीलती हुई सन्न से निकल भी गई ।

वर्मा झट सावधान हो गया । उसने बिरछूराम को एक जोर का झटका देकर नीचे गिरा दिया । और झट अपने पाकेट की पिस्तौल को आदित्यनाथ की ओर कर उसका घोडा दबाना ही चाह रहा था कि लहमे-भर मे ही किसी ओर से बिजली की भाँति लपककर बीच मे बुद्धी आ गई । पिस्तौल की गोली छूट चुकी थी । वह गोली बुद्धी की दाईं बाँह को छेदती हुई अन्दर चली गई । लेकिन उसी क्षण चन्द्रकान्त ने पत्थर का एक बडा टुकडा इतने जोर से वर्मा पर दे मारा कि वह धड़ाम से नीचे गिर गया । विद्युद्वेग से चन्द्रकान्त ने भी लपककर वर्मा के हाथ की पिस्तौल छीन उसीकी गोली उसीकी छाती मे दाग दी थी । और दूसरे ही क्षण वर्मा जी अनन्त निद्रा की गोद मे सो भी पडे ।

उधर विद्यापीठ के तीनो मकानो मे आग भी लग चुकी थी । जाने किसने, कब, किधर से जाकर आग लगा दी । मिट्टी के तेल और स्पिरिट के जोर पर लहमे-भर मे ही वह आग धधक-धधककर सब ओर जल उठी । किसी को कुछ ध्यान न रहा । अन्धाधुन्ध पत्थरो और गोलियो की वर्षा होने लग पडी । कुछ लोग पहले ही भाग चुके थे । और कुछ लोग घायल अथवा मर-मरकर धराशायी होते जा रहे थे ।

आदित्यनाथ के कपार पर भी एक बडे जोर का पत्थर आ लगा । कुछ क्षण के लिए बेहोश हो वह नीचे गिर पडा । किन्तु जब पुन होश मे आया तो आग की लपटो के प्रकाश मे उसने पास मे स्वामी सोमानन्द को भी देखा । उसे लगा जैसे स्वामी जी उसीके बचाव मे यहाँ आ पहुँचे है । पर दूसरे ही क्षण उसने यह भी देख लिया कि फिर एक पत्थर का मजबूत टुकडा उस वृद्ध तपस्वी के सिर पर इतने जोर से आ लगा कि वह लुढककर आदित्य के ऊपर ही आ पडे ।

आदित्य ने साहस किया। मारे क्रोध के वह भूल गया कि वह स्वय भी आहत हो चुका है। उसके मन मे झट स्वामी जी को मोर्चे से उठा कर अलग करने की बात आ गई। स्वामी जी के मूर्छित शरीर को झट गोद मे समेट वह दौडता हुआ नीचे पार्वती के किनारे जा पहुँचा। एक सुरक्षित जगह मे उन्हे रखने का प्रयत्न करते ही उसकी दृष्टि जा पडी एक दूसरी लाश पर। उस लाश से कराहने की आवाज आ रही थी, और साथ ही उसकी गोद मे शिशु के चिल्लाने का स्वर भी। अँधेरी रात थी तो क्या, पर आग की रोशनी कुछ-कुछ वहाँ भी पहुँच ही रही थी।

उस आकृति को पहचानकर आदित्य सन्न रह गया! यह तो बुद्धी थी। कब कैसे यहाँ आ पहुँची। और किस प्रकार अपने शिशु को सम्भाले यहाँ इस प्रकार पडी हुई है?

"बुद्धी! बुद्धी!!" आदित्य ने व्याकुलता-भरे स्वर मे जोर से पुकारा।

बुद्धी ने आँखे खोल दी। अत्यन्त धीमे स्वर मे कराहते हुए बोली—"तुम? और बापू कहाँ?" —कहते-कहते जैसे नेत्र उसके सजल हो उठे।

"तुम्हारे बापू जरा घायल हो गये बुद्धी! यह देखो, तुम्हारे बापू तुम्हारे पास हैं।"

बुद्धी ने बापू को देख लिया। अपनी व्यथा पर काबू पा आदित्य से घबडाये स्वर मे बोली—"पानी डालो! बापू के मुँह पर पानी डालो परदेसी! पानी डालो!"

सचमुच वह पानी डालना भूल चुका था। पानी डालने के बाद सोमानन्द जी की चेतना झट वापस आ गई। बुद्धी अपनी व्यथा मे भी प्रसन्नता को छिपा न सकी।

"मेरे बापू आ गये! आ गये!" —अचानक जैसे सारी पीड़ा को भूल अपनी खुशी जाहिर करती अब अनुनय और आदेश के स्वर मे आदित्य से वह बोली—"तुम अब ऊपर जाओ परदेसी! जाओ! अपने दूसरे साथियो की भी खबर लो। चिन्ता न करो। मैं बापू के पास हूँ।"

बुद्धी बचपन मे ही अपने पिता से हाथ धो बैठी थी। पिता के प्यार से कभी परिचित न हो सकी थी। किन्तु स्वामी सोमानन्द से सपर्क होते ही जैसे खोये पिता को उसने पा लिया! कितना प्यार उसे मिला करता था इस वृद्ध सन्यासी से! और उस प्यार ने बुद्धी के दिल के प्यार को अपने इस धर्म-पिता के प्रति और भी उच्छ्वसित कर दिया था! वह रात-दिन मानो माँ बनकर पिता की परिचर्या मे लगी रहती। इस क्षण भी अपने पिता को भूल न सकी थी।

आदित्यनाथ का हृदय बुद्धी के उन शब्दो से और भी उच्छ्वसित हो उठा। वह अश्रु को दबाते और छिपाते ऊपर विद्यापीठ के आँगन मे आ गया। पर अब तक हिंसा का सारा खेल खतम हो चुका था। बिरछूराम घायल हो बेहोश पडा था। चन्द्रकान्त भी एक ओर पडा कराह रहा था। एक मुस्लिम तरुणी नीचे से पानी ला-लाकर उन घायलो के चेहरे पर छिडके जा रही थी। अब आदित्यनाथ भी इस काम मे शामिल हो गया। आग की लपटो मे उन चेहरो को पहचानते हुए कठिनाई नही होती। उभय पक्ष के घायलों की कराह मे करुणा बोल रही थी। कुछ मर चुके थे और कुछ मृत्यु की ओर खिंचे जा रहे थे। और कुछ मूर्छा की अचेतना मे इस प्रकार सोये पडे थे जैसे सुषुप्ति की चरमावस्था मे निमग्न हो वे! आदित्यनाथ उन चेहरों को पहचानने की चेष्टा करने लगा। जिन चेहरो पर प्राण के स्पन्दन दिखाई देते उन्हे उठाकर वह पार्वती के किनारे रख आता। एक मुस्लिम तरुणी वहाँ बुद्धी और सोमानन्द के उपचार मे जुटी हुई थी। आदित्यनाथ के निर्देश से वह उन घायलो के चेहरो पर भी जल के छींटे डालने लगी। उनके खुले मुखो मे पानी भी डालने लगी।

चन्द्रकान्त और बिरछू भी अब तक सम्हल चुके थे। सम्हलकर वे भी घायलो के उपचार मे लग पडे। इस समय पक्ष-प्रतिपक्ष का विचार न रह गया! हिन्दू-मुसलमानो की लाशे वहा एक साथ पडी हुई थी। मुसलमानो ने वहाँ जीवन की आशा छोडकर युद्ध किया था। कुछ मर

चुके थे, कुछ घायल हो जी रहे थे। एक साथ पडी हुई लाशे जैसे कह रही हो—"जीवन का राक्षस तो निकल गया। अब काहे का वैर-विरोध ?"

स्वामी सोमानन्द अब अच्छी तरह होश मे आ चुके थे। चोट घातक न थी। सिर से बहते खून पर वे स्वय अलफी से पट्टी बॉध चुके थे। बुढ्ढी के घायल शरीर को लेकर वे सब अब विद्यापीठ के आँगन मे एकत्र हो गये। भुन्तुर के हिन्दू दुकानदारो मे से कुछ अतिशय उत्साही लोग ही आक्रमणकारियो के साथ तमाशा देखने पहुँचे थे। पर दो-तरफा युद्ध छिडते ही वे बाजार की ओर भाग चले थे। केवल मरने वाले लोग ही वहॉ अत तक डटे रहे। अत इस क्षण वहाँ कोई बाहरी तमाशबीन न रह गया था।

मृतको की लाशे अभी पडी थी, पर विद्यापीठ की विशाल चिता धू-धूकर जल रही थी। स्वामी सोमानन्द व्यथा-विमूढ, शून्य आँखो से उसे इस प्रकार देख रहे थे जैसे अपनी प्रिय सतान की जलती चिता को कोई देख रहा हो। व्यथा भरे हृदय से वे सोच रहे थे—"सब कुछ सत्यानाश हो गया। निर्माण कितना कठिन, और विनाश कितना आसान ! हाय रे इन्सान ! इस विनाश के बजाय यदि अपनी सारी शक्ति तू निर्माण मे लगा पाता। आखिर मुट्ठी भर हिन्दू और मुस्लिम बदमाशो ने मिलकर मानवीय एकता के सदियो के प्रयास के परिणाम को इतनी आसानी से विनष्ट कर दिया ! वेद को नष्ट कर दिया। कुरान को नष्ट कर दिया। अपने पुरखो की सारी अच्छी विरासत को मिटा दिया ! सामाजिक जीवन की समस्त उच्च सस्कृति को रसातल ,मे पहुँचा दिया। लेकिन आश्चर्य कि सस्कृति की यह भीषण हत्या की जा रही है सस्कृति के ही नारो के जहरीले हथियारो से !"

स्वामी सोमानन्द यह सोच ही रहे थे कि चन्द्रकान्त ने उनका ध्यान भंग किया—"गुरु जी ! मेरा तो विचार है कि इन लाशो को यहाँ पडी रहने देने के बजाय जल्द-से-जल्द पार्वती मे बहा दिया जाय।"

स्वामी सोमानन्द क्षण भर मौन रहकर बोले—"हाँ! ऐसा ही करो। जल्दी करो!"

बुद्धी की हालत बहुत नाजुक होने लगी थी। दाईं बाँह मे घुसी गोली का जहर सारे बदन मे फैल चुका था। बाँह पर बँधी हुई पट्टी खून से साराबोर हो चली थी! तिस पर उसे पत्थर की एक बड़े जोर की चोट भी लगी थी। आत्म-बल कब तक साथ दे पाता! अतिशय पीड़ा से जोर-जोर से कराहती हुई बोलने लगी—"बापू! बापू!! बापू!!!"

पीडा और विपत्ति के समय हर व्यक्ति माँ-बाप को पुकारता है। मानो आसन्न मृत्यु का भय अथवा वेदना उसे जन्म की ओर खीच ले जाता है। मा मलाणे मे थी। पर उसके प्रिय बापू उसके पास थे। पुत्री की करुण पुकार पर बापू झट उसके पास जा पहुँचे। वात्सल्य-व्यथा से विगलित होकर बोलने लगे—"मै तेरे पास हूँ बिटिया! मेरी बेटी! तेरा बापू तेरे पास है।"

"तुम यही रहो बापू। बैठो मेरे पास।"

"हाँ! यही रहूँगा! यही बैठूँगा।"

"अपनी गोद मे मुझे ले लो!"

स्वामी सोमानन्द झट उसका सिर अपनी गोद मे लेकर वही बैठ गये। पर अचानक जोर से उभरे आँसू अब रुकना नही चाह रहे थे। बुद्धी का एक-साला शिशु उस मुस्लिम तरुणी की पीठ पर बँधा हुआ सुख से सो रहा था। और वह स्वय बुद्धी के उपचार मे जुटी हुई थी।

स्वामी सोमानन्द मूक रुदन के साथ ही बुद्धी के सिर के बाल सहला रहे थे। उनके आँसुओ के कई बूँद बुद्धी के चेहरे पर ढुलक पडे।

"तुम रो रहे हो बापू? रोओ मत! तुम्हारी गोद मे बडा सुख लग रहा है। पडी रहने दो मुझे।"

बुद्धी के इन शब्दो ने जैसे स्वामी जी पर फिर जोर का वार किया। उन्हे स्पष्ट लगा कि बुद्धी अब अधिक देर की मेहमान नही है। जैसे अपने बापू की गोद मे सिर रखे ही इस ससार से वह कूच करना चाह

रही हो। अपने बापू की गोद मे जैसे अपना अतिम प्यार और विश्वास छोड जाना चाह रही हो।

"तू पडी रह बिटिया ! सुख से पडी रह।"

उच्छ्वासो के आवेग मे बडी कठिनाई से ये शब्द उनके मुँह से निकल सके। और बुद्धी पुनः अपनी बडी-बडी आँखे खोल किसीको ढूँढती हुई-सी बोली—"मुन्ना कहाँ बापू ?"

और तब उस मुस्लिम तरुणी ने झट पीठ से मुन्ने को उतार उसके निद्रित मुख को आगे करते हुए कहा—"यह है तुम्हारा मुन्ना, बहन !"

दायाँ हाथ निःशक्त हो चुका था। बची-खुची ताकत बटोरकर बडी कठिनाई से उसने बायाँ हाथ अपने पुत्र के सिर पर रखा। और आँखे फैलाकर उसके चेहरे को देखने लगी ! मानो उस हाथ और उन नेत्रो से माँ का सारा हृदय निकलकर पुत्र मे प्रविष्ट होना चाह रहा हो ! मानो मातृ-हृदय की समस्त आशीष रक्षा-कवच के रूप मे उस बच्चे से निबद्ध होना चाह रही हो।

बुद्धी की आँखो से आँसू बह चले। अश्रु-गद्‌गद कठ से उस मुस्लिम तरुणी को सबोधित करते हुए वह बोली—"बहन ! आज से तुम्ही इस अभागे की माँ। मुझे वचन दो ! पालोगी इसे ?"

हलीमा उस बच्चे को छाती से लगा बडे जोर से रो पडी। बच्चा भी अचानक रो पडा। स्वामी सोमानन्द भी रोने लगे। हलीमा ने मानो बच्चे को छाती से लगाते ही उस मरणोन्मुख माँ की याचना स्वीकार कर ली। और आदित्यनाथ भी रुलाई की आवाज पर दौडा हुआ वहाँ आ पहुँचा।

"बुद्धी ! ओ बुद्धी !!"—वह अत्यन्त व्याकुल स्वर मे उसे पुकारने लगा।

बुद्धी के चेहरे पर अत काल का प्रकाश चमक उठा था। और अत-काल की शेष शक्ति भी नसो मे उभर उठी थी। आदित्यनाथ को जैसे हृदय मे बैठाये वह आँखे मूँदे देख रही थी। पर उसकी व्याकुल आवाज

पर अपनी आँखे खोल क्षण भर धैर्य के साथ उसे देख अपेक्षाकृत स्वस्थ स्वर मे बोली—"तुम मुझे जल्दी भूल जाना परदेसी ! दिल खराब न करना। मगर मेरे बापू को कभी मत भूलना ! उनकी किसी भी बात की बेकद्री कभी मत करना। मेरी कसम,—अगर शरीर की हिफाजत करने मे जरा भी गलती की ! अब मुझे हुकुम दो ! जा रही हूँ ! सभी साथियो से · · · "

वाक्य पूरा न हो सका ! अचानक उभरी हुई शक्ति जैसे अचानक हवा बनकर अनन्त मे खो चली। एक जोर की हिचकी उठी और आँखें फटी-की-फटी ही रह गई।

स्वामी सोमानन्द और आदित्यनाथ बिल्कुल शिशु की तरह चीख उठे। आदित्यनाथ उसके शव से लिपटकर रो-रोकर बोलने लगा—"तू चली गई ? सचमुच चली गई ? तूने क्यो मुझे बचाया ? क्यों मुझ पर छोडी हुई गोली को अपने ऊपर ले लिया ? तूने अन्याय किया ? मेरे साथ अन्याय ! तू मेरे जीवन का स्वर्ग थी। उस स्वर्ग को छीनकर तू स्वय चल पड़ी स्वर्ग की ओर ! और मै पडा रहूँ शैतानो से भरे इस ससार के नरक मे ? यह क्या किया तूने बुद्धी ? यह क्या किया ? · ·· "

दूसरे लोग भी रो-पीट रहे थे। स्वामी सोमानद अब अपना शोक भूलकर जैसे एकाएक सन्यासी बनकर आदित्यनाथ को धैर्य बधाने लगे। बुद्धी का मुन्ना भी जाग पडा था। अपने पिता को उस प्रकार रोते देख वह शिशु भी जोर-जोर से रोने लगा ! और हलीमा उसे गोद मे सम्हाले रो-रोकर पुचकारने लगी—"मेरे राजा बेटा ! मेरे मुन्नू ! चुप ! चुप ! मैं हूँ, मैं हूँ तेरी माँ ! मेरे राजा बेटा ! मेरे मुन्नू ! चुप ! चुप !"—कहती हुई वह पार्वती के किनारे चली गई। उस व्याकुल शिशु को छाती से चिपकाये रो-रोकर बोलने लगी—"मुझे यह जिम्मेदारी सौप के तुम चली गई बुद्धी बहन ! तुम विश्वास रखो। कसम अल्ला की !

कसम पार्वती की। मै तुम्हारे मुन्ने को पालूंगी। तुम्हारी इस धरोहर को, तुम्हारी इस निशानी को बरबाद न होने दूंगी। विश्वास रखो। मैं अब इसी अपने मुन्ने के लिए जीऊँगी। जीऊँगी बहन! जरूर जीऊँगी! कसम अल्ला की! कसम पार्वती की!"—कहते-कहते उसने उस शिशु को और भी छाती से चिपका लिया।

उपसंहार

सारे भारत मे और पाकिस्तान मे साम्प्रदायिकता का वह शैतानी उन्माद अभी पूरी तरह शान्त न हो सका था। साम्प्रदायिक शक्तियाँ उसे मिटने देना नही चाह रही थी। अखबार आते ही थे, और उन अखबारो मे पाकिस्तान मे हिन्दुओ पर हुए अत्याचारो की अतिरजित एवं कल्पित कहानियाँ हिन्दुओ को उसी प्रकार उन्मादग्रस्त बना देती जिस प्रकार कि भारत मे मुसलमानो पर हुए अत्याचारो की मनगढन्त कहानियाँ पाकिस्तानी मुसलमानो को। किन्तु कुल्लू की उस छोटी उपत्यका मे मुसलमानो की सख्या समाप्त हो चली। अत उस उन्माद का लक्ष्य भी समाप्त हो चला। पर उस उन्माद की स्मृति मे लोक-गीतो का निर्माण अवश्य हो चला। उन भोले-भाले हिन्दुओ मे इस प्रकार के लोक-गीत लोक-प्रिय हो चले—

"हिन्दू भाई री मोटर आई,
चार बजे शुरू लडाई,
मुसुडमानेरी गद मटाई ! . . ."

अर्थात्—हिन्दू भाई की मोटर गाडी आ गई। चार बजे लडाई शुरू हुई। फलस्वरूप मुसलमानो की गद (गध) मिटा दी गई अर्थात् सारे मुसलमान कत्ल कर डाले गये !

उधर आदित्यनाथ का 'विद्यापीठ' साम्प्रदायिकता की आग मे जल

कर नष्ट हो चुका था। उस चिता पर दुबारा विद्यापीठ को स्थापित करना अब आदित्यनाथ के वश की बात न रह गई। कारण कई थे। और मुख्य कारण यह था कि उस दुर्घटना के तीन-चार दिन बाद ही स्वामी सोमानन्द अचानक चल बसे। अनुमानतः उनकी मृत्यु के भी कई कारण थे। उनके अतिशय वात्सल्य-भरे मन पर बुद्धी की अकाल मृत्यु का सबल आघात, अथवा विद्यापीठ के रूप मे अपने जीवन की सान्ध्य वेला के आशाजनक प्रयास का उस रूप मे सत्यानाश, अथवा मानवता के उस दर्दनाक सामूहिक पतन से उत्पन्न निराशा की मर्मान्तिक वेदना, अथवा जीवन के प्रति इन सामूहिक कारणो से एकाएक उत्पन्न अतिशय विराग, वितृष्णा और घृणा ! इस प्रकार बुद्धी और सोमानन्द के रूप मे अपने जीवन के दो प्रेरक पक्षो के छिन जाने पर आदित्यनाथ जैसे एकाएक नि शक्त हो चला। उनकी आकस्मिक मृत्यु से आदित्यनाथ के मन मे भी उपर्युक्त कारणो से ही निराशा और वितृष्णा के भाव भर उठे। पर वह ससार से कूच न कर सका ! और दूसरे, मुस्लिम शरणार्थियो की सुरक्षा के प्रयास मे आक्रमणकारी हिन्दुओ की हत्या मे उसके सक्रिय सहयोग के कारण अपने प्रति जनता मे अचानक उभरी घृणा और क्रोध ने भी उसे बिल्कुल निरुत्साहित कर दिया। गनीमत यही कि विरोधियो की कई कोशिशो के बावजूद वह जिन्दा बचा रहा। क्योकि चन्द्रकान्त, बिरछू आदि उसके कई सहयोगी जैसे कवच बनकर उसकी रक्षा मे सदा सतर्क रहते।

उस रात के भयानक हत्या-काड से बचे मुसलमान उस रात को ही पार्वती पार हो पहाडों मे भाग चले। पता नही उनका क्या हुआ। किन्तु हलीमा न जा सकी ! उसके परिवार का हर व्यक्ति मारा जा चुका था। वह अनाथ बन चुकी थी। लेकिन हिन्दुओ के प्रति उसके हृदय मे उठी अतिशय घृणा और क्रोध को आदित्यनाथ और सोमानन्द के मानवोचित व्यवहार एव बुद्धी के बलिदान ने समाप्त कर दिया था। अब उसकी घृणा और क्रोध का आधार समस्त हिन्दू समाज के बजाय वे लोग

रह गये थे जिन्होंने इस दारुण परिस्थिति को पैदा किया था, चाहे वे हिन्दू हो या मुसलमान। और मरते समय बुद्धी जिस गुरुतर जिम्मेदारी का बोझ उस पर डालती गई थी, उस दशा मे उसका कही अन्यत्र जाना सम्भव भी न रह गया था। मानो बुद्धी उस बच्चे के पालन-पोषण की जिम्मेदारी सौपने के बहाने स्वय आदित्यनाथ की जिम्मेदारी उस पर सौप गई थी। इस सकेत का स्पष्ट तात्पर्य स्वामी सोमानन्द ने सबसे ज्यादा समझा। पर हलीमा उस तात्पर्य को बुद्धी की मृत्यु और दाह-सस्कार के कुछ घन्टे बाद से समझने लगी। और तब उसने आदित्यनाथ को उस दृष्टि से देखना और परखना शुरू किया जिस दृष्टि से कोई क्वाँरी तरुणी अपने जीवन के सबसे अनमोल सौदे को देखती और परखती है।

मृत्यु से कुछ देर पहले अपने साथियो के सामने ही स्वामी सोमानन्द ने हलीमा से स्नेह-भरे स्वर मे कहा था—"बेटी हलीमा! हर प्राणी और हर इन्सान मे जीने का बडा जबर्दस्त लोभ होता है। इस जीने के लोभ के नशे मे ही वह एक-दूसरे का गला भी काटता है, एक-दूसरे से मुहब्बत भी करता है। मगर जीने के असली मकसद की ओर मुहब्बत के सहारे ही बढा जा सकता है, न कि नफरत के सहारे।

नफरत का नतीजा तुम खुद अपनी आँखो देख चुकी हो, और मुहब्बत का नतीजा भी। नफरत हमे मौत देती है, और मुहब्बत जिन्दगी। जरा सोचो मेरी बुद्धी बिटिया ने क्यो अपनी जिन्दगी की कुर्बानी दे दी? और क्यो तुम लोगो के बचाव मे लडती हुई वह शहीद हो चली? क्योकि वह जिन्दगी को प्यार करती थी। इसीलिए धर्म-मजहब का भेद किये बगैर सभी दुखी इन्सानो के लिए उसके दिल मे मुहब्बत की रोशनी जला करती थी। लेकिन साथ ही वह मुझे और आदित्यनाथ को प्यार किया करती थी—दिल की एक खास मुहब्बत की खास रोशनी मे। इसीलिए उसने आदित्य को बचाने की कोशिश मे गोली अपने ऊपर ले ली, और खुद आकर मरी मेरी गोद मे।"—कहते-कहते उनका गला रुँध गया। आँखे

सजल हो चली। हलीमा भी बिलख पडी और आदित्यनाथ और उसके साथी भी।

कुछ क्षण बाद दिल पर तनिक काबू पा स्वामी सोमानन्द फिर बोले—"हलीमा बेटी! बुद्धी बिटिया मरते वक्त अपने बच्चे की माँ तुम्हे बनाती गई है। और इस तरह तुम पर जीने की जिम्मेदारी भी डाल चुकी है। और इसलिए अपनी जिन्दगी को कभी कम अनमोल न समझना बेटी। जब तक जीना, मुहब्बत की जिन्दगी जीना बिटिया। मुहब्बत से बढकर दुनिया मे कोई धर्म नही, कोई मजहब नही। जिस इन्सान के दिल की मुहब्बत का दायरा जितना ही बडा होता है, उसका मजहब भी उतना ही बडा होता है। तुम इसी मुहब्बत के मजहब को सबसे बडा मजहब मानकर अपनी जिन्दगी के रास्ते पर चली चलना बेटी!"

हलीमा झट उनके पैर छू भरे गले से बोली—"आपका हुक्म सिर-आँखो पर बापू! मै जिन्दगी भर आपके हर लफ्ज को बडी इज्जत और मुहब्बत के साथ याद रखूँगी, यकीन कीजिए।"—कहते हुए उसने दोनो हाथो की अगुलियो से अपनी आँखे छू ली, सिर छू लिया।

स्वामी सोमानन्द अब बडे प्यार से हलीमा का हाथ अपनी मुट्ठी मे लेते हुए बोले—"तू मुझे अपना बापू मानती है बिटिया?"

और हलीमा सजल आँखो से फिर बोल उठी—"जरूर। जरूर मेरे प्यारे बापू! अपनी बुद्धी बहन के प्यारे बापू को अपना बापू मान लेना इस दुनिया की किस इज्जत से कम है बापू?"

बापू के नेत्र पुन सजल हो उठे। इस मृत्यु-बेला मे जैसे सुदूर अतीत का गृहस्थ-जीवन स्मृति मे उतरकर खूब भूखा हो चला हो। वात्सल्य-विह्वल स्वर मे वे बोले—"हाँ, तू मेरी वही बुद्धी बिटिया है हलीमा!" फिर आदित्यनाथ को सम्बोधित करते हुए—"बेटा आदित्य! अच्छा आओ। मेरी इस बिटिया के हाथ तो पकड़ो। इस तरह तनिक शान्ति के साथ इस ससार से कूच कर सकूँगा। ' किसी दुविधा मे दिल को मर्त

उलझाओ। हलीमा बुद्धी से भिन्न नही है। क्योकि वह बुद्धी को बहुत, बहुत प्यार करती है।"

आदित्यनाथ इस आदेश की उपेक्षा न कर सका। उसने हलीमा के हाथ पकड लिये। और तरुणी के निराश और उदास चेहरे पर अचानक जैसे भावी दाम्पत्य जीवन की आशा और उल्लास सकोच बनकर लाल हो चमक उठे। उसकी पलके सहमा झुक चली।

सोमानन्द जी सतुष्ट नेत्रो से इस दृश्य को क्षणभर देख आदित्यनाथ से फिर बोले—"बेटा! जीवन भर हलीमा के साथ भी उसी प्यार को निभाना जिसे तुम बुद्धी के साथ बडी निष्ठा से निभाते रहे। बुद्धी की ही तरह हलीमा भी तुम्हारे जीवन को बल देगी, प्रेरणा देगी! और इस प्यार की पवित्र बुनियाद पर तुम दोनो आज से हिन्दू-मुसलमानो के आपसी प्यार के महल खडे करने मे आदर्श बनकर सबमे प्रेरणा भरा करो बेटे!"

◇ ◇

स्वामी सोमानद के चल बसने के बाद आदित्यनाथ हलीमा के साथ चन्द्रकान्त के घर आ गया। क्योकि साम्प्रदायिक उन्माद के उस वातावरण मे उनका अन्यत्र कही रहना खतरे से खाली न था। लेकिन हलीमा को पाकर भी आदित्यनाथ का हृदय व्यथा और निराशा से पीडित रहा करता। बुद्धी और बुद्धी का बलिदान उसके हृदय को खरोचे मार-मार-कर उसमे टीसे पैदा करते। अक्सर उसके मन मे वे शब्द भी ध्वनित हुआ करते जिन्हे वीरेन्द्र वर्मा ने किसी एक हिन्दी लेखक का हवाला देते हुए कहा था—"ससार मे पाप कुछ नही है, वह केवल मनुष्य के दृष्टि-कोण की विषमता का दूसरा नाम है! हम न पाप करते है, न पुण्य करते है। हम केवल वह करते है जो हमे करना पडता है! ' हर मनुष्य सुख चाहता है। ' कुछ सुख को धन मे देखते है, कुछ सुख को व्यभिचार मे देखते है, कुछ त्याग मे देखते है, पर सुख प्रत्येक व्यक्ति चाहता है!"

आदित्यनाथ ने सोचा—"यदि इस मान्यता को स्वीकार कर लिया

जाय, तो न तो राज्य की जरूरत, न राज्य के कानूनो की जरूरत, न सदाचार की मान्यताओ और मर्यादाओ की जरूरत ? फिर तो बुद्धी के बलिदान और वर्मा की उस मृत्यु मे भी कोई अन्तर नही रह जायगा ? पर हिन्दू शास्त्रो की मान्यता है—'परोपकार. पुण्याय पापाय परपीडनम्।' वर्मा अपने साथियो के साथ पर-पीडन मे प्रवृत्त हुआ था, और बुद्धी के साथ हमने उसी पर-पीडन के प्रतिरोध मे अपने प्राणो को खतरे मे डाला था। एक पतित मनुष्य भी अपने लिए पीडा नही चाहता। और इसीलिए हिन्दू शास्त्रो ने कहा है—'आत्मन प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्।' जो स्वय को बुरा लगे उसे दूसरो के प्रति हमे बरतना नही चाहिए। विश्व-मानव का मौलिक मन भी इसी आदर्श की श्रेष्ठता मे विश्वास करता है। फिर उस लेखक के वे शब्द कितने खोखले और बेहूदे है। समाज मे केवल अनाचार को प्रोत्साहित करने के पतित मत्र जैसे हेय और त्याज्य !"

पाकिस्तान की स्थापना और उस स्थापना से उत्पन्न भीषण हिसक परिस्थिति ने 'हृदय-परिवर्तन' के गाधीवादी सिद्धान्त और आदर्श को भी उसकी नजरो मे जैसे बिल्कुल खोखला और अव्यावहारिक सिद्ध कर दिया था। आदित्यनाथ अक्सर सोचा करता—"गान्धी की लाख कोशिशो और मान-मनौतियो के बावजूद जिन्ना का हृदय परिवर्तित न हो सका। पाकिस्तान बनकर रहा और लाखो बेगुनाह हिन्दू-मुसलमानो की बीभत्स हत्याएँ होकर रही। जिस अपने सिद्धान्त की व्यावहारिकता मे स्वय गाधी को सफलता न मिल सकी, उसमे किसी अन्य गाधीवादी को कैसे सफलता मिल सकेगी ? आज स्वय बडे-बडे अनेक गाधीवादी नेता भी इस सिद्धान्त मे अपने अविश्वास को खुले आम प्रकट कर रहे है ? और व्यवहारत इस सिद्धान्त के विरुद्ध पथ पर चल भी रहे है ? गाधी और गाधीवादी नारे के प्रकट होने से पहले भी शान्तिपूर्ण समझौतो द्वारा कई पारिवारिक सामाजिक मसले हल हुआ करते थे। और खून-खराबियाँ भी हुआ करती थी। वही बात आज गाधी और गाधीवाद के रहते हुए भी हो रही है।

फिर गाधीवाद के इस नकली आविष्कार से समाज को लाभ क्या हुआ ? माउन्टबेटन द्वारा आजादी की घोषणा होते ही गाधीवादी नेताओ ने छाती फुला-फुलाकर इस क्रान्ति को 'रक्तहीन क्रान्ति' कहकर मानव-इतिहास मे बेजोड साबित करने के नारे लगाने शुरू कर दिए थे। पर क्या सचमुच यह क्रान्ति 'रक्तहीन' रह सकी ?"

"उफ् !"—वह अत्यन्त क्षुब्ध हृदय से मन-ही-मन बोलने लग जाता—"चन्द्रकान्त ने ठीक ही तो कहा था कि यदि भारतीय आजादी का सग्राम गाधीवादी तरीके से न लडा जाकर सशस्त्र रूप ग्रहण करता तो कही लाख दर्जे बेहतर रहता। तब न तो देश का बटवारा हो पाता, और न लाखो नर-नारियों को कुत्ते-बिल्लियो की ऐसी घृणित मौतें मरने का अवसर उपस्थित होता। अपने भाइयो के विरुद्ध लडने के बजाय हम अग्रेजो से खुलकर लडते और बहादुरी की मौते मरते। और उस सघर्ष मे मर-मिटने वाला देश का हर बच्चा भारतीय पौरुष के गर्व की पताका को सारे विश्व के समक्ष ऊँची करता ! और इन सामूहिक बीभत्स हत्याओ की तुलना मे उस पौरुष-भरे बलिदानो की सख्या भी कही कम होती। और उन बलिदानो के आधार पर प्राप्त आजादी की गद्दी समाज के हीजडो और ठगो के हाथ जा पाने से बच भी जाती और सारा देश इस सामूहिक पशुता का शिकार न बन पाता !"

आदित्यनाथ अपने साथियो से आगामी कार्यक्रम के सबन्ध मे विचार-विमर्श किया करता। किन्तु आजादी के उपरान्त समाज की उलझी हुई स्थिति उन्हे निराश भी कर दिया करती। कोई प्रशस्त मार्ग दिखाई नही देता। आदित्यनाथ का मन अब रह-रहकर राजनीति की ओर दौडने लग पडा। मानव-समाज के इतिहास के पन्ने उसकी स्मृति से गुजरने लग पडे। वह सोचने लगा—"संसार के सभी धर्मो को अपने व्यापक प्रचार और प्रसार और अस्तित्व के भी निमित्त राजनीति का ही सहारा लेना पडा। कोई भी धर्म राज्य के सरक्षण के बिना न पनप सका, न बढ सका। फलतः वह राज्य और राजनीति का गुलाम बन गया। उसके

हाथ का कठपुतला। और इस धार्मिक नारे के आधार पर ही पाकिस्तान भी बना, और ये सारी खून-खराबियाँ भी हुई। भला अथवा बुरा कोई भी व्यापक सामाजिक परिवर्तन राज्य और राजनीति के सहारे के बिना कभी हो नही सका। इतिहास तो इसी तथ्य का प्रमाण है।

"राजनीति 'अणुबम' से भी ज्यादा शक्तिशील है। और जिस प्रकार अणुबम मे भीषण विनाश और व्यापक निर्माण की क्षमता और सामर्थ्य सनिहित है उसी प्रकार राजनीति मे भी। जिस प्रकार स्वय अणु-शक्ति अपने-आप मे बुरी नही है, उसी प्रकार राजनीति की शक्ति भी। इन शक्तियो मे निर्माण की सुन्दरता और विनाश एव शोषण की बीभत्सता निर्भर करती है, इन शक्तियो के प्रयोग-कर्ताओ की निजी ईमानदारी और बेईमानी पर। और सभी मनुष्य बेईमान नही होते। सभी क्रूर नही होते। मलाणे के उस जगली समाज मे भी दोनो तरह के लोग मौजूद है, और सभ्य समाजो मे भी।"

उसने राजनीति की उपयोगिता पर फिर सोचना शुरू किया—"राजनीति के विरोधी राजनीति को 'गन्दा तालाब' कहकर बदनाम करते है। उससे अलग रहने के उपदेश दिया करते है। किन्तु जब तक समाज पर राज्य और राजनीति का प्रभुत्व कायम रहेगा, तब तक सारा समाज ही गन्दा सरोवर या काला समुद्र बना रहेगा। जब तक विश्व का सारा समाज वर्गहीन और राज्यहीन नही बन जाता, तब तक राज्य भी रहेगे ही, राजनीतियाँ भी रहेगी ही; और समाज भी गन्दा सरोवर या काला समुद्र बना रहेगा ही। फिर तो इस गन्दगी से बचने का एकमात्र उपाय समाज और ससार से कूच कर देने के सिवा और क्या हो सकता है ? लेकिन जीना हर व्यक्ति चाहता है, राजनीति का विरोधी भी और राजनीति का खिलाडी भी। इस जीने के लिए ही मनुष्य समस्त छल-छन्दो और वागाडम्बरो का आविष्कार किया करता है। इस जीने के लिए ही वह हत्याएँ भी करता है, प्रेम भी करता है।

"न चाहने पर भी राजनीति से घृणा करने वालो के सामाजिक